DCEPA-101

प्रशासनिक सिद्धान्त–I I

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 सत्यकाम — **कुलपति**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 मनोज दीक्षित — सदस्य

आचार्य, लोक प्रशासन विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो0 आर0 के0 सप्रू — सदस्य

आचार्य, लोक प्रशासन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, 473 सेक्टर 38–ए, चण्डीगढ़

प्रो0 बी0 एल0 शाह — सदस्य

आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

प्रो0 वी0 के0 राय — सदस्य

आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो0 बी0एल0 शाह

आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

सम्पादक / परिमापक

प्रो0 आर0 के0 सप्रू

आचार्य, लोक प्रशासन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, 473 सेक्टर 38–ए, चण्डीगढ़

समन्वयक

डॉ0 दीपशिखा श्रीवास्तव — सहा0 आचार्य, राजनीति विज्ञान

उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विषय सूची

पृ0 सं0

खण्ड एक : नौकरशाही

इकाई 01: कार्ल मार्क्स का योगदान

इकाई 02: प्रतिनिधि नौकरशाही)

इकाई 03: नौकरशाही एवं लोकतंत्र

खण्ड दो : संगठन की संकल्पनाएँ–1

इकाई 04: औपचारिक और अनौपचारिक संगठन

इकाई 05: कार्य का विभाजन और समन्वय

इकाई 06: सोपानक्रम

इकाई 07: नियंत्रण का क्षेत्र

इकाई 08: समादेश की एकता

इकाई 09: केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण

खण्ड तीन : संगठन के स्वरूप एवं सिद्धान्त

इकाई 10: प्रत्यायोजन

इकाई 11: निरीक्षण

इकाई 12: संचार

इकाई 13: अधिकार और उत्तरदायित्व

इकाई 14: नेतृत्व

इकाई– 01
कार्ल मार्क्स का योगदान

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 नौकरशाही का उदय
1.3 नौकरशाही की भूमिका
1.4 नौकरशाही की शक्ति और सैनिक तानाशाही
1.5 नौकरशाही की विशेषताएं
    1.5.1 श्रम विभाजन
    1.5.2 पद–क्रम परम्परा
    1.5.3 प्रशिक्षण
    1.5.4 नियम
    1.6.5 अलगाव
1.6 पूंजीपतियों और श्रमिकों के बीच संघर्ष में तीव्रता
1.7 मार्क्स के समाजवादी समाज में प्रशासन
1.8 आलोचनात्मक–समीक्षा
1.9 सारांश
1.10 प्रमुख शब्दावली
1.11 बोध प्रश्न
1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है :

- नौकरशाही के बारे में कार्ल मार्क्स के विचारों का महत्व समझ सकेंगे,
- कार्ल मार्क्स द्वरा बताई गई नौकरशाही की विशेषताएं जान सकंगे, तथा
- नौकरशाही के सम्बन्ध में मार्क्स के आलोचनात्मक विचारों की समीक्षा कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

कार्ल मार्क्स (1818–1883) बहुत बड़े सामाजिक क्रांतिकारी और समाजशास्त्री थे। उनकी छाप न केवल सामाजिक विज्ञान, दर्शन और साहित्य पर पड़ी, बल्कि रूस, चीन तथा वियतनाम जैसे देशों में, क्रांति भी उनके विचारों की प्रेरणा से ही आई। विभिन्न विचारधाराओं के लोग उनके विचारों की अलग–अलग ढंग से व्याख्या और पुनर्व्याख्या करते रहे हैं। इनमें **फ्रैंकफर्ट चिंतनधारा, अस्तित्ववादी, संरचनावादी रूसी–साम्यवादी, चीनी–साम्यवादी तथा त्रोत्स्कीवादी** आदि शामिल हैं। मार्क्स की रचनाओं में विद्यमान क्रांतिकारी चिंतन तथा कर्म के समन्वय का उन अविकसित देशों के लिए विशेष महत्व है, जहां क्रांतिकारी–आंदोलन अभी और पकड़ रहे हैं।

मार्क्स का जन्म 1818 में जर्मनी में हुआ। उन्होंने प्राचीन–ग्रीक दर्शन में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। उनके क्रांतिकारी विचारों के कारण उन्हें विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त नहीं किया गया और वे जिस देश में भी जाते, उन्हें वहां से निकाल दिया जाता। उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं, किन्तु वे हमेशा गरीब ही रहे। परिणामतः उनके परिवार को बहुत से कष्ट झेलने पड़े। उन्होंने फ्रांस के क्रांतिकारी–आन्दोलन में भाग लिया, जिससे वहां 1870 में कुछ समय के लिए पेरिस कम्यून की स्थापना हुई। अपनी अधिकतर रचनाओं और कार्यों को पूर्ण किए बिना ही 1883 में मार्क्स स्वर्ग सिधार गए। प्रशासन के बारे में मार्क्स के विचार उनकी अनेक पुस्तकों में देखे जा सकते हैं। उन्होंने नौकरशाही के उदय, विकसित तथा विकासशील देशों में उसकी भूमिका, उसकी त्रुटियां, समाजवादी क्रांति के दौरान उनके विनाश और शोषण रहित समाज में उसकी समाप्ति पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इस इकाई में हम नौकरशाही के बारे में मार्क्स का ब्यौरा देंगे तथा उनके विचारों की आलोचना का मूल्यांकन भी करेंगे।

1.2 नौकरशाही का उदय

मार्क्स का कहना है कि नौकरशाही का उदय 16वीं शताब्दी के आसपास पश्चिमी–यूरोप में पूंजीवाद और राष्ट्र–राज्य के उदय के साथ हुआ। धन और सत्ता जब व्यापारी, पूंजीपतियों और राजाओं के हाथों में केन्द्रित हो गई तो धन–सम्पदा के प्रबंध और सत्ता के संचालन के लिए विशेष–तंत्र की आवश्यकता महसूस होने लगी। यह तंत्र था नौकरशाही। इस तंत्र की मदद से पूंजीपतियों ने दूसरे पूजीपतियों से लोहा लिया और राजाओं ने सामंतों पर काबू पाने में सफलता हासिल की।

मध्य कालीन–समाज में व्यापार स्थानीय स्तर पर ही होता था। यह एक ही गांव में या आपस के कुछ गांवों के बीच चलता था। भाप से चलने वाले जहाजों के आविष्कार के बाद दूर के स्थानों तक भी व्यापार करना संभव हो गया। परन्तु जहाजों में दूर तक जाने वाले ये व्यापारी असुरक्षित थे। उनकी सुरक्षा की व्यवस्था ऐसे शासन के जरिये की जा सकती थी, जिसका प्रभाव व्यापक क्षेत्र तक हो। दूर के स्थानों से

व्यापार करने की इसी आवश्यकता के कारण राष्ट्र–राज्य अस्तित्व में आए। ध्यान देने की बात है कि पुराने जमाने में या तो नगर राज्य थे या साम्राज्य थे। राष्ट्र–राज्यों का उदय सर्वप्रथम सोलहवीं शताब्दी के आसपास हुआ जो भी हो, राजा इतने बड़े क्षेत्र पर बहु से अधिकारियों के माध्यम से ही शासन चला सकता था और ये अधिकारी केन्द्र के अधीन रहते थे। इसी अधिकारी वर्ग ने नौकरशाही संघटित की। इस प्रकार नौकरशाही का सम्बन्ध पूंजीवाद और राष्ट्र–राज्य से है। इससे यह भी कहा जा सकता है कि यदि पूंजीवाद और राष्ट्र–राजय का अस्तित्व समाप्त हो जाए तो नौकरशाही की भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

1.3 नौकरशाही की भूमिका

राष्ट्र–राज्य के अस्तित्व में आने के बाद भी लगभग 200 वर्षों तक सामंतवाद आंशिक रूप से विद्यमान रहा। फ्रांस में 1989 की क्रांति ने सामंतशाही को गहरा धक्का दिया, किन्तु सत्ता जमींदारों के हाथों से निकल कर पूंजीपतियों के हाथों में 1830 की क्रांति के बाद ही पहुंची। दूसरे देशों में भी इसी तरह से परिवर्तन हुआ।

सामंतशाही के अस्त होने और पूंजीवाद के उदय होने का परिणाम यह हुआ कि अब अधिकाधिक लोग पूंजीपतियों के कारखानों में काम करने लगे। जाहिर है कि हाथों से बनने वाली चीजें उद्योगों में बनी वस्तुओं की बराबरी नहीं कर सकती थीं, इसलिए बुनकर, चर्मकार, लोहार, बढ़ई तथा इसी तरह के काम करने वाले दूसरे कारीगर बेकार हो गए और पेट पालने के लिए वे उद्योगों में काम करने लगे। नई–नई टैक्नोलॉजी लागू होने पर हमेशा ही कुछ बेरोजगारी बढ़ती है। पूंजीवादी समाजों में गरीबी तथा बेरोजगारी के कारण मजदूरों को कम मजदूरी देकर अधिक समय तक कमर तोड़ मेहनत करने पर भी विवश किया जा सकता है। मार्क्स ने विस्तार से बताया है कि किस तरह इंग्लैण्ड में 19वीं शताब्दी में कारखानों में बच्चों तक का शोषण किया गया। पश्चिमी देशों में तो मजदूरों की काम की स्थितियां ठीक हो गई क्योंकि वहां उनके अधीन देशों से धन पहुंचना था और साथ ही मजदूरों के संगठन बन गए, किन्तु जब भारत जैसे विकासशील देशों में भी पूंजीवादी शोषण हो रहा है।

मार्क्स के अनुसार सारी संपदा मानव–श्रम से पैदा होती है। परन्तु मजदूरों को इस उत्पादित संपदा का छोटा–सा हिस्सा वेतन के रूप में मिलता है। बाकी हिस्सा पूंजीपति अपने पास रख लेते हैं, और यही शोषण हैं इसलिए इस दृष्टि से देखने पर उत्पादन के पूंजीवादी सम्बन्धों में शोषण सदैव विद्यमान रहता है।

पूंजीपति बड़ी संख्या में मजदूरों का शोषण करके भारी मुनाफा कमाते हैं। एक पूंजीपति इतने अधिक मजदूरों को अकेला नहीं संभाल सकता। वह इस काम के लिए प्रबंधक नियुक्त करता है। ये प्रबंधक उनकी सहायता के लिए रखे गए अधिकारियों का वर्ग ही नौकरशाही है। मार्क्स के अनुसार नौकरशाही का अर्थ है वे

अधिकारी जो मालिकों या शासकों की ओर से मजदूरों एवं कर्मचारियों पर नियंत्रण करते हैं। नौकरशाही का दायित्व पूंजीवाद की शोषणपूर्ण परिस्थितियों में श्रमिकों से काम लेना है। सरकारी नौकरशाही सरकारी कर्मचारियों के मामले में इसी तरह का काम करती है। सरकारी नियंत्रण में चलने वाले रेलवे, सड़क–परिवहन, बिजलीघरों तथा अन्य प्रतिष्ठानों में बड़ी संख्या में मजदूर हैं। गैर औद्योगिक सरकारी–विभागें में भी डाकिया, नर्स, अध्यापक, मैकेनिक आदि अनेक प्रकार के कर्मचारी नियुक्त किए जाते हैं। इंजीनियर, डाक्टर, वास्तुकार और वैज्ञानिक भी उत्पादन से जुड़े हैं और वे इन सबकी तुलना में उच्च स्तर के मजदूर हैं। इन सभी मजदूरों के काम की देख–रेख करनी पड़ती है। इसलिए उन पर नौकरशाही का नियंत्रण रहता है। नौकरशाही में प्रशासक और प्रबंधक शामिल हैं? जो स्वयं उत्पादक कार्य नहीं करते, केवल श्रमिकों पर नियंत्रण रखते हैं। इसलिए भारतीय प्रशासनिक सेवा और राज्यों की प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी, मंत्रियों को परामर्श देते हैं और उत्पादन करने वाले श्रमिकों को निर्देश देते हैं, उनका निरीक्षण और नियंत्रण करते हैं। इन दिनों भारत में डाक्टरों, इंजीनियरों, अध्यापकों, नर्सों तथा अन्य श्रमिकों ने अनेक बार काम की बेहतर शर्तों की मांग की तथा इसे लेकर आंदोलन और हड़ताल तक की है। इनमें से कुछ को दण्डित भी किया गया और ये दण्ड किसी निदेशक या संबन्धित राज्य सरकार के सचिव जैसे प्रशासनिक अधिकारी की देखरेख में दिए गए। जब भी कभी आवश्यकता पड़ी इन्हीं प्रशासनिक अधिकारियों ने सरकार की ओर से कर्मचारियों से बातचीत भी की। प्रशासनिक अधिकारियों का यही वर्ग नौकरशाही का गठन करता है। इनका काम सरकार की ओर से मजदूरों और कर्मचारियों को नियंत्रित करना है। सरकारी नौकरशाही का एक और काम है व्यापक समाज में उत्पादन के पूंजीवादी सम्बन्धों को कायम रखना। इसलिए जब किसी निजी कम्पनी के मजदूर हड़ताल कर देते हैं तो उन पर काबू पाने में पूंजीपति पुलिस की मदद ले सकता है। सरकार कई तरह के निजी उद्योग और व्यापार को संरक्षण और सहायता देती है। वह आयात शुल्क लगाकर स्वदेशी उद्योगपतियों को विदेशी उद्योगपतियों की प्रतियोगिता से बचाती है। वह वित्तीय और आर्थिक नीतियों के माध्यम से अर्थव्यवस्था को ऐसे रूप देती है कि उद्योगों में उत्पादित सामान की मांग बराबर बनी रहे। सरकार उद्योगों तथा कृषि को कम मूल्य पर बिजली, परिवहन, संचार सुविधाएं तथा अन्य महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराती है। ये सभी सुविधाएं सरकारी नौकरशाही के माध्यम से निजी क्षेत्र तक पहुंचाई जाती है। उद्योगों का चक्का चालू रखने तथा उद्योगपति के बराबर मुनाफा कमाते रहने के लिए सरकारी नौकरशाही श्रम कानून लागू करती है। इस प्रकार सरकारी नौकरशाही पूंजीवाद के संरक्षण और विकास में महत्वपूर्ण योग देती हैं मार्क्स के अनुसार समाजवाद की मंजिल की अधिकांश राह पूंजीवाद से होकर ही गुजरती है। इस तरह पूंजीवाद के पनपने से एक ओर जहां शोषण को बल मिलता है, वहीं दूसरी ओर उससे समाजवादी की प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त होता हैं

1.4 नौकरशाही की शक्ति और सैनिक तानाशाही

पूंजीवाद के सम्पोषण और विकास के साधन के रूप में अपना दायित्व निभाते हुए नौकरशाही अपनी खुद की शक्ति भी प्राप्त कर लेती है। उसकी इस शक्ति का आधार है विस्तृत सूचनाओं और विशेषकर गुप्त सूचनाओं तक उसकी पहुंच। यही कारण है कि नौकरशाही आम लोगों से ही नहीं, बल्कि निर्वाचित प्रतिनिधियों और मंत्रियों तक से कई सूचनाएं छिपा कर रखती है। मंत्री राजनीतिक मामलों में उलझे रहते हैं और वे सूचन और परामर्श के लिए नौकरशाही पर निर्भर रहते हैं। यही कारण है कि नीति– निर्धारण में भी नौकरशाही की महत्वपूर्ण भूमिका रहती हैं जहां जनता के संगठन और रानजीतक दल कमजोर हों तो वे जनसाामन्य की कठिनाईयों और आवश्यकताओं की सूचना सरकार तक नहीं पहुंचा सकते। राजनीतिक अपरिपक्वता की इस स्थिति में नौकरशाही जनता और सरकार के बीच संपर्क का मुख्य सूत्र बन जाती है क्योंकि नौकरशाही को लोगों की समस्याओं के बारे में तथाकथित जन प्रतिनिधियों से भी अधिक जानकारी होती है। इसलिए उस पर निर्भरता और बढ़ जाती है तथा उसकी शक्ति में वृद्धि होती चली जाती है। यही कारण है कि नौकरशाही के पास गुप्त सूचनाएं रहने के कारण सामान्य स्थिति में भी वह काफी शक्तिशाली होती है। विकासशील देशों में इसकी शक्ति और भी धिक मजबूत है, क्योंकि वहां जन संगठन और राजनीतिक दल कमजोर है। इसके अतिरिक्त नौकरशाही में सत्ता की भूख भी प्रमुख होती है। मार्क्स का कहना है ''नौकरशाही राज्य में अपने आपको ही सब कुछ समझने लगती है। .....उसका ''वास्तविक उद्देश्य'' से हर समय टकराव होता रहता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वह लोगों के हितों की अपेक्षा अपने ही हितों को साधने लगती है और ''परजीवी'' बन जाती है।''

कुछ ऐसी विशेष स्थितियां भी हैं, जिनमें नौकरशाही स्वयं शासक बन बैठती है। ऐसी ही स्थिति सैनिक तानाशाही की है। सेना स्वयं में ही एक नौकरशाही है। इन दिनों नाइजीरिया और ब्राजील जैसे अनेक विकासशील देशों में सैनिक–तानाशाही है। मार्क्स ने इस प्रकार की सैनिक तथा असैनिक नौकरशाही के शासन के कारणों को स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि जब परस्पर विरोधी हितों वाले दो शक्तिशाली वर्गों का शक्ति–संतुलन समान हो जाता है तो वे आपसी संघर्ष को टालने के लिए नौकरशाही का शासन चलाने देते हैं।

1.5 नौकरशाही की विशेषताएं

हम कार्ल मार्क्स द्वारा बताई गई नौकरशाही की विशेषताओं का संक्षेप में विवेचन करेंगे।

1.5.1 श्रम विभाजन

मार्क्स यह मानते हैं कि श्रम के विभाजन के पूंजीवादी समाज के संगठनों की उत्पादकता में भारी वृद्धि होती है। परन्तु उनका कहना है कि श्रम का बुनियादी–विभाजन, जिसको हम अनदेखा कर देते हैं, ''बौद्धिक और भौतिक कार्य व्यापार'' के बीच है। मजदूर उत्पादक कार्य व्यापार करते हैं, जबकि पूंजीपति तथा नौकरशाही लोग केवल बौद्धिक कार्य व्यापार करते हैं। इस प्रकार श्रम के बंटवारे के नाम पर मेहनत–मशक्कत का सारा बोझ मजदूरों के हिस्से में उाल दिया जाता है। परन्तु बढ़ी हुई उत्पादकता के अधिकतर लाभ पूंजीपतियों की झोली में जाते हैं, जिन्हें कुछ हद तक वे नौकरशाहों में भी बांटते हैं। इसलिए नौकरशाहों को मोटे वेतन दिए जाते हें। दूसरी ओर उत्पादकता बढ़ने से बेरोजगारी में और वृद्धि होती है। नई–टैक्नोलॉजी लागू किए जाने पर भी ऐसा ही होता है। बेरोजगारी बढ़ने से वेतन कम हो जाते हैं। इस प्रकार श्रम के बंटवारे के आधार पर बढ़ी हुई उतपादकता से मजदूरों का कोई फायदा नहीं होता।

1.5.2 पद–क्रम परम्परा

मार्क्स के अनुसार पदक्रम परम्परा नौकरशाही की विशेषता है। उनका कहना है कि हालांकि हीगेल मानते हैं कि पदक्रम परम्परा से ''मनमाने प्रभुत्व'' को रोका जा सकता है, किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। मार्क्स का विचार है कि इससे ''अपरिहार्य'' बुराइयां पैदा होती हैं। जब कोई अधिकारी नागरिकों के साथ कोई गलत काम करता है तो उसके ऊपर के अधिकारियों की प्रवृत्ति उसका बचाव करने की रहती है। दूसरी ओर जब कोई अधिकारी अपने उच्च अधिकारी की गल्ती का विरोध करता है तो उसे दण्ड मिलता है।

मार्क्स ने पदक्रम परम्परा की एक और दिलचस्प आलोचना की हैं वे कहते हैं सर्वोच्च अधिकारी किसी समस्या की बारीकियां समझने का काम निचले स्तर पर छोड़ देता है जबकि निचले अधिकारी मानते हैं कि बारीकियां समझने का काम सर्वोच्च अधिकारी का है। इस तरह दोनों एक दूसरे से धोखा खाते हैं। यही कारण है कि उच्च अधिकारियों की शिकायत रहती है कि नीति तो अच्छी थी किन्तु उसे लागू गलत तरीके से किया गया। दूसरी ओर निचले स्तर पर यह कहा जाता है कि नीति ही दोषपूर्ण थी। भारत में भूमि सुधारों के बारे में यही तो हुआ है। नीति–निर्माता और त्रुटियों के लिए परस्पर दोषारोपण करते रहे हैं।

1.5.3 प्रशिक्षण

मार्क्स का कहना है कि अक्सर यही कहा जाता है, और उदाहरण के लिए हीगल ने भी कहा है कि उदार शिक्षा प्रशासनिक कर्मचारियों को मानवीय बनाती है।

परन्तु उनका मानना है कि प्रशासनिक कर्मचारी का यांत्रिक काम और कार्यालय की विवशताएं उसके मानवीय दृष्टिकोण को समाप्त कर डालती हैं।

मार्क्स प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से नौकरशाही के सदस्यों के चयन का भी विरोध करते हैं। उनका कहना है कि नौकरशाहों में नेतृत्व–गुण होना आवश्यक है, जिसकी जांच परीक्षाओं से नहीं हो पाती ''हमने यह कभी नहीं सुना कि ग्रीस और रोम के महान नेताओं ने परीक्षाएं पास की थीं।''

मार्क्स द्वारा किए गए वर्ग विश्लेषण से ज्ञात होात है कि परीक्षाओं का मुख्य उद्देश्य यह देखना है कि केवल उच्च वर्गों के लोग ही जो महंगी उच्च शिक्षा ग्रहण करने का सामर्थ्य रखते हैं, नौकरशाही में प्रवेश कर सकें। उच्च शिक्षा महंगी होने के साथ–साथ ऐसे मुख्य तथा दृष्टिकोण पनपाती है, जो पूंजीवाद को पुष्ट करने वाले हैं। उच्च शिक्षा गरीबों और अमीरों में सामाजिक विषमता लाती है। शिक्षित वर्ग सामान्यतः अपने को अशिक्षित निर्धन लोगों से ऊँचा मानने लगता है। इसलिए जब उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति प्रबंधक के रूप में नियुक्त होता है तो मजदूरों का शोषण देखकर उसे कोई पीड़ा नहीं होती।

1.5.4 नियम

कार्ल मार्क्स का कहना है कि नौकरशाह, अधीनता और बिना सोचे समझे आज्ञापालन के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि वे यह सोचने लगते हैं कि नियमों का पालन किसी उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन मात्र नहीं बल्कि अपने आप में साध्य है। वे मनुष्य से अधिक नियमों को महत्व देने लगते हैं। ''वास्तविक ज्ञान खोखला लगता है, जैसे कि वास्तविक जीवन बेजान लगता है।''

1.5.5 अलगाव

अलगाव का सिद्धांत सामाजिक विज्ञान तथा विशेषकर प्रशासनिक अध्ययन में मार्क्सवाद की अत्यन्त महत्वपूर्ण देन है। इसमें शोषण के दुष्परिणामों की चर्चा की गई है। पूंजीवादी समाज में बड़े संगठनों के प्रशासन में शोषण होना अनिवार्य है। इसलिए लोग गंभीर किस्म के अलगाव या दूरी का शिकार होते हैं। अलगाव की धारणा के चार पहलू हैं। ये हैं स्वतंत्रता का ह्रास, मानवीय भावना का ह्रास और नैतिकता का ह्रास।

- **स्वतंत्रता का ह्रास**

  मार्क्स के अनुसार जहां भी शोषण होता है, वहां शोषक और शोषित दोनों अलगाव की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। इस प्रकार उस संगठन के सभी लोगों में अलगाव की भावना घर कर जाती है। मजदूरों को मजबुरी में नौकरी करनी पड़ी है क्योंकि स्वतंत्र कारीगर के यप में काम करना उनके लिए संभव नहीं रहा। भर्ती हो जाने के बाद उन्हें प्रबंधकों के तानाशाही नियंत्रण में काम करना पड़ता है। उनका दमन होता है और उन्हें सजा देने की

धमकियां मिलती हैं। प्रबंधक भी अलगाव की भावना से ग्रस्त रहते हैं क्योंकि वे स्वयं कर्मचारी हैं। पूंजीपति की आजादी भी खत्म हो जाती है। मार्क्स कहते हैं कि पूंजीपति को खाने–पीने, पुस्तकें खरीदने, थियेटर या नाचघर में जाने, यहां तक कि सोचने, प्यार करने, गाने, चित्र बनाने जैसे शौक पूरे करने की भी आजादी नहीं रहती। अपने काम में फंसा रहने के कारण वह अपनी इच्छाएं पूरी नहीं कर पाता। अपनी पूंजी बढ़ाने के लिए उसे बचत भी करनी पड़ती है। इसलिए वह अपनी इच्छा के अनुसार खर्च भी नहीं कर सकता।

- **सृजनात्कता का ह्रास**

  नौकरशाही मजदूरों की सृजनात्मकता को प्रभावित करती है। इसे कभी–कभी दृष्क्रिया कहा जाता है। इस प्रकार श्रम के बंटवारे से में गड़बड़ होने लगती है। श्रम के विभाजन के कारण कोई भी कर्मचारी अपने सामर्थ्य का पूर्ण उत्पादन नहीं कर पाता। इसलिए जिस तरह का सृजनात्मक संतोष कलाकार या शिल्पकार को मिलता है, वैसा संतोष मजदूरों के नसीब में नहीं है। श्रेणीबद्ध परम्परा का परिणाम यह होता है कि कोई भी मजदूर यह नहीं कह सकता कि उसने स्वतंत्र रूप से किसी भी चीज का उत्पादन किया। कर्मचारी स्वयं एक औजार मात्र बनकर रह जाता है। ऐसे नियम लागू किए जाते हैं जिनसे मजदूर हमेशा नियंत्रण में रहें। प्रशासक भी अपनी सृजनात्मकता से हाथ धो बैठता है। इस प्रकार लोक प्रशासन में भी अनाम ही रहता है। नीतियों का निर्धारण भी संयुक्त रूप से होता है। इसलिए यदि कोई प्रशासक किसी नीति को खुद तैयार करता है तो भी उसका श्रेय वह स्वयं नहीं ले सकता। पूंजीपति की सृजनात्मकता इसलिए समाप्त हो जाती है कि बड़े–बड़े संस्थानों को चलाने में काफी जोखिम पड़ते हैं।

- **मानवीय भावना का ह्रास**

  आज कल के बड़े–बड़े प्रतिष्ठानों में मजदूर मशीनों की तरह काम करते हैं इसलिए उनमें मानवीय भावना का लोप हो जाता है। श्रम के बंटवारे के कारण उद्देश्य तय करने या उन्हें पूरा करने के तरीकों का फैसला करने से अधिकतर मजदूरों का कोई सरोकार नहीं होता। दफ्तर का स्वरूप भी एक बड़ी मशीन जैसे होता है। दफ्तर हो या कारखाना कर्मचारी स्वचालित मशीन की भांति काम करते रहते हैं। वे किसी काम को बार–बार और एक ही तरीके से यह जाने बिना ही करते रहते हैं कि मनुष्य के लिए उसका कोई महत्व है या नहीं प्रबंधकों की भी यही हालत है, क्योंकि वे भी उसी मशीन जैसे ढांचे का अंग हैं। पूंजीपति या राजनीतिक शासक भी मानवीयता रहित व्यापारिक तथा राजनीतिक शक्तियों के दबाव में आकर आचरण करते

हैं और मानवीय मूल्यों को पूरी तरह ध्यान में रखे बिना अपने फैसले करते हैं।

मार्क्स के अनुसार स्वतंता सृजनत्मकता और मानवीय भावना का ह्रास होने से नैतिकता में गिरावट आ जाती है। इसलिए मजदूरों की स्वतंत्रता हीनता और उन्हें पशु जैसा बना डालना अनैतिक है। सृजनत्मकता में कमी आने से भी अनैतिकता पनपती है। यदि इंजीनियर या डाक्टर अच्छे पुल बनाने या रोगियों को ठीक करने की अपेक्षा धन कमाने में ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं तो वे अनैतिक बन जाते हैं। मानवीय भावना से रहित हो जाना अर्थात् दूसरों के दुःख से विचलित न होना निश्चित ही अनैतिक है। पूंजीवाद अलग–अलग राष्ट्र–राज्यों, व्यापारिक फर्मों, राजनीतिक दलों तथा इसी तरह की संस्थाओं की प्रतियोगिता पर टिका हुआ है क्योंकि प्रतियोगिता से अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है, इसलिए पूंजीवादी समाज में अस्तित्व की रक्षा के लिए नैतिक, अनैतिक सभी उपायों का सहारा लिया जाता है। इसलिए मार्क्स के अनुसार अनैतिक पूंजीवाद में अंतर्निहित है।

1.6 पूंजीपतियों और श्रमिकों के बीच संघर्ष में तीव्रता

मार्क्स मानते हैं कि समूचे मानव इतिहास में शोषक तथा शोषित वर्गों के बीच गहरा संघर्ष चलता रहा है। पूंजीवादी समाज में भी पूंजीवादी वर्ग और श्रमजीवी वर्ग के लित एक दूसरे से टकराते हैं और उनका संघर्ष जारी रहता है। मार्क्स का मत है कि नौकरशाही एक ओर तो पूंजीवाद को पुष्ट करती है और दूसरी ओर इसे उखाड़ फेंकने की परिस्थितियां भी तेयार करती हैं। बड़े–बड़े संगठन बनने से मजदूरों में एकता कायम होती है। औद्योगिक बस्तियों में केन्द्रित हो जाने से उनके संगठित होने में मदद मिलती है। परिवहन तथा संचार सुविधाएं विकसित हो जाने से संगठन का विस्तार तेजी से होता है। इस प्रकार उनके संगठन देशव्यापी तथा शक्तिशाली बन जाते हैं। प्रदर्शनों और हड़तालों के माध्यम से आंदोलन चलाने के बाद उनके संघर्ष के परिणाम वेतन वृद्धि और काम के कार्य दिवसों की कमी के रूप में मिलने लगते हैं। अंततः मजदूरों की संगठित शक्ति क्रांति के जरिए पूंजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में सफल हो जाती है। पूंजीवाद के साथ–साथ नौकरशाही का भी बोरिया–बिस्तर गोल हो जाता है, क्योंकि नौकरशाही का मुख्य काम मजदूरों का नियंत्रण करना होता है, जिसकी तब आवश्यकता ही नहीं रहती। पूंजीवाद, जो वास्तव में पूंजीवादी वर्ग की तानाशाही है, के स्थान पर सर्वहारा वर्ग की तानाशाही स्थापित हो जाती है किन्तु सर्वहारा वर्ग की तानाशाही थोड़े समय के लिए रहती है जिसके दौरान नए सामाजवादी समाज का सूत्रपात होता है। नया समाज वर्गविहीन समाज है और उसमें सरकार की भी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि सरकार का काम एक वर्ग पर दूसरे वर्ग के प्रभुत्व को बनाए रखना है। इस प्रकार धीरे–धीरे शासन विलुप्त हो जाता है।

1.7 मार्क्स के समाजवादी समाज में प्रशासन

मार्क्स नौकरशाही को सामाजिक व्यवस्था के एक अभिन्न अंग के रूप में देखता है जिसका मुख्य कार्य समुदाय के मामलों को इस प्रकार से शोषित करना है जिससे कि उसके अपने निजी लक्ष्यों को बढ़ावा दिया जा सके एवं बनाए रखा जाय।

मार्क्स ने भावी समाजवादी समाज के स्वरूप का वर्णन नहीं किया, क्योंकि वह मात्र कोरा आदर्श ही होता है। भावी समाजवादी समाज वैसा ही होगा, जैसा हम बनाएंगे। अटकलें लगाने की बजाय मार्क्स ने पेरिस कम्यून के स्वरूप का मूल्यांकन किया जो क्रांति के बाद स्थापित हुआ था। पेरिस कम्यून के प्रशासन से भावी समाजवादी समाज में संभावित प्रशासन का संकेत मिल सकता है। प्रशासन का ब्योरा इस प्रकार है :

- ''उत्पादकों का स्वशासन'' होगा। दूसरे शब्दों में कहें तो, नया समाज पूर्णरूपेण लोकतांत्रिक होगा।
- स्थायी सेना समाप्त कर दी जायेगी, आवश्यकता पड़ने पर लोग स्वयं हथियार उठायेंगे।
- ग्राम, जिला तथा राष्ट्र स्तर पर कम्यून बनाए जायेंगे।
- केन्द्र सरकार के पास केवल कुछ महत्वपूर्ण काम रहेंगे। प्रशासन में विकेन्द्रीकरण होगा।
- चुनाव की परोक्ष प्रणाली अपनाई जाएगी और सब लोगों को वोट देने का अधिकार होगा।
- कम्यून प्रशासनिक तथा विधायी संस्था होगी।
- पुलिस का राजनीतिक स्वरूप समाप्त कर दिया जाएगा। वह कम्यून के अधीन रहेगी और उसी के प्रति जवाबदेह होगी।
- सार्वजनिक सेवाओं में वेतनभोगी लोग रहेंगे।
- शिक्षा निःशुल्क और सबके लिए सुलभ होगी।
- न्यायाधीश चुने जायेंगे, दायित्व लेंगे और उन्हें हटाया भी जा सकेगा। वे सरकारी नियंत्रण से पूरी तरह स्वतंत्र होंगे।

1.8 आलोचनात्मक–समीक्षा

अनेक लेखकों में मार्क्स की कई बातों की आलोचना की है। हम इनमें से कुछ आलोचनाओं की चर्चा करेंगे। यह कहा गया है कि वर्ग प्रभुत्व समाप्त करने की मार्क्स की आशा अव्यावहारिक है क्योंकि यह प्रभुत्व तो सदैव रहा है, परन्तु इस आलोचना के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जो कुछ पहले नहीं हुआ, वह भविष्य में हो सकता है। मनुष्य असंख्य बाधाओं के रहते भी अपने भविष्य का निर्माण कर सकता है।

एक और आलोचना यह है कि मार्क्स का यह मानना ठीक नहीं लगा कि राष्ट्र–राज्य जैसी बड़ी संस्थाओं को समाप्त किया जा सकता है और बड़ी संस्थाएं हैं तो नौकरशाही भी रहेगी। किन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि राष्ट्र–राज्य का उदय नौकरशाही के साथ–साथ हुआ। पूंजीवादी व्यवस्था में प्रतियोगिता के कारण है संगठन बड़े बनते जाते हैं। जिस समाज में प्रतियोगिता का महत्व नहीं रहेगा, वहां संगठन बड़े बनाना जरूरी होगा। लगता है कि नई टैक्नोलॉजी भी हमें इसी दिशा में ले जाती हैं। इसलिए सौर, जल तथा पवन ऊर्जा के इस्तेमाल से बड़े–बड़े बिजली ग्रिडों की आवश्यकता नहीं रहेगी। इलेक्ट्रॉनिक्स से भी मशीनों का आकार छोटा होता है। मशीनें छोटी होंगी तो संगठन भी छोटे बनेंगे।

कभी–कभी यह कहा जाता है कि समानता कभी नहीं लाई जा सकती क्योंकि मनुष्य जन्म से ही असमान है। किन्तु सच्चाई यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई सृजनात्मक क्षमता होती है। कुछ ही लोगों का बड़ी उपलब्धियों में सक्षम दिखाई देने का कारण यह है कि अनेक लोगों को अपनी क्षमताओं के विकास का अवसर ही नहीं मिलता।

यह माना जाता है कि लोगों को प्रेरणा और उत्साह देने के लिए प्रतियोगिता तथा पुरस्कारों में अन्तर रखना आवश्यक है। परन्तु सच यह है कि अतीत के वैज्ञानिकों और कलाकारों जैसी महान विभूतियों की अपने सिवाय किसी से भी कभी कोई होड़ नहीं रही। सामान्य व्यक्ति में प्रेरणा मुख्यतया सृजनात्मक आकांक्षा से ही प्राप्त होती है। प्रतियोगिता से अनावश्यक तनाव पैदा होता है जो रोगों का कारण बना है।

कुछ लोग यह भी मानते हैं कि आक्रमण करना मनुष्य की स्वभाविक मनोवृत्ति है इसलिए युद्ध रोकना और स्थायी सेना को समाप्त करना सम्भव नहीं है। परन्तु यह विचार अब अपनी सार्थकता खो चुका है कि आक्रमण मनुष्य की स्वाभाविक मनोवृत्ति है। अब इसे मनोवृत्ति को असामान्य व्यक्तित्व से जोड़ा जाता है।

मार्क्स पर तानाशाही के समर्थन का भी आरोप लगाया जाता है। परन्तु हमने ऊपर देखा कि मार्क्स मजदूरों के स्वशासन के पक्षधर थे। परन्तु थोड़े समय के लिए सर्वहारा वर्ग की तानाशाही को केवल पूंजीवादी वर्ग की मौजूदा तानाशाही से निपटने के लिए आवश्यक माना गया है।

1.9 सारांश

इस इकाई में हमने नौकरशाही के बारे में कार्ल मार्क्स के विचारों की चर्चा की। उन्होंने मैक्स द्वारा प्रतिपादित आदर्श नौकरशाही की गंभीर आलोचना की है। नौकरशाही तथा उसकी विशेषताओं सम्बन्धी मार्कर्स की व्याख्या से नौकरशाही के स्वरूप के बारे में वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत हुआ है।

1.10 प्रमुख शब्दावली

नगर राज्य : एक प्रभुसत्ता संपन्न नगर तथा उसकी संस्थाओं की सरकार।

कम्यून : एक संगठन जिसके सभी सदस्य अपने श्रम के उत्पाद सहित प्रत्येक वस्तु का उपयोग समान रूप से करते हैं।

त्रात्स्कीवादः रूसी क्रांतिकारी और लेखक लियोन त्रात्सकी (1879–1940) का साम्यवादी सिद्धान्त, जिसमें उन्होंने सर्वहारा वर्ग के तत्काल विश्वव्यापी संकल्प का आह्वान किया।

कोरा आदर्शः वास्तविक या काल्पनिक समाज, स्थान, स्थिति आदि जो पूर्ण या आदर्श समझी जाती है।

1.11 बोध प्रश्न

1. (1) कार्ल मार्क्स द्वारा बताए गए नौकरशाही के उदय होने के कारणों को स्पष्ट कीजिए।
   (2) नौकरशाही की भूमिका का विवेचन कीजिए।
   (3) नौकरशाही की शक्ति का आधार क्या है?

2. (1) मार्क्स के अनुसार नौकरशाही की विशेषताएं क्या हैं?
   (2) काल मार्क्स ने नौकरशाही में अलगाव के किन पहलुओं का उल्लेख किया है?
   (3) पेरिस–कम्यून में प्रशासन के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
   (4) नौकरशाही के समबन्ध में मार्क्स के आलोचनात्मक विश्लेषण के मुख्य आधार क्या हैं?

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखें अनुभाग 16.2
   (2) देखें अनुभाग 16.3
   (3) देखें अनुभाग 16.4

2. (1) देखें अनुभाग 16.5
   (2) देखें अनुभाग 16.5.5
   (3) देखें अनुभाग 16.7
   (4) देखें अनुभाग 16.8

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

एल्ब्रो मार्टिन, 1970, ब्यूरोक्रेसी, मैकमिलन, लन्दन।

मोहित, भट्टाचार्य, न्यू हॉराइजन ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (न्यू डेल्ही : जवाहर प्रकाशन, 2006

प्रसाद रवीन्द्र डी. एट. आल 2012, एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

इकाई– 02
प्रतिनिधि नौकरशाही

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 प्रतिनिधि नौकरशाही का अर्थ
2.3 प्रतिनिधि नौकरशाही के कारण
2.4 ब्रिटेन और अमरीका में स्थिति
2.5 अमेरीका में स्थिति
2.6 प्रतिनिधित्व की सीमाएं
2.7 निष्कर्ष
2.8 सारांश
2.9 प्रमुख शब्दावली
2.10 बोध प्रश्न
2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य :

- प्रतिनिधि नौकरशाही संकल्पना (विचार) की व्याख्या कर सकेंगे;
- प्रतिनिधि नौकरशाही के पक्ष में दिए जाने वाले कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे; और
- प्रतिनिधि नौकरशाही के लक्ष्य को प्राप्त करने में आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

नौकरशाही लोक प्रशासन का यंत्र और साधन है। लेकिन अपनी स्थायी एवं टिकाऊ प्रकृति और विशेषज्ञता के कारण यह राज्य में शक्ति और अधिकार का केन्द्र बन जाती है। राजनीतिक कार्यपालिका नौकरशाही की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकती। नागरिक, राजनीतिक कार्यपालिका के सदस्यों की तुलना में नौकरशाही के संपर्क में अधिक आते हैं।

राजनीतिक लेकतंत्र में यह आवश्यक है कि नौकरशाही में अनुक्रियाशीलता (संवेदनशीलता), उत्तरदायित्वता और प्रतिनिधित्व के गुण हों। नौकरशाही ने पहले दो गुण तो प्राप्त कर लिए हैं, लेकिन प्रतिनिधित्व प्राप्त करना कठिन है। समाज के समाज वैज्ञानिक गठन और आर्थिक ढांचे के कारण, इसकी प्राप्ति के लिए वातावरण तैयार करने पर जोर देते हैं। नौकरशाही, राज्य की एक संगठित, व्यवस्थित–संस्था के रुप में लोकतांत्रिक राजनीतिक ढांचे का अंग है। इसका विकास पहले पश्चिमी देशों और फिर अन्य राजनीतिक व्यवस्थाओं में हुआ।

2.2 प्रतिनिधि नौकरशाही का अर्थ

यह अपेक्षा की जाती है कि आधुनिक काल में सरकार की तरह नौकरशाही भी देश की जनता के प्रति अनुक्रियाशील (संवेदनशील), उत्तरदायी और प्रतिनिधिक हो। उसे जनता की इच्छाओं के प्रति अनुक्रियाशील होना पड़ता है। उसे सरकार यानी कार्यपालिका द्वारा दिए गए कार्यो को (सरकार की) पूरी संतुष्टि के साथ पूरा करना होता है। आधुनिक नौकरशाही को जनता के प्रति उन मंत्रियों के माध्यम से उत्तरदायी होना पड़ता है, जो हर पांचवे वर्ष विधिपूर्वक संसद या विधानसभा के लिए निर्वाचत होकर जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। आधुनिक नौकरशाही की इन दो विशेषताओं को भारत की लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में लागू किया जा चुका है। इस लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन रहा है कि नौकरशाही देश की जनसंख्या की समाज वैज्ञानिक बनावट का भी प्रतिनिधित्व करें। ब्रिटेन और फ्रांस जैसे पश्चिमी देशों में जनसंख्या के विभिन्न आर्थिक वर्गों अथवा भागों और उसमें भी विशेष रुप से निम्न वर्ग के लोगों का, नौकरशाही के उच्च–स्तर पर अथवा ''सिविल सर्विसेज'' में उचित प्रतिनिधित्व नहीं रहा है।

प्रतिनिधि नौकरशाही का अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं है। इसका अर्थ ऐसी सिविल सर्विस है जिसमें जनसंख्या के हर जाति, वर्ग और धार्मिक समूहों का आनुपातिक प्रतिनिधित्व हो। इसका अर्थ ऐसी नौकरशाही भी समझा जाता है जिसमें समाज के सभी समाजिक, धार्मिक और जातीय वर्गों के लोग हों।

प्रतिनिधि नौकरशाही की संकल्पना यह है कि प्रशासन और राजनीति के महत्वपूर्ण पदों पर सभी सामाजिक वर्गों के प्रवक्ता और प्रतिनिधि होने चाहिए। प्रतिनिधि नौकरशाही शब्द का इस्तेमाल पहली बार डोनाल्ड जे. किंग्सले ने 1944 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ''रिप्रेजेंटेटिव ब्यूरोक्रेसी'' में किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक में इंग्लैण्ड में नौकरशाही के लिए समाज के सभी वर्गों से उम्मीदवार चुनने की आवश्यकता के पक्ष में तर्क दिये थे। उन्होंने यह दलील दी थी कि केवल प्रतिनिधि नौकरशाही राजनीतिक परिवर्तनों पर अनुकूल प्रतिक्रिया करेगी अर्थात जनता के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली नौकरशाही ही नये राजनीतिक कार्यक्रमों को लागू करेगी। गैर प्रतिनिधि नौकरशाही उस पार्टी के कार्यक्रमों को विफल कर देंगी, जिसकी

नीतियां उस वर्ग के हितों के खिलाफ होंगी, जिससें नौकरशाही आई है। किंग्सले का तर्क यह है कि प्रतिनिधि नौकरशाही इसलिए आवश्यक है ताकि प्रशासन में कुछ तत्व ऐसे रहें, जो सत्तारूढ दल की नीतियों के प्रति सहानुभूति रखते हों। उनकी राय है कि लोकतंत्र, में केवल योग्यता पर्याप्त नहीं है। उन्होनें यह भी तर्क दिया कि अगर राज्य को (लोगों को) गुलाम बनाने के स्थान पर मुक्ति प्रदान करनी है, तो सार्वजनिक सेवा प्रतिनिधिक होनी चाहिए। इस प्रकार प्रतिनिधि नौकरशाही की संकल्पना का विकास, अभिजात वर्गों की ओर कम झुकाव और श्रमिक वर्गों के कम विरूद्ध होने वाली नौकरशाही को जन्म देने के लिए किया गया।

प्रतिनिधि शब्द नया नहीं है, इसका विकास इतिहास के साथ हुआ है। उदाहरण के लिए मैक्स वेबर ने प्रतिनिधित्व का वर्गीकरण का इस प्रकार किया है अर्थात् (1) विनियुक्त प्रतिनिधित्व–यह अधिकाशंतः वंशानुगत अधिकारों पर आधारित एक प्राचीन रूप है, (2) सामाजिक रूप से स्वतंत्र वर्गानुसार प्रतिनिधित्व। यह सामाजिक दृष्टि से विशेषाधिकार प्राप्त समूह है, जो दूसरों को अपने नियमों के अन्तर्गत लाने का दावा करता है (3) निर्देशित प्रतिनिधित्व और, (4) स्वतंत्र प्रतिनिधित्व। पहले तीन प्रतिनिधित्वों के बारे में प्राचीन काल में सभी को पता था और चौथा यानी स्वतंत्र–प्रतिनिधित्व अपने आप में एक है, जिसका आधुनिक युग में विस्तार हो रहा है।

2.3 प्रतिनिधि नौकरशाही के कारण

प्रतिनिधि नौकरशाही के पक्ष में अनेक कारण दिए जाते हैं। पहला नौकरशाही सरकार का तंत्र अथवा अंग है। एक सच्चे लोकतंत्र में प्रतिनिधि विधान मण्डल अथवा संसद होनी चाहिए, एक प्रतिनिधि कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिमण्डल और साथ ही प्रतिनिधि नौकरशाही अर्थात् ''सिविल सर्विस'' होनी चाहिए। जब तक नौकरशाही प्रतिनिधिक नहीं होगी देश की राजनीतिक व्यवस्था पूरी तरह लोकतांत्रिक नहीं हो सकेगी, क्योंकि सरकार के सभी कानूनों, नियमों और नीतियों को अन्ततः नौकरशाही अथवा ''सिविल सर्विस'' ही कार्यान्वित करती है।

नौकरशाही को प्रतिनिधिक स्वरूप प्रदान करने के पक्ष में दूसरा कारण यह दिया जाता है कि समाज के गरीब और दुर्बल वर्गों की भलाई और विकास के कार्यों को तब तक संतोषजनक ढंग से पूरा नहीं किया जा सकता जब तक इस कार्य का गरीब और दुर्बल वर्गो के लोग स्वयं कार्यान्वित न करें। यह वही आधार है जिस पर आधुनिक विधान मण्डल या आधुनिक कार्यपालिका का गठन देश की समस्त जनसंख्या के प्रतिनिधि के रूप में किया जाता है।

ब्रिटेन में दूसरे महायुद्ध के दौरान तथा उसके बाद, और भारत में स्वतंत्रता के बाद प्रतिनिधि नौकरशाही के पक्ष में एक तर्क दिया जाता रहा है। यह मंत्रियों सहित राजनीतिक तत्वों और उच्च–स्तर के सरकारी अधिकारियों के बीच सद्भावपूर्ण

या कम से कम अनुकूल संबंधों की आवश्यकता है। लोकतंत्र में संसद या विधान सभा या स्थानीय संस्थाओं के निरंतर होने वाले चुनावों में उत्तरोत्तर मंत्री और विधायक चुने जाने वाले लोग समाज के निचले तबके के होते हैं। सिविल–सर्विस के सदस्य जिस अनुभव का सहारा लेंगे वह सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करता, और वे नये तथ्य जिनका वे सामना करते हैं, उन्हे विशेष अनुभव के परिप्रेक्ष्य में देखा जाएगा। इसके अलावा, राजनीतिक कार्यपालिका को उनकी सलाह का क्षेत्र संकीर्ण होगा। राजनीतिक कार्यपालिका के कारण गलतफहमी पैदा हो सकती है। राजनितिक कार्यपालिका के प्रति बड़े सरकारी अफसरों की वफादारी में कमी का सवाल तो पैदा नहीं होता लेकिन कुछ अवसरों पर विचारों में मतभेद और कभी–कभी संघर्ष की स्पष्ट संभावना है। भारत और ब्रिटेन दोनों जगह राजनीतिक और प्रशासकीय पुस्तकों में राजनीतिक कार्यपालिका और बड़े सरकारी अफसरों के बीच असामंजस्यपूर्ण स्थिति के अनेक उदाहरण दर्ज हैं।

2.4 ब्रिटेन और अमरीका में स्थिति

ब्रिटेन में स्थिति

ब्रिटेन में प्रशासकीय वर्ग की सामाजिक बनावट अभिजात वर्गीय है। यद्यपि श्रमजीवियों और निम्न मध्य वर्ग में शिक्षा के प्रसार के साथ इन वर्गो के उम्मीदवारों की संख्या में बढोत्तरी हुई है। इसीलिए दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसल ने पब्लिक स्कूलों के बारे में लिखते हुए उन्हें सत्तारूढ़ कुलीनतंत्र का ''उपयुक्त शैक्षणिक साधन'' बताया था। लेकिन 1944 के शिक्षा अधिनियम लागू होने के बार श्रमजीवी वर्गो के बच्चे उत्तरोत्तर विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। श्रमजीवी परिवारों के कुछ स्नातक बच्चे खुली प्रतियोगिताओं के जरिए अब सिविल सर्विस के उच्च पदों पर पहुंच रहे हैं। इसके अलावा, इन परिवारों के कुछ लोग अधीनस्थ पदों से पदोन्नत भी हो रहे हैं।

यह सच है कि युद्ध के बाद के वर्षो के दौरान श्रमजीवी वर्गो के कुछ छात्र–छात्राओं ने भी राज्य छात्रवृतियों की सहायता से इन प्रमुख विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया। अन्य विश्वविद्यालयों के छात्र प्रतियोगिता परीक्षाओं में शामिल नहीं हुए क्योंकि या तो उनके पाठ्यक्रम उन्हें ऑक्सफोर्ड के छात्रों की तरह प्रतियोगिता के लिए तैयार नहीं करते थे या प्रतियोगिता परीक्षा में साक्षात्कार के दौरान उन्हें लगा कि उनमें विश्वास की कमी है। 1971–75 की अवधि के दौरान प्रशासकीय प्रशिक्षणार्थी पदों के आवेदनों के विश्लेषण से पता लगता है कि आवेदन करने वालों में से 20: और सफल होने वाले आधे उम्मीदवारों के पास आक्सफोर्ड–कैम्ब्रिज की डिग्री थी। प्रशासकीय वर्ग की खुली प्रतियोगिताओं में ऑक्सफोर्ड–कैम्ब्रिज की सफलता का अर्थ यह है कि कुछ सीमा तक इन विद्यालयों के कारण ब्रिटेन की सबसे अधिक प्रतिष्ठित सिविल सर्विस में अन्य विश्वविद्यालयों और उनके छात्रों को

समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल रहा है। 1966 में प्रशासकीय वर्ग की सदस्यता का कुछ उल्लेखनीय हिस्सा, 40% अधीनस्थ कर्मचारियों से भरा गया, जबकि स्थायी सचिवों और उपसचिवों के केवल 13% पद इस तरह भरे गए। स्थिति में इस बदलाव से भी ब्रिटेन में प्रशासकीय वर्ग के अभिजातीय स्वरूप में कुछ कमी आई है।

ब्रिटेन में नौकरशाही या उच्च सिविल सर्विस का प्रतिनिधि स्वरूप दो कारणों से बढ़ता–घटता रहा है : (1) उच्च सिविल सर्विस में आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज द्वितीय महायुद्ध के बाद आक्सफोर्ड के आनर्स स्नातकों की अधिकता, जिनमें अधिकांश चुने हुए पब्लिक स्कूलों के छात्र होते हैं, और ब्रिटेन के अन्य विश्वविद्यालयों के ऑनर्स स्नातकों की उपेक्षा। (2) देश की श्रम जीवी जनसंख्या की तुलना में उच्च और उच्च–मध्य वर्ग के लोगों को उच्च सिविल सेवा में अत्यधिक प्रतिनिधित्व, जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या के निम्न सामाजिक स्तर की सेवाओं में कम प्रतिनिधित्व मिलता है।

2.5 अमेरीका में स्थिति

यहां तक कि अमेरीका में, जहां की शिक्षा–व्यवस्था समतावादी है प्रतिनिधि नौकरशाही नहीं है। अमेरीका में सार्वजनिक प्रशासन के पद, तीन स्तरों पर हैः संघीय, राज्य और स्थानीय। पद निजी क्षेत्र के पदों की तरह आकर्षक नही हैं। अमरीका की स्वतंत्र भावना के अनुरूप लोग व्यापार, उद्योग के क्षेत्र में अपना काम–धंधा करने के अलावा दुकान चलाना और स्वतंत्र व्यापार करना पसन्द करते हैं। इसके अलावा अमरीका में सिविल सर्विस में नौकरी का विचार हाल ही की उपज है। अभी भी सार्वजनिक प्रशासन में मध्य स्तर के कुल पदों का एक छोटा प्रतिशत इस तरह के पदों से भरा जाता है। सार्वजनिक प्रशासन में अधिकांश पद विशेषज्ञों के अथवा तकनीकी हैं और जो लोग इन पदों पर काम करते हैं वे अक्सर ऐसे पदों पर आते और वहां से जाते रहते हैं। ब्रिटेन और अमेरीका में सार्वजनिक प्रशासन के उच्च–स्तर की सेवाओं में श्रमजीवी कार्यकर्त्ताओं की कुल जनसंख्या को देखते हुए उनका प्रतिनिधित्व कम है।

भारत में स्थिति

देश में उच्च सिविल सेवा, विशेष रूप से भारतीय प्रशासकीय सेवा के सदस्यों की सामाजिक रूप के बारे में बहुत ही कम अध्ययन किए गए हैं, लेकिन जो किये गये हैं, उनसे सिद्ध होता है कि उच्च सिविल सेवाओं में– सामान्य और विशेषज्ञ दोनों वर्गो में– बहुत बड़ा प्रतिशत ऊंची जातियों, अधिक–आय वर्ग के परिवारों, और शहरी लोगों का है। सेवाओं में नीची जातियों, वर्गों और ग्रामीणों का सेवाओं में प्रतिनिधित्व कम है। इसके मुख्य कारण तीन हैं। पहला, नीची जातियों और वर्गो में उच्च शिक्षा का प्रचार धीमा है, यद्यपि स्वतंत्रता के बाद इसमें कुछ बढ़ोतरी हुई है दूसरा, प्रारम्भिक से माध्यमिक और माध्यमिक से विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के

दौरान आर्थिक कारणों से स्कूल छोड़ने वाले छात्रों की संख्या अभी भी बहुत है। तीसरा, उच्च पदों में भर्ती की प्रतियोगिता परीक्षा में बैठने के लिए न्यूनतम शिक्षा योग्यता स्नातक है। लेकिन प्रतियोगिता परीक्षा की तैयारी में स्नातक परीक्षा यानी बी0ए0, बी0एस0सी0, बी0काम0 आदि करने के बाद कुछ वर्ष और लग जाते है।

राज्य सरकारों ने अनुसूचित जातियों और जनजातियों को अनेक रियायतें प्रदान की हैं। इन वर्गो के उम्मीदवारों को विभिन्न सेवाओं में भर्ती के लिए आयु सीमा में कुछ वर्षो की छूट दी जाती है। इन लोगों को प्रार्थना और परीक्षा शुल्क मे छूट दी जाती है। अनुसूचित जातियों/जनजातियों के सदस्यों को अन्तरणः प्रमाणक जारी कर दिया जाता है चाहे जिस राज्य में वह जाएं वहां उनकी जाति को अनुसूचित माना गया हो अथवा नहीं। केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा संचालित प्रतियोगिता परीक्षाओं मे बैठने के लिए इन जातियों के लोगों के लिए सरकार, विश्वविद्यालयों राष्ट्रीयकृत बैंकों और अन्य लोक प्राधिकरणों द्वारा देश में विभिन्न स्थानों पर ''कोचिंग क्लासेज'' चलाई जाती हैं। इन जातियों के उम्मीदवारों को उदर छात्रवृत्तियां प्रदान की जाती हैं ताकि वे ''कोचिंग क्लासेज'' में दी जा रही सुविधाओं का पूरा लाभ उठा सके। इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि इन लोगों को विभिन्न सरकारों द्वारा निर्धारित भर्ती में पूर्वोपायों की जानकारी देने के लिए विशेष कक्षाएं चलाई जाए। सेवा के दौरान उनकी कुशलता में सुधार लाने के लिए पृथक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इन विषयों में उनकी शिकायतें दूर करने के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। भारत सरकार द्वारा 1978 में नियुक्त अनुसूचित जातियों और जनजातियों के आयोग ने इन लोगों की स्थिति की जांच करने और उसकी रिपोर्ट देने के लिए देश भर में क्षेत्र अधिकरी नियुक्त किये हैं। इन क्षेत्र अधिकारियों को यह अधिकार दिया गया है कि उनके द्वारा सरकारी विभागों और एजेन्सियों के साथ संपर्क स्थापित करें और यह सुनिश्चित करें कि उनके द्वारा सेवाओं, सामाजिक, आर्थिक तथा कानूनी बरताव और विकास योजनाओं एवं कार्यक्रमों को लागू करने के बारे में आरक्षण, अन्य पूर्वोपायों, रियायतों तथा सुविधाओं के संबंध में जारी आदेशों का पालन किया जाए।

2.6 प्रतिनिधित्व की सीमाएं

यद्यपि सिद्धान्त रूप मे प्रतिनिधि नौकरशाही के तर्क को स्वीकार कर लिया गया है, इसे वास्तविक रूप में प्राप्त करने में अनेक कठिनाईयां आती हैं। उच्च सिविल सर्विस के लिए उम्मीदवारों का चयन कुछ शिक्षा योग्यताओं के आधार पर किया जाता है, जैसे कि विश्वविद्याालय डिग्री और एक निश्चित आयु सीमा, पच्चीस, छब्बीस वर्ष के भीतर। ये सामान्यज्ञ सेवाएं होती है। विशेषज्ञ सेवाओं के लिए आवश्यक विशेषज्ञता अर्थात् तकनीकी, व्यावसायिक अथवा वैज्ञानिक योग्यताएं आवश्यक हैं। वरिष्ठ पदों के लिए, सम्बद्ध क्षेत्रों में अनुभव यानि इंजीनियरिंग, सांख्यिकी, कम्प्यूटर–प्रोग्रामिंग आदि आवश्यक हैं। समाज में निम्न वर्गों के लोग विश्वविद्यालय

शिक्षा प्राप्त करने की स्थिति में नही हाते हैं। इसका मुख्य कारण है कि उनके माता–पिता या संरक्षक उन्हें विश्वविद्यालय/कालेज भेजने में असमर्थ होते हैं। कुछ मामलों में पिछड़े वर्गो के बच्चे युगों पुरानी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कारण बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। जहां तक विशेषज्ञ पदों का संबंध है, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो के लोगों के लिए इनमे प्रवेश पाना या प्रतियोगिता में सफल होना और भी कठिन है, क्योंकि उनके पास विशेष योग्यता अर्थात् इंजीनियरी, चिकित्सा, कृषि शास्त्र आदि की डिग्री नहीं होती। अगर उनके पास विशेषज्ञ डिग्री नहीं है, तो वे इस तरह के विशेषज्ञ पदों के लिए विशेष अनुभव कैसे प्राप्त कर सकते हैं।

सरकारी सेवा लिए के विशेष किस्म की कुशलता और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए चेस्टर बरनार्ड का कहना है कि प्रौद्योगिक परिवर्तन शुरू करने के लिए प्रबंधकीय क्षमता की आवश्यकता होती है। प्रबंधकीय कार्य नित्य कर्म नहीं है और उन्हें हर कोई नहीं कर सकता। इसके लिए दबाव में काम करने की क्षमता जरूरी होती है और अधिकारियों को खतरे की स्थिति में जिम्मेदारी लेनी पड़ती है। ऐसी दक्षता समाज में विकसित नहीं होती। प्रशासकों को भी विशेष कामों जैसे कि पुलिस, सार्वजनिक प्रतिष्ठान या कल्याण कार्यक्रमों आदि में प्रशिक्षण लेना पड़ता है। इसके लिए विशेष योग्यता और गुणों की जरूरत पड़ती है। पुलिस सेवा में जाने के लिए निर्धारित ऊंचाई का होना जरूरी है। इस तरह की कुशलता और गुण निर्धारित कामों को करने के लिए जरूरी होते हैं। इससे नौकरशाही को प्रतिनिधि स्वरूप प्रदान करने में बाधा आती है। सरकार इस दिशा में सामंजस्य बना सकती है और इन योग्यताओं और गुणों में छूट दे सकती है, लेकिन यह बात माननी पड़ती है कि नौकरशाही को एक सीमा तक ही प्रतिनिधिक बनाया जा सकता है और उसे पूरी तरह प्रतिनिधिक बनाना संभव नहीं है।

एक बहुल (विभिन्न जातियों, धर्मो और संस्कृतियों वाले) समाज में प्रतिनिधि नौकरशाही के परिणाम अशुभ होंगे। विभिन्न सामाजिक जातीय अथवा भौगोलिक समूहों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने की मांग करना अनुदार और संकीर्णपंथी प्रवृत्तियों को निमंत्रण देना है। ऐसे मामले में नौकरशाही एक सजातीय (समांगी) और संगठित व्यवस्था बनने के स्थान पर विभाजक शक्तियों की प्रतिनिधि बन जाएगी। इसके अलावा योग्यता के आधार पर नौकरशाही का चयन कुछ विशेष निर्धारित आधार पर भर्ती में आने वाली सीमाओं के कारण किया जाता है। नौकरशाही को प्रतिनिधिक स्वरूप प्रदान करना उन निर्धारित समूहों को खुला निमंत्रण देना है, जो बुद्धिवाद और तर्कवाद को कमजोर करते हैं, जिन पर योग्यता के आधार पर नौकरशाही के चयन की व्यवस्था आधारित है। नौकरशाही व्यावसायिकता, बुद्धिवाद और एकरूपता पर आधारित है। नौकरशाही–व्यवस्था में प्रतिनिधित्व शुरू करने का अर्थ है इसमें

विषमता की शुरूआत करना। इस प्रकार परिभाषा के अनुसार प्रतिनिधि नौकरशाही अंतर–विरोधी शब्द हो जाता है।

प्रतिनिधि नौकरशाही की संकल्पना प्रतिनिधि–लोकतंत्र के आदर्श को प्राप्त करने के साथ जुड़ी है। विश्व राज्य व्यवस्था के ब्रिटेन और अमेरिका जैसे दोनों लोकतांत्रिक देशों में, जिनमें ब्रिटेन संसदीय लोकतंत्र का जनक है और अमेरिका, जो भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से सबसे बड़ा लोकतंत्र है, अभी तक एक प्रतिनिधि नौकरशाही की संकल्पना प्राप्त नहीं की जा सकी है। यहां तक कि सोवियत संघ में भी, जहां आर्थिक और सामाजिक समानता के सिद्धान्तों को व्यापक रुप से लागू किया गया है, अभी तक प्रतिनिधि नौकरशाही का आदर्श पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सका है। किसी राजनीतिक व्यवस्था में समाज के विभिन्न व्यक्तियों के बीच आर्थिक एवं सामाजिक समानता की प्राप्ति से सरकार और प्रशासन में विभिन्न स्तरों पर प्रशासकीय पदों के इच्छुक व्यक्तियों की बौद्धिक योग्यता और मानसिक–क्षमता का अन्तर समाप्त नहीं हो जाता। यह संभव है कि एक धनी या निर्धन व्यक्ति का पुत्र या पुत्री लोक प्रशासन के क्षेत्र में काम न करना चाहे। भारत जैसे देश में जनजातियों के लोग राजनीतिक समुदाय के सभ्य हिस्से से अलग रखे जाते हैं। इसके परिणामस्वरुप ये लोग सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से पीछे रह जाते हैं।

समाज की भौतिक आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने के अलावा, नौकरशाही को समाज के विभिन्न वर्गो एवं स्तरों के प्रति अपने अनेक कार्य करते समय कुशल एवं प्रभावी होना पड़ता है। प्रशासकीय कार्यों से कुशल एंव कारगर निष्पादन के लिए जरुरी है कि नौकरशाही का चुनाव योग्यता एवं क्षमता के आधार पर किया जाए। इसके कारण भी प्रतिनिधि नौकरशाही की संकल्पना को पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सकता।

2.7 निष्कर्ष

प्रतिनिधि नौकरशाही राजनीतिक संस्थाओं की स्थिरता में सन्तुलित योगदान करती है। वह नीतियां तैयार करते और उनको लागू करते समय सभी वर्गों की भावनाओं और हितों का ध्यान रखती है। लेकिन इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जनता की इच्छाओं आकांक्षाओं को पूरा करने की नौकरशाही की इच्छा पर उसके प्रतिनिधि स्वरुप का प्रभाव कम और अन्य कारणों का अधिक पड़ता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि हर देश में नौकरशाही सहानुभूतिपूर्ण, उत्तरदायी और कुशल हो। यह बात विकासशील देशों पर विशेष रुप से लागू होती है चाहे नौकरशाही प्रतिनिधिक हो या न हो।

प्रतिनिधि नौकरशाही की संकल्पना के पीछे दो महत्वपूर्ण मान्यताएं (पूर्वानुमान) हैं। पहला, प्रत्येक समुदाय को उसकी जनसंख्या के अनुपात में समान राजनीतिक

अधिकार प्राप्त हैं। दूसरे, सिविल सर्वेन्ट (सरकारी अफसर) नौकरशाही में अपने रुतबे में अपने वर्ग के दृष्टिकोण और पूर्वाग्रहों को भी ले जाते हैं। लेकिन ये दोनों धारणाएं संदिग्ध हैं। पहले किसी भी समाज में सभी समूहों या वर्गों के समान अधिकार नहीं होते हैं। इसी तरह सरकारी अफसरों का निजी व्यवहार इस बात पर आधारित नहीं होता कि वे किस वर्ग से आए हैं। आमतौर पर यह बात मानी जाती है कि किसी व्यक्ति का व्यवहार अनेक बातों से प्रभावित होता है जैसे कि अनुभव, शिक्षा समाजीकरण आदि। यह बात इस विषय पर बी. सुब्रमण्यम के विचारों से स्पष्ट हो जाती है।

''हम कुलीन और धनी वंशों के ऐसे उत्तराधिकारियों के बारे में तो जानते ही हैं, जिनकी श्रमजीवियों के साथ जबरदस्त सहानुभूति होती है। इसके विपरीत, अनेक प्रेक्षकों की राय में निम्न वर्गों के ऐसे लोगों की संख्या भी काफी होती है जो अपने परिश्रम के बल पर चोटी पर पहुंच जाते हैं। यह सुझाव दिया गया है कि ऐसे लोग, जो निम्न वर्ग से ऊपर पहुंचते हैं और चोटी की ओर बढ़ते हैं, कम से कम वर्तमान परिस्थितियों में, सफलता की ओर बढ़ते हुए प्रारम्भ में, अथवा मध्य में अपनी वर्ग सहानुभूति त्याग देते हैं। उच्च वर्ग में इन वर्गों के लोगों की प्रमाणित उपस्थिति और निम्न वर्ग के उम्मीदवारों में उनकी अधिक संख्या से प्रतिनिधि नौकरशाही के पक्ष का बुनियादी तर्क समाप्त हो जाता है।"

2.8 सारांश

यह अपेक्षा की जाती है कि आधुनिक समय में सरकार की तरह नौकरशाही भी देश की जनता के प्रति सहानुभूतिपूर्ण और उत्तरदायी ही नहीं होगी अपितु उसका प्रतिनिधित्व भी करेगी। नौकरशाही पहली दो समाज वैज्ञानिक विशेषताओं की तरह ही देश में जनसंख्या के गठन के अनुसार प्रतिनिधित्व के लक्ष्य को प्राप्त करना भी कठिन रहा है। नौकरशाही के प्रातिनिधिक हुए बिना देश की राजनीतिक व्यवस्था पूरी तरह लोकतांत्रिक नहीं हो सकती। इसके अलावा, समाज के गरीब अथवा पिछड़े वर्गों की भलाई के कार्यक्रम, तब तक इन वर्गों की संतुष्टि के साथ पूरे नहीं किये जा सकते, जब तक गरीब वर्गों के लोग इन कार्यक्रमों को लागू नहीं करते। प्रतिनिधि नौकरशाही की व्यवस्था होने पर राजनीतिक तत्वों से नौकरशाही के आपसी सम्बन्ध भी मैत्रीपूर्ण हो जाएंगे।

समाज में व्यक्तियों के बीच आर्थिक और सामाजिक समानता की स्थापना करने से विभिन्न व्यक्तियों की घटती–बढ़ती बौद्धिक योग्यता और उनका मानसिक दृष्टिकोण समाप्त नहीं हो जाएगा। प्रशासकीय कुशलता की आवश्यकता और कारगरता प्रतिनिधि नौकरशाही के लक्ष्य को प्राप्त करने में दूसरी बाधा है। अगर किसी राजनीतिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को यह आश्वासन होता है कि उसे सार्वजनिक प्रशासन में किसी भी स्तर पर, यहां तक कि उच्चतम स्तर पर किसी भी

पद को प्राप्त करने का समान अवसर मिलेगा, तो प्रतिनिधि नौकरशाही की संकल्पना का लक्ष्य आसानी से प्राप्त किया जा सकेगा।

2.9 प्रमुख शब्दावली

समतावादी : मानवता की समानता के सिद्धान्त का अनुमोदन या समर्थन करना।

अभिजात वर्ग : किसी समूह, समुदाय अथवा समाज के सबसे शक्तिशाली धनी और प्रतिभाशाली सदस्य।

सजातीय या समांगी : एक ही तरह के हिस्सों से निर्मित या गठित।

कुलीनतंत्र : थोड़े से लोगों के समूह की सरकार।

बहुल समाजः पृथक जातीय मूल, सांस्कृतिक स्वरूप और धार्मिक मतावलंबियों से निर्मित समाज।

भंडारः जहां वस्तुएं रखी जाती हैं अथवा पाई जाती हैं।

2.10 बोध प्रश्न

1. (1) प्रतिनिधि नौकरशाही क्या है?
   (2) प्रतिनिधि नौकरशाही की आवश्यकता क्यों है?

2.(1) ब्रिटेन और अमरीका में नौकरशाही कितनी प्रातिनिधिक है?
   (2) भारत में नौकरशाही कितनी प्रातिनिधिक है?
   (3) नौकरशाही को प्रातिनिधिक बनाने में क्या बाधांएं हैं?

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) भाग 17.2 देखिए।
   (2) भाग 17.3 देखिए।

2. (1) भाग 17.4 देखिए।
   (2) भाग 17.5 देखिए।
   (3) भाग 17.6 देखिए।

2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

भट्टाचार्य, मोहित, 1987, **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन** वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता।

हिल, एम.जे., 1972, **दि सोशियोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन**, वेडनफील्ड एंड निकलसनः लंदन।

किंग्सले जे. डोनाल्ड, 1944, **रिप्रेंजेंटेटिव ब्यूरोक्रेसी**, एंटीटोच प्रेस, ओहियो।

क्रिसलोव, समुअल, 1974, **रिप्रेजेंटेटिव ब्यूरोक्रेसी, प्रेंटिस हॉल**, इंगलेवुड क्लफस, न्यू जेरसे।

सिंधी, एन.के., 1977, **ब्यूरोक्रेसी, पोजीशन्स एंड पर्सन्स** अभिनव; नई दिल्ली।

सुब्रमण्यम वी. 1971, **सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियाज,** एडमिनिस्ट्रेटर्स डिवीजन, गवर्नमेंन्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

इकाई– 03
नौकरशाही एवं लोकतंत्र

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 सामान्य एवं विशेषज्ञ प्रशासक
  3.2.1 सामान्य एवं विशेषज्ञ प्रशासकों के बीच सम्बन्ध
  3.2.2 ब्रिटेन तथा भारत में अनुभव
3.3 गुमनामी
3.4 प्रतिबद्धता
3.5 सारांश
3.6 प्रमुख शब्दावली
3.7 बोध प्रश्न
3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य :

- लोकतंत्र में नौकरशाही के प्रमुख मुद्दे क्या है;
- सामान्य एवं विशेषज्ञ प्रशासकों के बीच भेद जान सकेंगे, तथा इनके सम्बन्धों की समस्याओं को जान सकेंगे।
- गुमनामी की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे तथा;
- प्रतिबद्धता की अवधारणा की जांच कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

नौकरशाही और लोकतंत्र के बीच सम्बन्धों की बहस लोक प्रशासन की केन्द्रीय चिंताओं में से एक है। यह सवाल निरन्तर उठाता है कि लोकतंत्र एवं नौकरशाही में सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाय।

लोकतंत्र में राजनीतिक हस्तक्षेप को आवश्यक करार देते हुए स्पष्ट किया कि वे इसे सुशासन में बाधा के तौर पर न देखें। राजनीतिक हस्तक्षेप और अनुचित हस्तक्षेप के बीच यह है कि इनमें से एक व्यवस्था के लिए 'अनिवार्य और अपरिहार्य है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया के आगे बढ़ने में नौकरशाही मिजाज और राजनीतिक हस्तक्षेप

की अक्सर बाधक के तौर पर चर्चा की जाती है। वस्तुतः लोकतंत्र में नौकरशाही और राजनीतिक हस्तक्षेप साथ–साथ चलते हैं। यह लोकतंत्र की विशिष्टता है। लोकतंत्र में राजनीतिक हस्तक्षेप की जरूरत है क्योंकि लोगों को जनप्रतिनिधियों से उम्मीदें होती हैं। बाधा और कठिनाई जैसे शब्दों को नौकरशाही व्यवस्था से हटाने की जरूरत है। सुशासन के लिए जवाबदेही जिम्मेदारी और पारदर्शिता आवश्यक है। नौकरशाही में सुधारों और प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने की जरूरत है क्योंकि वह दिन दूर नहीं, जब दुनिया एम–गवर्नेंस या मोबाइल गवर्नेंस पर गौर करेगी।

पिछले कई वर्षों के दौरान कामकाज बढ़ने के साथ–साथ प्रशासन का भी विस्तार हुआ है। वास्तव में, स्वयं राज्य के स्वरूप में परिवर्तन आया है और यह सरकारों के बढ़ते कामकाज से स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। सिविल सेवाओं पर नौकरशाही में तेजी से वृद्धि भी इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप हुई है। आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य में सिविल सेवा या नौकरशाही की भूमिका का विस्तार हुआ है। नौकरशाही में इस विस्तार तथा प्रशासन में इनकी बढ़ती हुई भूमिका से कई नए प्रश्न सामने आये हैं। सामान्य प्रशासकों तथा विशेषज्ञों के बीच सम्बन्धों की समस्या, सिविल सेवाओं की प्रतिबद्धता तथा तटस्थता, भ्रष्टाचार, अकुशलता, नौकरशाही का प्रतिनिधि स्वरूप आदि प्रश्न इनमें शामिल हैं, पिछली इकाई में हमने नौकरशाही के प्रतिनिधि स्वरूप की अवधारणा की चर्चा की थी और इस इकाई में हम नौकरशाही के तीन महत्वपूर्ण प्रश्नों की चर्चा करेंगे। ये हैंः सामान्य तथा विशेष प्रशासकों के बीच सम्बन्ध, की अवधारणा तथा सिविल सेवाओं की प्रतिबद्धता।

3.2 सामान्य एवं विशेषज्ञ प्रशासक

आधुनिक युग में कल्याणकारी राज्य के कार्यपालिका रूपी नए उत्तरदायित्वों के कारण लोक प्रशासन का कार्य–कलाप विविधतापूर्ण तथा जटिल होता जा रहा है। आधुनिक युग में विशेषकर प्रथम विश्व युद्ध के बाद राज्य को कई जिम्मेदारियां निभानी पड़ी हैं। इनमें बेरोजगारों से राहत देना इस्पात, मशीन निर्माण खनन, परमाणु ऊर्जा जैसे मूल उद्योगों का संचालन, कैंसर जैसी घातक बीमारियों से पीड़ित लोगों की देखभाल तथा हवाई यातायात आदि शामिल हैं। ये कार्य तथा अन्य कामकाज चलाने के लिए लोक प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है। प्रशासकों को विशेष रूप से उच्च स्तर पर साामन्य प्रशासकों तथा विशेषज्ञों में वर्गीकरण किया जाता है। विशेषज्ञ वे लोग हैं जिन्होंने शिक्षा के किसी क्षेत्र में तथा विषय विशेषज्ञ के संचालन में विशेषता अर्जित की है। इंजीनियर, चिकित्सक, सांख्यिकी विशेषज्ञ, वैज्ञानिक, रसायन टैक्नोलॉजी–विशेषज्ञ, कम्प्यूटर प्रोग्रामर आदि विशेषज्ञ कहलाते हैं।

सामान्य प्रशासक शिक्षा के दौरान किसी विषय विशेष अथवा क्षेत्र तथा भावी–प्रशिक्षण में विशेषता प्राप्त नहीं करते। सिविल सेवा में आने वाला व्यक्ति

साहित्य अथवा इतिहास का स्नातक हो सकता है, लेकिन इसके आधार पर वह कृषि, स्वास्थ्य, समाज कल्याण जैसे लोक प्रशासन के विशिष्ट विषयों में कामकाज वाले किसी विशेष विभाग अथवा काम पर नियुक्ति के लिए विशिष्ट नहीं बन जाता। वह रसायन या जीव–विज्ञान में स्नातक हो सकता है, लेकिन सम्भव है कि प्रशासनिक नौकरी के दौरान वह इन क्षेत्रों से सम्बद्ध लोक प्रशासन विभाग में किसी पद पर कार्य न करें तो भी अगर उसने ऐसी प्रशासनिक नौकरी चुनी है जिसमें निरीक्षण, नियंत्रण अथवा मार्ग निर्देशन का काम उसके विशेष अध्ययन वाले विज्ञान विषय के संचालन कार्य से सम्बद्ध नहीं है तो वह सामान्य प्रशासक कहलाएगा। कोई जिलाधीश अपनी शिक्षा के आधार पर वैज्ञानिक, इंजीनियर, इतिहास, भाषा वैज्ञानिक अथवा समाजशास्त्री भी हो सकता है। उसका कामकाज सामान्य किस्म का है और इसमें लगान वसूली, कानून एवं व्यवस्था की देखभाल जैसे काम शामिल हैं।

किसी भी प्रशासनिक संस्थान में दायित्व के सतर पर पद जितना बड़ा होता है, काम उतना ही अधिक सामान्य हो जाता है। तकनीकी विभागों में भी उनके अध्यक्ष नीति–निर्धारण, प्रशासनिक नियंत्रण, निर्देशन, कर्मचारियों की देखरेख एवं नियंत्रण, संस्थान के भीतर तथा बाहर समन्वय एवं जनसम्पर्क जैसे सामान्य कामकाज देखते हैं। इसमें संदेह नहीं कि ये कामकाज उन विभागों के विषयों से काफी हद तक सम्बन्धित होते हैं। सामान्य प्रशासकों एवं विशेषज्ञों के बीच सम्बन्धों का प्रश्न सार्वजनिक रूप से अथवा सिविल सेवाओं में उनके सवंर्गों (काडर) अथवा वर्गों के संचालन तथा उनकी जिम्मेदारियों को लेकर हाल में वाद–विवाद का विषय बना है। पहली बात तो यह है कि इनके पदक्रम अलग–अलग हैं अर्थात् इन वर्गों के अधिकारी–अधीनस्थ में विभिन्न स्तरों पर सम्बन्ध हैं। दूसरी बात यह है कि नीति–निर्धारण, प्रशासनिक नियंत्रण एवं उच्चतम स्तर पर प्रबंध का काम कुछ मामलों को छोड़कर सामान्यतः विशेषज्ञों की बजाय सामान्य प्रशासकों को सौंपा जाता है। तीसरे, सामान्य प्रशासकों का स्थानान्तरण एक विभाग से दूसरे में, एक तरह के काम से दूसरे तरह के काम में, किसी विभाग से सार्वजनिक उद्यम अथवा स्थानीय स्वशासन में या वापिस बिना किसी रूकावट या परेशानी के कर दिया जाता है। लेकिन, विशेषज्ञों का स्थानांतरण अथवा पदोन्नति उनके अपने विभागों में ही की जाती है। सरकारी विभागों में सचिवों के पद, यहां तक कि अधिकांश कार्यपालक विभागों के अध्यक्ष पद सामान्य प्रशासकों के लिए आरक्षित रहते हैं। सामान्य प्रशासकों की यह विशिष्ट हैसियत विशेषज्ञों के आत्म–गौरव को ठेस पहुंचाती है तथा उनके मनोबल एवं विश्वास को आहत करती है।

सामान्य सिविल सेवा की अवधारणा तीन बातों पर आधारित थी : पहली तो यह थी कि सिविल सेवा में आने वाला व्यक्ति किसी भी कार्यपालक विभाग तथा सरकार के मुख्य सचिवालय में जिसकी उच्च पद पर सेवाकालीन प्रशिक्षण के बिना भी विशिष्टता से काम कर सकेगा। दूसरे, यह सोचा गया कि वह सरकार को

नीति–निर्धारण, निर्णय निर्धारण के बारे में परामर्श दे सकेगा– यही दो बातें सरकार के शासकीय आदेशों का आधार होती हैं– प्रशासन तंत्र चला सकेगा एवं शासकीय आदेशों का परिपालन करा सकेगा। तीसरी बात यह सोची गई कि कृषि, स्वास्थ्य चिकित्सा आदि कामकाजी विभागों में इन विषयों के बारे में वास्तविक विशेषज्ञ एवं तकनीकी परामर्श इन क्षेत्रों के तकनीकी तथा वैज्ञानिक अधिकारी (जैसे कृषि–वैज्ञानिक, डाक्टर, वन विशेषज्ञ, इंजीनियर आदि) देंगे। इनकी विशेषतापूर्ण तथा तकनीकी सलाह को सामान्य सिविल प्रशासक स्वयं समझने के बाद इनके आधार पर नीति–निर्धारण और निर्णय–निर्धारण करेंगे। फ्रांस जैसे अन्य देशों में तो नहीं, लेकिन ब्रिटेन और भारत में सरकार के मुख्य सचिवालय विभागों के अध्यक्ष सामान्य प्रशासन सचिव ही होते हैं तथा उद्योग, परिवहन, गृह, कृषि, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा, शिक्षा, सहकारिता आदि कामकाजी क्षेत्र वाले विभागों के अध्यक्ष अधिकांशतः तकनीकी अधिकारी होते हैं (लेकिन कुछ विभागों के अध्यक्ष सामान्य प्रशासक भी होते हैं)।

3.2.1 सामान्य एवं विशेषज्ञ प्रशासकों के बीच सम्बन्ध

प्रशासन में सर्वोच्च पदों पर सामान्य प्रशासकों को रखने के समर्थन में दो दलीलें दी जाती हैं और इन्हें नीति–निर्धारण में मंत्रियों को परामर्श देने तथा कार्यपालिका पर प्रत्यक्ष नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। पहला तर्क यह है कि स्वतंत्र एवं निष्पक्ष लोक सेवा आयोग द्वारा योग्यता के आधार पर चुने गए स्नातक उदार शिक्षा के कारण अधिक व्यापक दृष्टिकोण वाले एवं बुद्धिमान होते हैं तथा प्रशासनिक समस्याओं और मसलों के बारे में उनका लचीला दृष्टिकोण होता है। दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि सिविल सेवा के सामान्य प्रशासक चूंकि एक विभाग से दूसरे विभाग में, एक पद से दूसरे पद पर अक्सर स्थानांतरित होते रहते हैं इसलिए वे कार्य, जनता एवं राजनीति सम्बन्धी विभिन्न अनुभवों को आसानी से सम्मिलित कर लेते हैं, उनके अनुरूप स्वयं को ढाल लेने की उनकी योग्यता बढ़ जाती है, और किसी भी विभाग में ऊँचे पद को संभालने की उनकी योग्यता सुदृढ़ हो जाती है।

सामान्य प्रशासकों के पक्ष में तर्क कई तरह से प्रस्तुत किए जाते हैं परन्तु मुख्य रूप से सब उपरोक्त किसी एक या दूसरे तर्क पर ही आधारित होते हैं। सामान्य प्रशासक विशेषज्ञ एवं राजनीतिज्ञ, जनता एवं सरकार, दबाव वाले वर्गों एवं संसद तथा कार्यपालिका जैसी लोकहित संस्थाओं और परस्पर विरोधी विचारों तथा बातों के बीच एक मध्यस्थ, एक निर्णायक की भूमिका निभाते हैं। सामान्य प्रशासक ''मंत्री की सोच'' के निकट होते हैं। वे विशेषज्ञों के शासन (''विशेषज्ञवादी'' पर नियंत्रण रखते हैं) विशेषज्ञ किसी काम या पहलू पर जोर देता है तथा सामान्य प्रशासक एक मध्यस्थ, समन्वयक एवं संयोजक का काम करता है। ये दो भूमिकाएं एक ही प्रशासन अथवा एक ही व्यवस्था में नहीं समा सकती। विशेषज्ञ लागत अथवा

खर्च के बारे में भी पर्याप्त ध्यान नहीं रखते। वे अपने विभाग से सम्बद्ध लोगों के बारे में बहुत जोर देते हैं।

प्रशासन में ऊँचे पदों के मामले में विशेषज्ञों को सामान्य प्रशासकों के बराबर रखने के पक्ष में एक तर्क यह दिया जाता है कि विभिन्न विभागों में सर्वोच्च पदों पर सामान्य प्रशासकों ने ठीक तरह से काम नहीं किया जबकि अपने कार्यक्षेत्र में सर्वोच्च पदों पर नियुक्ति के लिए विशेषज्ञ विशेष रूप से योग्य एवं उपयुक्त हैं।

19वीं शताब्दी के दौरान लोक प्रशासन के लिए आवश्यक विशिष्ट ज्ञान के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं थी। 19वीं शताब्दी में शासकीय कानून–व्यवस्था के सीमित कार्यों के लिए सामान्य प्रशासक पहरेदार की तरह था। आवश्यक शिक्षा अथवा सेवा में आने के बाद लिए गए प्रशिक्षण के अभाव में सामान्य प्रशासक न तो मूल व्यावसायिकता विकसित कर पाए हैं और न ही वे विभाग के कामकाज के किसी एक भी पहलू का पर्याप्त गहरा ज्ञान प्राप्त कर सके हैं और यही कामकाज के सामान्य क्षेत्र में भी हुआ है। इन कमियों के कारण अनुचित नीतियां बनी हैं और इनके द्वारा तैयार नीतियों का बुनियादी मूल्यांकन नहीं हो सका है। नीतियां लागू करने के लिए प्रभावहीन तरीके अपनाए गए हैं। नीतियों में परिवर्तन करने या बिल्कुल नई नीतियां अपनाने के लिए सामान्य प्रशासकों को पर्याप्त ज्ञान प्राप्त नहीं होता। वे अधिकतर योजनाएं बनाने में लगे रहते हैं और व्यावहारिकता से दूर रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप नीति सम्बन्धी निर्णय वास्तविकता पर आधारित नहीं होते। ब्रिटेन में कर्मचारियों तथा क्षेत्र कार्यों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता लेकिन भारत में ऐसा अधिकांशतः होता है। सामान्य प्रशासकों को सेवा में आने के बाद ऐसा प्रशिक्षण नहीं दिया जाता कि वे विशिष्ट कार्य अथवा पद सम्बन्धी जिम्मेदारी के योग्य हो सकें वे ''तकनीकी परामर्श को या तो ठीक से समझ नहीं पाते अथवा इसकी आवश्यकता नहीं समझते''। सामान्य प्रशासक आगे की योजना नीं बना पाते हैं। इसका एक कारण तो यह है कि उन्हें इंजीनियरी, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, वानिकी उद्योग आदि विशिष्ट विषयों के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के बारे में पर्याप्त ज्ञान नहीं होता। दूसरे, वे एक विभाग से दूसरे विभाग में किसी विभाग से सार्वजनिक उद्यम में या फिर जैसे अर्थ सरकारी संस्थान में नियुक्त होते रहते हैं।

विशेषज्ञों की ओर से यह बात जोर देकर कही जाती है कि एक तरफ तो सामान्य प्रशासक विभिन्न विभागों में सभी स्तरों पर ऊँचे पदों के योग्य बन जाते हैं क्योंकि उन्होंने व्यवस्था को अपने अनुमूल बना दिया है तथा दूसरी ओर विशेषज्ञों को विशिष्ट ज्ञान के बावजूद उनके अपने ही विभागों में सचिव जैसे ऊँचे पदों पर नहीं रखा जाता। वैज्ञानिक शिक्षण से विशेषज्ञों में तटस्थ दृष्टिकोण विकसित होता है जिससे कार्य सम्बन्धी पूर्वाग्रह कम होता है। सामान्य प्रशासक कामकाज के दौरान व्यक्तिगत पूर्वाग्रह से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाते। विशेषज्ञों के बारे में खर्च या लागत के बारे में पूरी तरह ध्यान न देने और अपने विभाग से सम्बद्ध लोगों के बारे

में बहुत अधिक जोर देने की आलोचना सामान्य प्रशासकों को लेकर भी की जाती है। केवल शिक्षा से ही प्रशासनिक कुशलता नहीं आती। तकनीकी एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को व्यापक बनाने की बात उइायी जा सकती हैं। ऐसे पाठ्यक्रमों को व्यापक बनाने से उन उम्मीदवारों को अपनी सेवा/व्यवसाय में मदद मिलेगी जो सिविल सर्विस की प्रतियोगिता में उत्तीर्ण हो चुके हैं। सामान्य एवं विशेषज्ञों में असंतोष भी पनपता है। इस दोहरी व्यवस्था को समाप्त करने से अनेक लाभ होंगे। विशेषज्ञों में आशा भंग पैदा नहीं होगी। इससे दोनों वर्गों–सामान्य प्रशासकों तथा विशेषज्ञों के बीच सम्पर्क अधिक आसान एवं अधिक कारगर हो सकेगा। विशेषज्ञों से बेहतर विशिष्ट परामर्श उपलब्ध हो सकेगा। उनके पास प्रशासनिक कार्य सरल तथा जल्दी हो सकेगा और काम बेकार नहीं जाएगा।

ब्रिटेन में 19वीं शताब्दी के दौरान प्रचिलत ''बुद्धिमान शौकिया'' का सिद्धान्त आज के समय के लिए विशेषतः द्वितीय महायुद्ध के बाद व्यावहारिक नहीं रहा। सिविल अधिकारी के पास पत्र आदि तैयार करने की क्षमता के अलावा अधिक ज्ञान एवं अन्य योग्यताएं भी होनी चाहिए। ब्रिटेन में द्वितीय महायुद्ध के बाद कल्याणकारी राज्य की स्थापना हुई और स्वतंत्र भारत में नियोजित विकास की अवधारणा पर आधारित लोकतांत्रिक समाजवादी राज्य की परिकल्पना को साकार बनाया जा रहा है। प्रशासक का काम एंव जिम्मेदारियां न केवल बढ़ गई हैं, बल्कि जटिल भी हुई हैं। विज्ञान तथा टैक्नोलॉजी की प्रगति का स्वयं लोक प्रशासन पर ही नहीं बल्कि उसके तौर–तरीकों पर भी प्रभाव पड़ा है। कम्प्यूटर के आने से प्रशासन का स्वरूप न केवल सूचना भंडारण, उपयोग एवं संचार की दृष्टि से ही बदला है बल्कि निर्णय–निर्धारण के स्वरूप एवं गति तथा नागरिकों और प्रशासनके बीच सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया है। देश अब अलग–अलग पड़ी इकाई नहीं बल्कि व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का अंग है। ब्रिटेन में सामान्य प्रशासकों के चयन में ऑक्सफोर्ड एवं कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों के स्नातकों को प्राथमिकता दी जाती थी जो कि अन्य विश्वविद्यालयों के साथ अन्याय था।

नौकरी के बारे में योजना बनाना सामान्य प्रशासकों एवं विशेषज्ञों– दोनों के लिए आवश्यक है। यह दोनों के विकास, लोक प्रशासन व्यवस्था की अधिक कार्य कुशलता तथा प्रभावी स्वरूप के लिए भी आवश्यक है। दोनों के लिए प्रबंन्ध कार्यों एवं प्रबन्ध तकनीकों, जैसे गुणात्मक विधियों और आर्थिक विश्लेषण आदि में प्रशिक्षण आवश्यक है। दोनों को सेवा में आने के बाद प्रशिक्षण के दौरान एक जैसी जानकारी देना भी आवश्यक हैं यह प्रशासनिक सम्बन्धों के हित में है कि प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत लोग प्रशासन के दो अंगों के बीच सम्पर्क एवं सहयोग न केवल कायम हो बल्कि इन्हें प्रोत्साहन भी मिले।

3.2.2 ब्रिटेन तथा भारत में अनुभव

विभिन्न देशों ने अपने प्रशासनिक एवं राजनैतिक परिवेश के अनुसार समस्या का उपाय किया है। ब्रिटेन में शीर्ष पदों पर सामान्य प्रशासकों के प्रभुत्व वाले सिविल सेवा ढांचे की कमियों की आलोचना जब जनता में हो गई तो ब्रिटिश सरकार ने 1966 में लार्ड फुल्टन की अध्यक्षता में एक जांच समिति नियुक्त की। फुलटन समिति ने सुझाव दिया कि आवश्यक दक्षता वाले वैज्ञानिक, इंजीनियर, अर्थशास्त्री आदि एक वरिष्ठ प्रबंध समूह में शामिल किए जाएं और इनमें से प्रशासन के ऊँचे पदों के लिए लोग लिए जाएं।

भारत में सामान्य प्रशासक एवं विशेषज्ञ के विवाद पर प्रशासनिक सुधार आयोग के कार्मिक प्रशासन के बारे में अध्ययन दल ने विचार किया। इसने आठ व्यावसायिक समूहों की सिफारिश की। ये थेः (1) कार्मिक एवं जनशक्ति; (2) आर्थिक प्रशासन (नियोजन सहित); (3) वित्तीय प्रशसन; (4) कृषि प्रशासन (5) औद्योगिक प्रशासन (6) सामाजिक एवं शैक्षिक प्रशासन; (7) आंतरिक सुरक्षा एवं प्रतिरक्षा तथा (8) सामान्य प्रशासन। ये समूह ''विचार'' तथानीति–निर्धारण स्तरों के लिए विभिन्न सेवाओं से लोगों के चयन के लिए आधार का काम करेंगे। प्रशासनिक सुधार आयोग के कार्मिक प्रशासन अध्ययन दल द्वारा तैयार किए आठ–सूची वर्गीकरण की व्याख्या करते हुए प्रशासनिक सुधार आयोग ने कहा कि इसके फलस्वरूप भारतीय प्रशासनिक सेवाएं सामान्य प्रशासनिक नहीं रहेंगी बल्कि पूरी तरह राजस्व प्रशासन का काम करने लगेंगी। (कार्मिक प्रशासन पर प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट (अप्रैल, 1969, पृष्ठ 24) प्रशासनिक सुधार आयोग का यह कहना सही था कि इन नए व्यावसायीकृत समूहों के लिए लोग भारतीय प्रशासनिक सेवाओं तथा विशिष्ट सेवाओं सहित विभिन्न सेवाओं से लिए जायेंगे। यह व्यावसायिकता केवल भरती, प्रशिक्षण एवं नौकरी की योजना के समुचित कार्यक्रमों के जरिए ही विकसित हो सकती है। इसी प्रकार फ्रांस, पश्चिम जर्मनी, स्वीडन, अमरीका आदि देशों ने अपनी–अपनी राजनैतिक व्यवस्था, सामाजिक परिस्थितियों एवं सिविल सेवा व्यवस्था के अनुसार इस समस्या से निपटने के तौर–तरीके सूत्रित किये हैं।

3.3 गुमनामी

सिविल सेवा की गुमनामी का नियम अथवा कायदा मंत्रियों के उत्तरदायित्व का दूसरा पहलू है। ब्रिटेन में सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धान्त से कार्यपालिका अर्थात् मंत्री परिषद् को संसद अर्थात् हाउस ऑफ कॉमन्स'' के प्रति जिम्मेदारी एवं जवाबदेही सुनिश्चित की गयी है। मंत्री की व्यक्तिगत जिम्मेदारी से यह निश्चित है कि उसके विभाग में प्रत्येक काम या गलत काम अथवा भूल के लिए मंत्री को संसद में जवाब देना पड़ता है। गुमनामी के नियम के अंतर्गत यह आवश्यक है कि अधिकारियों के काम या निष्क्रियता के लिए केवल मंत्री ही संसद में जवाब देगा। सम्बद्ध अधिकारी चूंकि संसद में अपने बचाव में कुछ कह सकने का हकदार नहीं है। इसलिए वह

संसद की आलोचना से बचा रहता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जो अधिकारी आपराधिक कार्यों का कानून के अन्तर्गत ज्यादतियों अथवा निजी हित के लिए अपने अधिकारों एवं पद के दुरूपयोग का दोषी है वह कानून दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

अधिकारी के बारे में मंत्री निम्नलिखित परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न कार्यवाही कर सकता है :

1. मंत्री उस अधिकारी को संरक्षण प्रदान करेगा जिसने उसके निश्चित आदेश का परिपालन किया है।
2. मंत्री उस अधिकारी को समर्थन प्रदान करेगा जिसने मंत्री की नीति के अनुसार सही कार्यवाही की है।
3. मंत्री ऐसे मामले में अधिकारी की कार्यवाही या देरी की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेगा जो नीति की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है और व्यक्तिगत अधिकारों से जिनका सम्बन्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में मंत्री अपने विभाग में इस सम्बन्ध में उपाय करने का आश्वासन देगा।
4. मंत्री को अगर किसी अधिकारी की कार्यवाही की जानकारी नहीं थी, और इसकी आलोचना हुई है तो मंत्री इस कार्यवाही पर अपनी नाराजगी प्रकट करेगा। ऐसे मामले में मंत्री उसके गलत कार्य का समर्थन नहीं करता और न ही उसकी गल्ती का बचाव करता है। इस मामले में अधिकारी के गलत कार्य के लिए मंत्री संसद के प्रति जवाबदेह हैं लेकिन अपने अधिकारियों पर नियंत्रण एवं अनुशासन रखने का मंत्री का अधिकार बना रहता है।

उपरोक्त परिस्थितियों से मंत्री की जिम्मेदारी का सिद्धान्त या सरकारी अधिकारी की गुमनामी का नियम स्पष्ट हो जाता हैं मंत्री अपनी नीतियों की विफलता के लिए उन विशेषज्ञों या सरकारी अधिकारियों को दोष दे सकते हैं।

गुमनामी का सिद्धान्त निष्पक्षता के नियम और असंबद्धता से भिन्न है। निष्पक्षता के नियम में सरकारी अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह राजनैतिक तौर पर निष्पक्ष रहेगा। मंत्री की सरकार किसी भी राजनैतिक दल की हो। सरकारी अधिकारी अपने मंत्री के प्रति निष्ठावान रहेगा। असंबद्धता के नियम के अन्तर्गत सरकारी अधिकारी से यह आशा की जाती है कि अगर उसने किसी दूसरे अधिकार से पदभार ग्रहण किया है तो स्वंय को पीछे रखकर निर्धारित कानूनों, नियमों विनियमों का पालन करेगा अथवा किसी मामले में सम्बद्ध व्यक्ति के बारे में भी यही दृष्टिकोण रखेगा।

गुमनामी का नियम सरकारी अधिकारियों के कानूनी एवं सही कार्यों के मामले में लागू होता है। ऐसी स्थिति में उन्हें जनता के सामने आने अथवा संसद में पेश होने की आवश्यकता नहीं हैः उस स्थिति में मंत्री ही लोगों के या संसद के सामने

जाता है। गैर–कानूनी व्यक्तिगत कार्यों के लिए सरकारी अधिकारी तथा मंत्री दोनों ही दोषी ठहराये जा सकते हैं।

ब्रिटेन में सिविल अधिकारियों की तुलना अक्सर लंदन में ट्रैफल्गर चौक के फब्वारों से की जाती है क्योंकि ये दोनों ही मंत्री परिषद् में तथा संसद में राजनीतिक घटनाओं के मूक दर्शक माने जाते हैं। ये दोनों आसपास ही स्थित हैं। भारत में भी मंत्रियों एवं सिविल अधिकारियों के बीच सम्बन्धों पर यही बात लागू होती है। भारतीय संविधान में इन सम्बन्धों की शर्तों एवं परिस्थितियों की व्याख्या नहीं की गयी है तथा यह बात संविधान लागू होने के बाद की परम्पराओं पर छोड़ दी गयी है। भारतीय संविधान में भारतीय प्रशासनिक सेवा, अन्य अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय तथा राज्य सिविल सेवाओं के सदस्यों और संघ अथवा किसी राज्य के अधीन सिविल पदों पर नियुक्त लोगों को सेवा काल की सुरक्षा प्रदान की गयी है। लेकिन आपराधिक आरोप, तर्कसंगत व्यावहारिकता अथवा राज्य की सुरक्षा के मामलों में यह सुरक्षा उपलब्ध नहीं होगी। (अनुच्छेद 311) कार्यपालिका द्वारा जारी सम्बद्ध नियमों में ''सिविल अधिकारी'' एवं ''सिविल पद'' शब्दों की व्याख्या मालिक–नौकर के सम्बन्ध के रूप में नौकरी पर लेने के तरीके और सेवा से स्थानांतरण के तरीके के तौर पर की गयी है। मंत्री एवं सिविल अधिकारी के बीच सामान्य सम्बन्ध एक दूसरे के प्रति संतोषजनक उत्तरदायित्व पर आधारित है। सिविल अधिकारी अपने अनुभव के आधार पर मंत्री को नीतियों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों तथा कानूनों और नियमों को लागू करने के बारे में परामर्श देगा। वे इन मामलों में अपनी सलाह मंत्री के किसी निजी हित की पूर्ति के लिए नहीं देंगे। सलाह देने के बाद इस बारे में सिविल अधिकारी का काम समाप्त हो जाता है। उसकी सलाह मानी गयी हो या नहीं, पर उसे कार्यपालिका द्वारा निर्धारित नीतियां एवं कार्यक्रम तथा कानून एवं नियम लागू करने होंगे तब मंत्री को सरकार की नीतियों कार्यक्रमों, योजनाओं, कानूनों और नियमों के परिपालन कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना है। अखिल भारत सेवा (व्यवहार) नियमों, 1968 में स्पष्ट निर्देश है कि सिविल अधिकारियों को आत्म–प्रचार, मनोरंजन के अवसरों किसी राजनीतिक दल अथवा उसकी गतिविधियों आदि से दूर रहना है ताकि उनकी गुमनामी कायम रहे।

3.4 प्रतिबद्धता

''प्रतिबद्ध नौकरशाही'' ये शब्द सार्वजनिक बहस या संसद की बहस के दौरान अक्सर सुनायी पड़ते हैं। विचारवान एवं अपनी बात को जोर–शोर से कहने वाले राजनीतिज्ञों और बुद्धिजीवियों की एक नई सोच का यह संकेत स्वागत योग्य है। जब विकास के कुछ नए कार्यक्रम एवं नई सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था परिपालन के दौरान लड़खड़ा जाए और इसे भारी समर्थन की आवश्यकता हो तब बहस के दौरान इस तरह की बात उठना एक सतर्क, जीवंत लोकमत का स्वस्थ संकेत है।

''प्रतिबद्धता'' का अर्थ क्या है? इसका अर्थ है इन्सान का ऐसा कोई काम जिसमें उसे कार्यवाही की छूट सीमित है। उदाहरण के तौर पर अगर मैं ईमानदारी से कार्य करता हूं तो मुझे बेईमानी करने की स्वतंत्रता नहीं रहेगी। ''प्रतिबद्धता की यह परिभाषा देखने में एक व्यक्तिगत प्रक्रिया लग सकती है। लेकिन व्यक्ति की प्रतिबद्धता किसी काल में एवं किसी स्थान पर उपस्थित समाज की मूल्य व्यवस्था से उप जाती है पर कोई भी समाज इतना एक रूप और समांगी नहीं होता कि वह किसी एक ही तथा अपने आप में अभूतपूर्व मूल्य व्यवस्था से प्रभावित प्रेरित हो, लेकिन एक प्रचलित मूल्य व्यवस्था सदैव अस्तित्व में रहती है। समाज के कुछ वर्ग इसके अनुरूप आचरण कर सकते हैं, इसका समर्थन कर सकते हैं जबकि कुछ अन्य वर्ग इसका विरोध करते हैं, इसे मानने से इनकार करते हैं।

मूल्य व्यवस्था एवं इसके लिए प्रतिबद्धता का एक अन्य पक्ष भी है। आरम्भ से लेकर जब तक के विकासक्रम में मानव कभी भी मूल्य व्यवस्था के बंधन तथा इसके लिए प्रतिबद्धता से मुक्त नहीं रहा है। यह बात अलग है कि यह बंधन और प्रतिबद्धता उसे या तो सामाजिक विवशताओं के कारण या फिर अधिकारों, उत्तरदायित्वों, प्रतिबंधों और अंकुशों के प्रति अधिक सजग होने के कारण स्वीकार करनी पड़ी है। इस तरह प्रतिबद्धता एवं समाज में प्रचलित मूल्य व्यवस्था का आपस में अटूट सम्बन्ध है। मूल्य व्यवस्था का उद्‌भव तथा उसमें निहित परिवर्तन सम्बद्ध समाज के सामाजिक आर्थिक ढांचे तथा राजनैतिक व्यवस्था से गहरे जुड़े होते हैं।

प्रश्न उठता है कि सिविल अधिकारी प्रतिबद्ध बनें या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि सिविल सेवाएं वास्तव में प्रतिबद्ध है। सर्वप्रथम तो वे स्वयं से और अपने वर्ग से प्रतिबद्ध हैं। इसलिए उनकी प्रतिबद्धता के स्वरूप के प्रारम्भ एवं विकासक्रम का अध्ययन करना आवश्यक है।

इन अवधारणाओं का अध्ययन संविधान की व्यवस्थाओं, संविधान में निहित राजनीतिक प्रणाली के ढांचे, तथा सिविल अधिकारियों एवं जजों के मनोबल और कार्यदक्षता पर दूरगामी प्रभावों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में करना होगा। यहां हम ''प्रतिबद्ध नौकरशाही'' की चर्चा करेंगे।

भारतीय संविधान में लोकतंत्र, धर्म निरपेक्षता एवं समाजवाद के मूल्य निहित हैं और इन्हें हमें राष्ट्रीय अखंडता को बनाए रखकर प्राप्त करना है। स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारे के आदर्शों को भी जन–जीवन में मूर्त रूप देना है। संविधान में प्रस्तावना, राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धान्तों एवं मूल अधिकारों को ध्यान में रखकर ही ''प्रतिबद्ध नौकरशाही'' के अर्थ, भाव और चलन को समझा जा सकता हैं इसके अतिरिक्त देश का संसदीय लोकतंत्र एवं संघीय ढांचा इस अवधारणा को मूर्त रूप देने में सहायक है।

स्पष्ट है कि ''प्रतिबद्ध नौकरशाही'' का अर्थ किसी विशेष राजनीतिक दल के प्रति निष्ठावान नौकरशाही से नहीं है। संविधान में लोकसभा एवं विधान सभाओं

के लिए सावधिक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों की व्यवस्था है। संविधान लागू होने के बाद संघ तथा राज्यों में ''पिछले पैंतीस वर्षों से विभिन्न राजनीतिक दल सत्ता में रहे हैं। संविधान में निहित संघीय ढांचे में भिन्न–भिन्न राजनीतिक विचारधाराओं एवं कार्यक्रमों वाले राजनीतिक दलों के संघ तथा राज्यों की सत्ता में आ सकने का गठबंधन सत्ता में आ सकते हैं। इस तरह, नौकरशाही को अलग–अलग राजनैतिक दलों के शासन में काम करना होता है। किसी एक ही दल के प्रति वे निष्ठावान हो ही नहीं सकते।

''प्रतिबद्ध नौकरशाही'' का अर्थ यह भी नहीं है कि सिविल अधिकारी किन्हीं विशेष राजनीतिक लोगों अथवा नेताओं के प्रति निष्ठावान हों। संविधान में निर्धारित लोकतांत्रिक ढांचे के स्वरूप में यह संभावना भी निहित है कि केन्द्र में प्रधान मंत्री एवं राज्यों में मुख्यमंत्री अलग–अलग दलों के हो सकते हैं तथा वे एक से अधिक बार इन पदों पर आ सकते हैं। ''प्रतिबद्ध नौकरशाही'' का अर्थ किन्हीं विशेष व्यक्तियों के प्रति निष्ठा नहीं, बल्कि उनके प्रति निष्ठा है जो लोकसभा या विधानसभा का नेता चुना जाता है। सिविल अधिकारियों को सचिवों के रूप में मंत्रियों को नीति–निर्धारण में परामर्श देना होता है तथा फिर इन नीतियों को लागू करना होता है। ब्रिटेन के प्रसिद्ध सिविल अधिकारी सर वारेन फिशर ने मंत्री एवं सिविल अधिकारी के बीच सम्बन्ध की इन शब्दों में व्याख्या की हैः ''नीति तय करना मंत्रियों का काम है। कोई नीति निर्धारित हो जाने पर सिविल अधिकारी इससे सहमत हो या न हो, पर उसका यह स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वह पहले जैसे उत्साह एवं सद्भावना के साथ उसे कार्यान्वित करने के भरपूर प्रयास करें। इस कार्य में उसे न कोई रोक–टोक सकता है और न ही किसी को उसे रोकना–टोकना चाहिए। इस बारे में कभी कोई विवाद नहीं होना चाहिए। सिविल अधिकारियों का यह भी पारम्परिक कर्त्तव्य है कि जब निर्णय लिए जा रहे हों, तो वह अपने राजनीतिक प्रमुख को अपनी सलाह पूरी जानकारी एवं अनुभव के आधार पर तथा बिना किसी डर या पक्षपात के दे और यह बिल्कुल न सोचे कि उसकी सलाह मंत्री के विचारों से मेल खाएगी या नहीं मंत्रियों अथवा उच्चतम अधिकारियों को परामर्श के दौरान निष्ठा, निडरता एवं विचार और उन्हें सामने रखने की स्वतंत्रता किसी भी प्रगतिशील सरकार का मूल सिद्धान्त है।''

इस प्रकार ''प्रतिबद्ध नौकरशाही'' का अर्थ है कि नौकरशाही जो संविधान में निहित उद्देश्यों, आदर्शों, संस्थाओं एवं परम्पराओं के लिए प्रतिबद्ध है, सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों, कार्यपालिका द्वारा जारी विनियमों एवं नियमों के लिए प्रतिबद्ध है। सिविल अधिकारियों को विकास के एवं गरीबी दूर करने के कार्यक्रम पूरे मन से चलाने हैं, अगर इनमें उन्होंने कोई कसर छोड़ी तो उन्हें नियमन विभागों में स्थानांतरित किया जाना चाहिए जहां उन्हें बेहतर बनाया जा सके।

नौकरशाही और लोकतंत्र के बीच संघर्ष से बचने के लिए ड्वाइट वाल्डो ने संगठन के एक अधिक लोकतांत्रिक स्वरूप को वांछनीय माना, जो कि लोकतंत्र के

सौदों के अनुरूप हो। इस प्रकार के विकल्प में अनिवार्यतः ''सत्ता–अधीनस्थता, अधिकारी एवं अधीनस्थता के विचारों का पर्याप्त परित्याग जरूरी होगा।

3.5 सारांश

इस इकाई में हमने प्रशासन में नौकरशाही और लोकतंत्र के महत्वपूर्ण प्रश्नों का अध्ययन किया है। यह हैंः सामान्य प्रशासक, विशेषज्ञ, विवाद तथा गुमनामी एवं प्रतिबद्धता की अवधारणाएं। हमने सामान्य प्रशासकों एवं विशेषज्ञों के स्वरूप, सामान्य प्रशासकों एवं विशेषज्ञों के पक्ष में तर्कों तथा उनके बीच सम्बन्धों के स्वरूप का अध्ययन किया। गुमनामी की अवधारणा का अध्ययन आमतौर पर तथा भारत में विशेष तौर पर मंत्री एवं सिविल अधिकारी के बीच सम्बन्धों के संदर्भ में किया गया। हमने इस बारे में भी अध्ययन किया कि कल्याणकारी कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करने तथा लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता एवं समाजवाद के मूल्यों को प्राप्त करने में सिविल अधिकारियों की प्रतिबद्धता आवश्यक है।

3.6 प्रमुख शब्दावली

काडरः संवर्ग, एवं मूलभूत इकाई अथवा संरचना।
कार्यकारी विभाग : योजनाओं, आदेशों, कानूनों को लागू कराने वाला विभाग।
मनोबलः व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आधार पर मानसिक या नैतिक आत्म–विश्वास।
सचिवालयः नीतियों आदि को बनाने/तय करने वाला विभाग।

3.7 बोध प्रश्न

1. 1. नौकरशाही में मुख्य प्रश्न कौन–कौन से हैं?
   2. आधुनिक राज्य को ''प्रशासनिक राज्य'' क्यों कहा जाता है?
   3. प्रशासन में सामान्य एवं विशेषज्ञ प्रशासकों के बीच सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।

2. 1. गुमनामी की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।
   2. गुमनामी एवं निष्पक्षता के बीच भेद को स्पष्ट कीजिए।
   3. प्रतिबद्ध नौकरशाही के बारे में संक्षेप में लिखिए।

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1. भाग 18.1 देखें
   2. भाग 18.1 देखें
   3. भाग 18.2 देखें

2. 1. भाग 18.3 देखें
   2. भाग 18.3 देखें
   3. भाग 18.4 देखें

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अवस्थी ए. तथा माहेश्वरी एस.आर. **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन**, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 2014।

डी. वाल्डो, द इण्टरप्राइज ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (कैलिफोर्नियां : चण्डलर, 1980)

आर. ह्यूमेल, द ब्यूरोक्रेटिक एक्सपीरेंस, 4^{th} एडिशन. (न्यू यॉर्क : मार्टिन प्रेस, 1994)

पत्रिकाएं:

चतुर्वेदी एम.के **कमिटमेंट इन सिविल**, द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, खंड–, अंक–1, पृष्ठ– 40–46

दूरभाषी पी.आर. **कमिटेड ब्यूरोक्रेसी**, द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, खंड–, अंक–1, पृष्ठ– 33–39

इकाई– 04

औपचारिक और अनौपचारिक संगठन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 परम्परावादी उपागम : साईमन द्वारा आलोचना
4.3 प्रशासन में निर्णय लेने का स्थान
4.4 चयन एवं व्यवहार
4.5 निर्णय–निर्माण में मूल्य एवं तथ्य
4.6 निर्णयों का सोपान
4.7 निर्णय–निर्माण में तार्किकता
4.8 संयोजित तथा असंयोजित निर्णय
4.9 निर्णय–निर्माण तथा प्रशासनिक प्रक्रिया
    4.9.1 विशेषीकरण
    4.9.2 समन्वय
    4.9.3 विशेष ज्ञान (एक्सपरटीज)
    4.9.4 उत्तरदायित्व
4.10 संगठनात्मक प्रभाव की विधियां
    4.10.1 सत्ता
    4.10.2 संगठनात्मक निष्ठाएं
    4.10.3 कार्यकुशलता का आधार
    4.10.4 परामर्श तथा सूचना
4.11 आलोचनात्मक मूल्यांकन
4.12 सारांश
4.13 प्रमुख शब्दावली
4.14 बोध प्रश्न
4.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य :

1 संगठन का अर्थ समझेंगे,
2 संगठन के प्रकार, उनके कार्यकलाप और विशेषताएं जानेंगे,

3 औपचारिक और अनौपचारिक संगठन के बीच भेद कर सकेंगे, तथा
4 औपचारिक और अनौपचारिक संगठन का सम्बन्ध बता सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

परिवार को समाज में सबसे पहले संगठन माना जाता है। उसके बाद समय के साथ–साथ कई तरह के संगठन बनने लगे। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरुप बड़े पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन शुरु हुआ। हाथों की जगह मशीनों ने ले ली और फैक्टरियां उत्पादन केन्द्र बन गईं जिससे बड़े–बड़े संगठनों का दौर शुरु हुआ।

विभिन्न विचारकों ने संगठन शब्द का अलग–अलग अर्थ दिया है। मौर्सटीन मार्क्स के अनुसार संगठन एक ऐसा ढांचा है जिसका विकास सरकार के प्रमुख और उसके प्रशासनिक सहायकों को सोंपे गए कार्यों की पूर्ति के लिए किया गया है। इस परिभाषा में मुख्य जोर ढांचे पर है। दूसरी ओर जे0डी0 मूनी की राय में समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बना इंसानों का समूह ही संगठन है। परिवार, महिला–मण्डल, युवा–कल्याण–संघ आदि इसके कुछ उदाहरण हैं। इस परिभाषा में लोगों के सामूहिक प्रयासों को केन्द्र बिन्दु माना है। एल.डी. व्हाइट के अनुसार संगठन, कर्मचारियों की ऐसी व्यवस्था है जिसमें ठोस उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सबको अलग–अलग कार्य और दायित्व सौंपे जाते हैं। सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था की कार्य प्रणाली इसका एक उदाहरण है। वाहनों को ठीक–ठाक रखने का दायित्व मेन्टेनेन्स विभाग के कर्मचारियों पर होता है। वाहन चलाने की जिम्मेदारी चालक दल पर होती है और बांकी की सहायक सेवायें लिपिक, स्टोर, कार्मिक, वित्त आदि विभागों के कर्मचारी प्रदान करते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अलग–अलग इकाइयों की जिम्मेदारियाँ निश्चित होती हैं और उसके लिए वे इकाइयां जवाबदेह भी होती हैं। ई. एन. ग्लेड्न की परिभाषा में संगठन एक उद्यम के क्रिया–कलापों को पूरा करने में संलग्न व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों की व्यवस्था है। संगठन किस ढंग से काम करेगा, यह इस बात पर निर्भर है कि नीतियां और योजनाएं कैसे बनाई जाती हैं और उन्हें कैसे लागू किया जाता है। संगठन में सर्वोच्च प्रबन्धक वर्ग नीति निर्धारण करता है, बीच का प्रबन्धक तंत्र योजनाएं और कार्यक्रम बनाता है और नीचे के अधिकारी तथा कर्मचारी उन पर अमल करते हैं। सोपानतंत्र के सिद्धान्त के अनुसार नीचे के अधिकारी और कर्मचारी बीच के प्रबन्धक वर्ग के प्रति और यह प्रबन्धक वर्ग सर्वोच्च प्रबन्धक वर्ग के प्रति जवाबदेह होता है। अतः वरिष्ठता और कनिष्ठता के सम्बन्ध के जरिए विभिन्न स्तरों पर अलग–अलग कार्य और दायित्व सौंप कर निर्धारित लक्ष्य हासिल किए जाते हैं।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि संगठन में मूलतः उसका ढांचा, उसमें कार्यरत व्यक्तियों के बीच की कार्यशील व्यवस्था और उनके परस्पर सम्बन्ध शामिल होते हैं। आज के युग में व्यक्ति के जीवन और संगठनों के बीच अटूट सम्बन्ध है। भले ही संगठन सरकारी हों, चर्च, सेना, स्कूल या क्लब के हों अथवा सार्वजनिक या निजी। व्यक्तियों के बिना संगठन की और संगठन के बिना व्यक्तियों की कल्पना करना कठिन

है। वास्तव में व्यक्ति संगठनों में काम करता है, उनसे लाभ उठाता है और प्रभावित भी होता है। कभी–कभी संगठन निराशाजनक और दमनकारी वातावरण उत्पन्न कर देते हैं।

4.2 प्रशासकीय संगठन के मुख्य आधार

संगठन को प्रशासन का एक महत्वपूर्ण अंग कहा जाता है। संगठन में विभिन्न व्यक्तियों के बीच कार्यों का बंटवारा कर दिया जाता है, और उन कार्यों के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है। इसी कारण कहा जाता है कि ''संगठन विभिन्न व्यक्तियों के बीच कार्य को बांटने की एक रीति है।'' प्रशासन में कार्यकुशलता बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि व्यक्तियों के बीच कार्यों का बंटवारा कुछ सिद्धान्तों के अनुसार किया जाए। दूसरे शब्दों में, संगठन का निर्माण कुछ सिद्धान्तों या आधारों पर होना चाहिए। लूथर गुलिक ने संगठन के चार आधारों का वर्णन किया है। प्रशासकीय संगठन के चार आधार निम्नलिखित हैं–

(क) कार्य

प्रशासकीय इकाईयों का संगठन कार्य या लक्ष्य के आधार पर किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, किसी विशेष कार्य या लक्ष्य की पूर्ति हेतु संगठन की स्थापना की जा सकती है। उदाहरण के लिए, शिक्षा, सुरक्षा, शान्ति, संचार, यातायात, कानून एवं व्यवस्था इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है, जो आधुनिक लोक प्रशासन के लक्ष्यों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आधुनिक युग में विभागों का विभाजन भी कार्य के आधार पर ही किया जाता है। प्रशासकीय संगठन के निर्माण के इस आधार के पक्ष और विपक्ष दोनों में ही मत प्रकट किए गये हैं। इसके पक्ष में निम्नलिखित मत प्रकट किये गए हैं–

1. इस आधार पर संगठन करने से सबसे बड़ा लाभ यह है कि एक ही प्रकार का कार्य करने वाले व्यक्तियों में लक्ष्य की समानता रहती है, जिससे समन्वय सरलता से उत्पन्न किया जा सकता है। सभी व्यक्तियों को एक संचालक नियंत्रण में रखने से लोगों के कार्यों में निपुणता आती है।
2. यह आधार लोकतांत्रिक भी है। कार्यों के आधार पर प्रशासकीय संगठन होने से जनता आसानी से किसी भी कार्य में अकुशलता के लिए ही विभाग को उत्तरदायी ठहरा सकती है।

प्रशासकीय संगठन के इस आधार के विपक्ष में भी निम्नलिखित कुछ मत प्रकट किए गए हैं–

(i.) यह सिद्धान्त श्रम विभाजन तथा कार्यों में विशेषीकरण के सिद्धान्त के विपरीत हैं।

(ii.) इस आधार पर प्रशासकीय संगठन होने से कम महत्व के स्थानीय कार्यों के प्रति ध्यान नहीं दिया जाता है।

(iii.) जनता का नियंत्रण विभागों पर पूर्ण रुप से नहीं हो पाता।

(ख) प्रक्रिया

संगठन के निर्माण का एक अन्य आधार प्रक्रिया अथवा व्यवसाय भी है। प्रक्रिया अथवा व्यवसाय का अर्थ उस तकनीकी कुशलता से है जो किसी विशेषज्ञ प्रकार के कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक है। इसके उदाहरण इंजीनियरिंग, डाक्टरी, स्टेनोग्राफी, कानून, लेखा आदि है। इसके आधार पर भी प्रशासकीय विभागों का संगठन किया जाता है। भारत में राज्य स्तर पर लोक निर्माण–विभाग प्रक्रिया के आधार पर ही संगठित होते हैं। लूथर गुलिक के शब्दों में, ''इस प्रकार के संगठनों में एक–सी योग्यता अथवा तकनीक को काम में लाने वाले या एक ही व्यवसाय के सदस्यों को मिलाकर एक विभाग बना दिया जाता है।'' कम महत्व की प्रक्रिया को संगठन का आधार बनाना संभव नहीं। उदाहरण के लिए, भारत सरकार के स्टेनोग्राफरों का विभाग नहीं बनाया जा सकता। इस आधार और सिद्धान्त के पक्ष में निम्नलिखित विचार प्रकट किये गये हैं।

1. इसमें यांत्रिक तथा महत्वपूर्ण सामग्री का पूर्ण प्रयोग किया जा सकता है।
2. विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को कार्य–प्रदर्शन का अच्छा मौका प्राप्त होता है।
3. एक ही प्रकार के कार्य करने वाले व्यक्तियों में समन्वय आसानी से स्थापित किया जा सकता है।
4. विशेष प्रकार की योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को एक ही विभाग में संगठित कर देने से ऐसे व्यक्तियों का अपना अलग वर्ग बन जाता है।

इस सिद्धान्त के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं–

(i.) इसमें विशेषीकरण का सिद्धान्त निहित रहने के कारण कर्मचारियों का दृष्टिकोण अत्यन्त संकीर्ण हो जाता है। ये अन्य विभाग के कर्मचारियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं जिसका असर प्रशासन पर बुरा पड़ता है।

(ii.) इससे निपुणता की कमी होने के साथ–साथ कार्य करने में भी देर होती है।

(iii.) इस पद्धति में भी जनता का उचित नियंत्रण स्थापित नहीं हो पाता।

सेवा किये जाने वाले व्यक्ति

प्रशासकीय संगठन का एक आधार सेवा किये जाने वाले व्यक्ति भी हैं। उदाहरण के लिए, भारत में शरणार्थियों की समस्याओं के समाधान के लिए पुनर्वास मंत्रालय की स्थापना की गई है। इस तरह, पिछड़ी जातियों के कल्याण के लिए एक अलग विभाग की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार, सेवा किये जाने वाले व्यक्तियों को ही संगठन का आधार बना लिया जाता है।

क्षेत्र

कभी–कभी क्षेत्र को भी संगठन का आधार मान लिया जाता है। प्रायः प्रत्येक देश में विदेश विभाग का संगठन क्षेत्र के आधार पर किया जाता है। उदाहरण के लिए, भारतीय विदेश विभाग के संगठन के सत्रह उपविभागों को क्षेत्र के आधार पर निर्मित किया गया है। इसी तरह, भारतीय सेना का संगठन भी तीन क्षेत्रों के आधार पर किया

गया है– दक्षिणी, पूर्वी एवं पश्चिमी कमान। भारतीय डाक–व्यवस्था एवं रेल विभाग का संगठन भी लगभग इसी आधार पर किया गया है।

प्रशासकीय संगठन के चार आधारों पर विचार किया गया। इन आधारों पर विचार करने के बाद यही कहा जा सकता है कि यह निर्णय करना बहुत कठिन है कि संगठन का कौन–सा आधार अधिक महत्वपूर्ण है। संगठन के विभिन्न आधारों की महत्ता सुविधा एवं परिस्थिति पर निर्भर करती है। यही बात इस प्रश्न के उत्तर में भी कही जा सकती है कि प्रशासकीय सेवाओं का संगठन कार्य के आधार पर किया जाय या क्षेत्र के आधार पर वास्तव में, यह सुविधा और परिस्थिति पर निर्भर है। यह बात सही है कि अधिकतर प्रशासकीय संगठन कार्य के आधार पर ही होते हैं, लेकिन कुछ विभागों का संगठन क्षेत्र के आधार पर ही किया जाना ठीक है; क्योंकि उसी में सुविधा है। अतः, दोनों की आवश्यकता पड़ती है। प्रशासकीय संगठन को किसी एक ही आधार पर आधारित कर देने से कई प्रकार की असुविधाएं उत्पन्न हो सकती हैं। इस सम्बन्ध में अमेरिका की ब्रूकिंग संस्था ने ठीक ही सलाह दी है, ''सम्पूर्ण संगठन के अन्तर्गत कोई भी एक तत्व निर्णायक नहीं बन सकता। एक तत्व हमें एक जगह पर निर्णय करने में सहायता दे सकता है, दूसरी जगह दूसरा तत्व अधिक सहायक हो सकता है। प्रत्येक स्थिति में एक निर्धारक तत्व को अन्य के मुकाबले संतुलित कर लेना चाहिए। कुछ कार्यों और कुछ अभिकरणों के लिए यह हो सकता है कि कोई भी एक तत्व सर्वोत्तम सिद्ध न हो, अतः विकल्पों में चुनाव कर लेना चाहिए।''

हम जानते हैं कि आदिकाल से ही समाज में संगठन मौजूद हैं। समय के साथ–साथ संगठनों का रुप बदलता गया और आज तो अनेक प्रकार के संगठन मौजूद हैं। संगठन में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या के आधार पर उन्हें बड़ा या छोटा कहा जा सकता है। एक शिक्षक वाला स्कूल छोटा संगठन है, और 20 लाख से ज्यादा कर्मचारियों वाली भारतीय रेल बड़ा संगठन है। संगठनों के भीतर प्रचलित सम्बन्धों के आधार पर उन्हें सहज या जटिल भी कहा जा सकता है। एक परिवार में सदस्यों के बीच सीधा सम्बन्ध होता है और गतिविधियां सीमित होती हैं। अतः परिवार एक सहज संगठन है। जबकि रक्षा मंत्रालय एक जटिल संगठन है। देश की प्रभुसत्ता की रक्षा के लिए जिम्मेदार इस मंत्रालय का कार्यक्षेत्र अनेक सार्वजनिक और निजी उपक्रमों के जरिए जमीन, आकाश और सागर तक फैला हुआ है। संगठन औपचारिक और अनौपचारिक भी होते हैं। इस वर्गीकरण का अधार यह है कि एक उद्यम में ढांचा अधिक महत्वपूर्ण है या उसके कर्मचारी।

संगठन की कार्य प्रणाली को ठीक ढंग से समझने के लिए औपचारिक और अनौपचारिक संगठनों की विशेषताओं और क्रिया–कलापों को समझना जरुरी है।

4.3 औपचारिक संगठन

संगठन के सिद्धान्त का विकास करते समय विद्वानों ने औपचारिक और अनौपचारिक संगठन की भूमिका पर भी पर्याप्त ध्यान दिया है। औपचारिक संगठन जान

बूझकर सोच–समझकर बनाया जाता है और इसे सक्षम अधिकारियों की मंजूरी प्राप्त होती है। इस संगठन के ढांचे को सूचीबद्ध किया जा सकता है या निम्न पुस्तिकाओं और नियमों से स्पष्ट किया जा सकता है। यह संगठन बाहर से जैसा दिखाई देता है वैसा ही होता है। हर संगठन में ढांचे की एक सूची होती है। उदाहरण :

खाद्य और कृषि विभाग

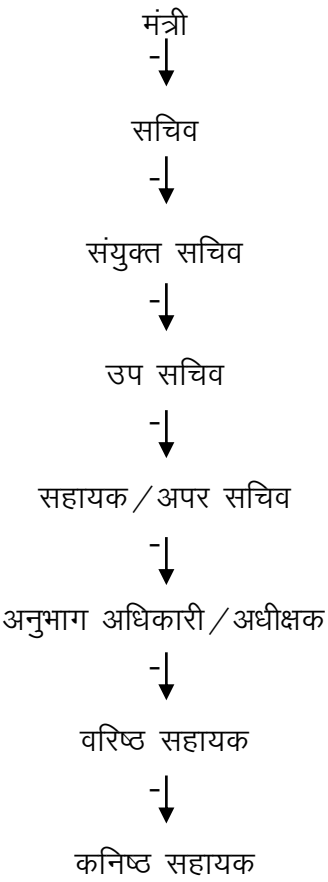

चेस्टर बर्नार्ड के अनुसार संगठन दो या दो से अधिक व्यक्तियों की गतिविधियों या शक्तियों में सोचे–समझे तालमेल की एक व्यवस्था है। बर्नार्ड की राय में व्यक्ति एक संगठन में काम करने को इसलिए राजी हो जाते हैं क्योंकि वे अपनी सेवाएं देने और बदले में कुछ लाभ प्राप्त करने को तैयार होते हैं। डाक विभाग की कार्य प्रणाली इसका एक अच्छा उदाहरण है। आप तक डाक पहुंचाने के लिए कई परस्पर निर्भर गतिविधियां एक साथ काम करती हैं जैसे पत्रों की छंटाई, डाकियों को डाक का वितरण और फिर सम्बद्ध व्यक्ति के घर, दफ्तर तक डाक पहुंचाना। लुई एलन के अनुसार औपचारिक संगठन ''हर व्यक्ति के लिए निश्चित कार्यों की ऐसी व्यवस्था है जिसमें हर व्यक्ति के

अधिकार, जिम्मेदारी और जवाबदेही स्पष्ट होती है। यह सारी व्यवस्था ऐसी होती है कि इसमें कार्यरत व्यक्ति अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सबसे कारगर ढंग से मिलकर काम करते हैं।''

अतः औपचारिक संगठन में संगठन का एक निश्चित स्वरुप होता है, निर्णय लेने के विभिन्न स्तर स्पष्ट होते हैं, कार्यों और दायित्वों का बंटवारा होता है और कार्य निष्पादन व्यवस्थित ढंग से होता है।

4.4 औपचारिक संगठन की विशेषताएं

बर्नार्ड औपचारिक संगठनों को 'गतिविधि' या लोगों के बजाय बलों के संदर्भ में परिभाषित करता है। वह कहता है कि संगठन लोगों का एक समूह नहीं है लेकिन लक्ष्य या लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए तैयार किये गये कर्यों की एक श्रृंखला है।

बर्नार्ड का तर्क है कि औपचारिक संगठनों की विशेषता निम्न है–

1. व्यवस्थित प्रकृति 2. अव्यक्तिगत गतिविधि 3. विशेषता और 4. अनौपचारिक समूहों का अस्तित्व

औपचारिक संगठन का एक निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सुनियोजित प्रयास किए जाते हैं। इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं:

1. कानूनी दर्जा
2. कार्य का विभाजन
3. ढांचे की प्रधानता
4. स्थायित्व
5. नियम और व्यवस्थाएं

कानूनी दर्जा

औपचारिक संगठन की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसे कानूनी मान्यता प्राप्त होती है। सरकारी स्तर पर कोई संगठन बनाने के लिए संसद या विधान सभा को कानून बनाना पड़ता है। आयकर विभाग का गठन आयकर अधिनियम द्वारा किया गया। बम्बई, दिल्ली या हैदराबाद के नगर निगमों के गठन के लिए सम्बद्ध राज्यों के विधानमण्डलों ने कानून बनाए। जीवन बीमा निगम, खाद्य निगम जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों का गठन संसद द्वारा पारित कानूनों के आधार पर किया गया।

जो कानून किसी संगठन को बनाने की अनुमति देता है वह उसे कुछ अधिकार भी देता है। विभिन्न विभागों के कर्मचारियों को अपने सरकारी कार्य के निष्पादन हेतु कुछ कानूनी अधिकार मिले होते हैं। उदाहरण के लिए व्यक्तियों या संगठनों की गतिविधियों पर नजर रखने वाली विभिन्न परिपालन एजेंसियां अपने अधिकारों के तहत ही कार्रवाई करती हैं। अतः कानूनी दर्जा औपचारिक संगठन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

कार्य का विभाजन

कार्य के विभाजन की बुनियाद पर ही संगठन का निर्माण होता है। यह विभाजन औपचारिक संगठन के जरिए होता है। औपचारिक संगठन में प्रबन्ध के स्तर, अधिकारियों के पद और उनके कार्यक्षेत्र स्पष्ट रुप से निर्धारित होते हैं अतः इसमें कार्य का विभाजन बहुत आसीन से हो जाता है। इससे संगठन कुछ कार्यों या गतिविधियों में विशेषज्ञता हासिल करके अपने लक्ष्यों को कारगर ढंग से हासिल करता है। उदाहरण के लिए किसी संगठन का प्रबन्ध निदेशक उसके सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जिम्मेदार होता है, किन्तु अपने साथियों में काम बांटे बिना अपनी जिम्मेदारी निभा पाना उसके लिए असम्भव है। काम का विभाजन होने पर विशेषज्ञता भी बढ़ती है क्योंकि हर इकाई का एक निश्चित कार्य होता है और अधिकारी उसमें विशेषज्ञता हासिल कर लेते हैं।

ढांचे की प्रधानता

औपचारिक संगठन में डिजाइन और ढांचे को प्रधानता मिलती है। उर्विक के अनुसार ढांचे का अभाव असंगति, क्रूरता, बर्बादी और अकर्मण्यता का प्रतीक है। ढांचा बहुत स्पष्ट होता है और संगठन में कार्यरत व्यक्तियों की भूमिका भी निश्चित होती है। ढांचे से सूचनाओं के आदान–प्रदान की व्यवस्था और सदस्यों के बीच सम्बन्धों का भी पता चलता है।

स्थायित्व

औपचारिक संगठन अन्य संगठनों की अपेक्षा अधिक स्थाई होते हैं। यद्यपि वे परिस्थितियों के अनुसार अपना ढांचा और उद्देश्य भी बदल लेते हैं किन्तु सामान्यतः उनका गठन लम्बे समय के लिए ही किया जाता है। औपचारिक संगठन स्थाई होने के अलावा समय के साथ–साथ विकसित भी होते हैं।

नियम और व्यवस्थाएं

औपचारिक संगठन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस प्रकार के संगठन सुविचारित नियमों और व्यवस्थाओं के अनुसार कार्य करते हैं। औपचारिक संगठनों में कार्यरत अधिकारी अपनी पसंद–नापसंद से फैसले नहीं कर सकते बल्कि वे निर्धारित नियमों और व्यवस्थाओं के ढांचे के भीतर ही काम करते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी बैंक को एक उद्यमी को ऋण देना है तो ऋण की स्वीकृति से संबद्ध नियमों और व्यवस्थाओं का पालन होना चाहिए और उद्यमियों को हर शर्त पूरी करनी चाहिए। ऋण स्वीकृत करने वाले अधिकारी इन नियमों और व्यवस्थाओं का सख्ती से पालन करते हैं। नियमों और व्यवस्थाओं से अधिकारियों का अधिकार क्षेत्र सीमित हो जाता है।

4.5 औपचारिक संगठन के क्रियाकलाप

औपचारिक संगठन अनेक कार्य करते हैं। सबसे पहले तो वे लक्ष्यों और उद्देश्यों के निर्धारण में सहायता करते हैं। इसके बिना लोगों की शक्ति और योग्यता का कार्य विशेष के लिए उपयोग करना कठिन होगा। उदाहरण के लिए डाक विभाग का उद्देश्य

देश के नागरिकों तक जल्दी और कारगर ढंग से डाक, पहुंचाना है। रक्षा मंत्रालय का उद्देश्य हर तरह के बाहरी आक्रमण से देश की प्रभुसत्ता और अखण्डता की रक्षा करना है।

औपचारिक संगठन में संगठन के भीतर विभिन्न इकाइयों की गतिविधियों का स्वरुप और विस्तार निश्चित होता है। रक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत सेना, नौसेना और वायुसेना को क्रमशः जमीन, समुद्र और हवा में देश की सीमा की रक्षा की भूमिका सौंपी गई है।

औपचारिक संगठनों का एक और महत्वपूर्ण कार्य है तालमेल या समन्वय रखना। उदाहरण के लिए थाने का सब–इंस्पेक्टर कई हैड कांस्टेबलों की गतिविधियों में तालमेल रखता है। हर थाना एक सब–इंस्पेक्टर के सुपुर्द होता है। ऊँचे स्तर का प्रत्येक अधिकारी अपने एकदम अधीनस्थ अधिकारियों की गतिविधियों में तालमेल रखता है।

एलन के अनुसार औपचारिक संगठन सीमाएं, दिशा–निर्देश और नियम बनाते हैं। जिनका पालन करना आवश्यक होता है। वे ऐसा बुनियादी ढांचा सुलभ कराते हैं जिसके जरिए सरकार या कोई और उद्यम कार्य करता है। औपचारिक संगठन की उल्लेखनीय विशेषता है अवैयक्तिक सम्बन्ध। अर्थात् इसके सदस्यों के सम्बन्धों में कोई लगाव या भवनात्मक एकता नहीं होती। इन सम्बन्धों के कारण विभिन्न मसलों की जांच तटस्थ तथा निष्पक्ष भाव से होती है और मामले के गुण–दोष के आधार पर फैसले लिए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए अदालत में न्यायाधीश के सामने रखे हुए सबूतों के आधार पर फैसले दिए जाते हैं किसी और आधार नहीं वित्तीय मामलों में जमा–खर्च की जांच करने वाले ऑडिटर को वित्तीय नियमों, रसीदों, बाउचर और दस्तावेजी सबूतों के आधार पर सही–गलत का फैसला करना चाहिए।

4.6 अनौपचारिक संगठन

किसी भी संगठन को पूरे तौर पर समझने के लिए हमें उसके अनौपचारिक ढांचे पर भी ध्यान देना चाहिए। अनौपचारिक ढांचे को कोई औपचारिक मान्यता तो नहीं मिलती लेकिन यह औपचारिक ढांचे का पूरक होता है। चेस्टर बर्नार्ड ने औपचारिक संगठन की तरह अनौपचारिक संगठन के महत्व पर भी प्रकाश डाला है। उसके अनुसार अनौपचारिक संगठन व्यक्तिगत सम्पर्कों, परस्पर क्रियाओं और लोगों के सामूहिक संघों का समूह होता है। अनौपचारिक संगठन को किसी संगठन में कार्यरत लोगों के वास्तविक व्यवहार का प्रारुप भी बताया गया है। औपचारिक संगठन में जहां ढांचे को महत्व दिया गया है, वहीं अनौपचारिक संगठन में व्यक्तित्व और मानवीय भावनाएं महत्वपूर्ण हैं। प्रमुख अधिकारियों के बीच वरिष्ठ अधीनस्थ के सम्बन्धों पर अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रभावशाली व्यक्तित्व या शक्तिशाली सम्पर्को का असर पड़ सकता है।

अधिकांश प्रशासक अनौपचारिक ढांचे की अनिवार्यता के प्रति पूर्णतः सचेत हैं। सभी स्तरों के प्रशासक सामान्यतः संगठनों के भीतर या बाहर के एक या अधिक अनौपचारिक समूहों से जुड़े रहते हैं। राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री अपनी सहायता के लिए

किचन कैबिनेट बनाकर रखते हैं। इस समूह के सदस्य अक्सर प्रत्यक्ष और औपचारिक मंत्रिमंडलों और उनकी समितियों से अधिक प्रभावशाली होते हैं। हरेक संगठन में सूचना के आदान–प्रदान के औपचारिक माध्यमों के साथ–साथ, अधिकारी वर्ग, अनौपचारिक सम्पर्क माध्यमों पर भी भरोसा करते हैं। इन माध्यमों के जरिए प्रशासकों को इस बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं कि विभिन्न कार्यों और दायित्वों के बारे में अधिकारी वास्तव में क्या सोचते हैं। इसी तरह अधिकारियों को भी प्रशासकों के दृष्टिकोण की जानकारी मिलती रहती है।

अतः अनौपचारिक संगठनों को अक्सर प्रतिरुप संगठन और औपचारिक संगठनों की छाया माना जाता है। उनकी कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है और ऐसा करना बहुत कठिन भी है। उनके कोई निश्चित संगठनात्मक लक्ष्य भी नहीं होते। अतः सदस्यों के परस्पर सम्बन्ध भी निश्चित नहीं होते। स्वतः स्फूर्त, गैर सरकारी और आकारहीन सम्बन्धों से अनुकूल भावनाएं उत्पन्न होती हैं जिनसे परस्पर सम्पर्क बढ़ता है और जान–पहचान के बंधन मजबूत होते हैं। अनौपचारिक स्वरुप, लक्ष्यों के अभाव और आकारहीन सम्बन्धों के कारण अनौपचारिक संगठनों में औपचारिक व्यवस्था के कानून कायदे काम नहीं आते।

4.7 अनौपचारिक संगठन क्यों?

व्यक्तियों की अपनी जरुरतें और इच्छाएं होती हैं जिन्हें वे पूरा करना चाहते हैं। अनौपचारिक संगठन अपने प्रत्येक सदस्य की सभी जरुरतों को पूरा नहीं कर पाते। अतः सदस्य अन्य साधनों से अपनी जरुरतों को पूरा करना चाहते हैं। इसी इच्छा से अनौपचारिक संगठनों का उद्‌भव होता है।

हिक्स और गुल्लेट ने अनौपचारिक संगठनों के गठन के अनेक कारणों का पता लगाया है। पहला कारण यह है कि व्यक्ति अपनी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनौपचारिक संगठनों में शामिल होते हैं। व्यक्ति को रिश्ते–नातों, सम्बन्धों और साथ ही चाह होती है। अगर ये इच्छाएं पूरी न हों तो वह अकेलापन महसूस करता है और निराश हो जाता है। मेयो के अनुसार समूहों में काम करने वाले व्यक्ति अधिक संतुष्टि महसूस करते हैं। अतः अनौपचारिक संगठन व्यक्तियों की सामाजिक जरुरतों को पूरा करने के लिए बनाए जाते हैं।

जैसा कि चेस्टर बर्नार्ड ने कहा है, दूसरा कारण यह है कि व्यक्ति को सामाजिक सम्बन्धों में व्यक्तिगत सुख मिलता है। इसे एकता, सामाजिक अखण्डता या सामाजिक सुरक्षा कहते हैं। सामाजिक सम्पर्क के जरिए व्यक्ति अपनी पहचान और अपनत्व की चाह को सन्तुष्ट करता है। अनौपचारिक संगठनों में व्यक्ति को औपचारिक संगठनों की अपेक्षा अपनी क्षमताएं साबित करने के अधिक अवसर मिलते हैं।

तीसरा कारण यह है कि हर व्यक्ति संगठनों में अपना काम करते–करते कुछ तनाव, कुछ निराशा अनुभव करता है। इससे छुटकारा पाने के लिए वह कुछ दया, सद्‌भावना चाहता है। यह सब उसे अनौपचारिक संगठनों से मिलता है। इनमें व्यक्ति

अपनी निराशा, कुंठा को खुलकर अभिव्यक्त कर लेता है और उसे ऐसे मित्रों की सहानुभूति भी मिलती है जो पहले इस दौर से गुजर चुके होते हैं।

चौथा चरण यह है कि अनौपचारिक संगठनों में सदस्यों को अपने संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी सहायता मिल जाती है। विद्यार्थी को अपने साथी विद्यार्थियों की मदद मिल जाती है, संगठन के सदस्यों को अपनी जिम्मेदारियां निभाने में अपने ही साथियों का सहयोग और मार्गदर्शन मिल जाता है।

पांचवां कारण यह है कि अनौपचारिक संगठनों में व्यक्ति को अपनी रचनात्मक प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। ये संगठन स्वतः स्फूर्त प्रतिभा को बढ़ावा ही नहीं देते उसकी सुरक्षा भी करते हैं।

छठा कारण यह है कि प्रत्येक संगठन के कुछ मूल्य, कुछ आदर्श होते हैं जिनकी रक्षा प्रत्येक समूह को प्रिय होती है। इन मूल्यों को विकसित करके उनका प्रसार करना होता है। औपचारिक व्यवस्था में ऐसा कर पाना संभव नहीं है क्योंकि हो सकता है कि व्यक्ति के मूल्यों या आदर्श संगठन के मूल्यों के अनुरुप न हों किन्तु अनौपचारिक संगठन में इसका पूरा अवसर मिलता है।

अन्तिम कारण यह है कि संगठन के सदस्य सदैव यह जानने को उत्सुक रहते हैं कि उनके संगठन में क्या कुछ घट रहा है। सूचना के औपचारिक माध्यम बहुत सुस्त होते हैं, कभी–कभी बहुत कम सूचना मिलती है या नहीं भी मिलती। अनौपचारिक संगठन में विकसित सूचना माध्यम बहुत फुर्ती से काम करते हैं। इससे संगठन के सदस्यों को भावी घटनाओं की जानकारी पहले ही मिल जाती है और वे उसी के अनुसार खुद को ढाल लेते हैं।

4.8 अनौपचारिक संगठन की विशेषताएं

अनौपचारिक संगठन की अनेक अनूठी विशेषताएं हैं। सबसे पहली विशेषता तो यह है कि इन संगठनों के सदस्यों के सोचने–समझने और काम करने का तरीका एक सा है। लगातार सम्पर्क के कारण इनकी मान्यताएं समान हो जाती हैं। इन समान मान्यताओं का जरा सा भी उल्लंघन करने वाले सदस्य को सामूहिक दबावों का सामना करना पड़ता है। और बिरादरी से बाहर किए जाने का खतरा रहता है। अतः अनौपचारिक संगठनों में व्यवहार के मानदण्डों को सख्ती से लागू किया जाता है।

दूसरे, अनौपचारिक संगठन में सदस्यों की एक और विशेषता है, नेतृत्व की भिन्न शैली। औपचारिक संगठनों में सदस्य अपने नेता का सम्मान उसके पद और अधिकारों के कारण करते हैं। जबकि अनौपचारिक संगठनों में सदस्य नेता के प्रभाव के कारण उसका साथ देते हैं। जैसा कि मेरी पार्कर फॉलेट ने कहा भी है, नेता परिस्थिति की देन होते हैं और तभी तक नेतृत्व करते हैं, जब तक परिस्थिति की मांग होती है। किन्तु अनौपचारिक संगठनों में नेता को समूह की अपेक्षाओं के अनुरुप बनना पड़ता है। इसमें असफल रहने पर उसे नेता के पद से हटा दिया जाता है। औपचारिक संगठनों में यह सम्भव नहीं है।

अनौपचारिक संगठन मुख्य तीन कार्यों को करते हैं– 1. अमूर्त तथ्यों का संचार करने के लिए, 2. औपचारिक संगठनों में संयम बनाये रखने के लिए, 3. व्यक्तिगत अखण्डता की भावना में मुख्यतः मदद करने के लिए।

4.9 अनौपचारिक संगठन की कमियां

इसमें सन्देह नहीं कि अनौपचारिक संगठन कई तरह से औपचारिक संगठन की मदद करता है। औपचारिक संगठनों के सदस्यों को अपने संगठन से कुछ नहीं मिलता उसे वे अनौपचारिक संगठनों से पाते हैं। किन्तु इन संगठनों की अपनी समस्याएं और कमियां भी हैं।

अनौपचारिक संगठन में सूचना का आदान–प्रदान बहुत तेजी से होता है जो निस्संदेह एक रचनात्मक भूमिका है किन्तु यह सूचना–व्यवस्था अक्सर, गलत, अधूरी और उल्टी–सीधी खबरें फैलाने लगती हैं। ऐसी अफवाहें फैलने से अनिश्चितता और संगठन के लिए कई समस्याऐं उत्पन्न हो जाती हैं।

दूसरे, हम देख चुके है कि अनौपचारिक संगठन कुछ मूल्यों– मान्यताओं के प्रसान के लिए बनाए जाते हैं। अर्थात् इनसे यथा–स्थिति को बढ़ावा मिलता है। आमतौर पर यह माना जाता है औपचारिक संगठन सदैव परिवर्तन का विरोध करते हैं। रीति–रिवाजों और परम्पराओं के नाम पर अक्सर ऐसे सुधारों का भी विरोध किया जाता है जो औपचारिक संगठन के लिए लाभप्रद होते हैं। तीसरे, समूह के मानदण्डों का पालन जबरदस्ती कराने के भी कुछ नुकसान हैं। इसके कारण अक्सर व्यक्तियों पर अपनी उत्पादकता सीमित करने के लिए दबाव डाला जा सकता है। टेलर ने इसे ''व्यवस्थागत बन्धन'' कहा है। यह दोष संगठनों के हित में नहीं है।

4.10 औपचारिक और अनौपचारिक संगठन का पारस्परिक सम्बन्ध

संगठनों की कार्यप्रणाली को सही ढंग से समझने और औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठनों की पूरी जानकारी के लिए उनके आपसी सम्बन्धों और पूरक भूमिकाओं को सही तरह समझना जरुरी है। औपचारिक और अनौपचारिक संगठन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। औपचारिक संगठन समाज को सुव्यवस्थित ढांचा प्रदान करते हैं और अनौपचारिक संगठन उन्हें स्फूर्त और प्राणवान बनाते हैं। असली बात तो यह है कि एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है। सिर्फ औपचारिक ढांचे के आधार पर किसी संगठन को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। किसी सक्रिय संगठन के गतिशील ढांचे को समझने के लिए उसके प्रमुख व्यक्तियों के व्यक्तित्वों और भूमिकाओं पर सार्थक नजर डालना आवश्यक है। भावी प्रबन्धकों को व्यक्तियों के लक्ष्यों और आकांक्षाओं, सामूहिक व्यवस्थाओं और अनौपचारिक भूमिकाओं आदि को समझना चाहिए। सूचना के अनौपचारिक माध्यमों से किसी भी संगठन के प्रमुख अधिकारी को ऐसी महत्वपूर्ण सूचना मिलती है जिससे वह परिस्थिति के अनुसार सही फैसला कर

सकता है। सफलता चाहने वाली प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था के कारगर संचालन के लिए संगठन के औपचारिक पहलुओं के बीच सही संतुलन आवश्यक है।

4.11 सारांश

कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कुछ कार्यों को पूरा करने के लिए संगठन बनाए जाते हैं। संगठन बड़े, छोटे, सहज या जटिल या औपचारिक और अनौपचारिक किसी भी प्रकार के हो सकते हैं। औपचारिक संगठनों में कानूनी दर्जा, ढांचे की प्रधानता, कार्य का विभाजन, स्थायित्व और नियम तथा व्यवस्थाऐं होती हैं। इनसे लक्ष्य और गतिविधियां निर्धारित करने और उनके बीच तालमेल रखने में मदद मिलती है। दूसरी ओर अनौपचारिक संगठन सदस्यों की सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, उनकी भावनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं, और रचनात्मक प्रतिभा के विकास के अवसर प्रदान करते हैं। अनौपचारिक संगठनों में वैचारिक समानता होती है और नेतृत्व की शैली औपचारिक संगठन से भिन्न होती है।

4.12 मुख्य शब्दावली

संगठनः किसी उद्यम या व्यवसाय के कार्यों और क्रिया–कलापों को पूरा करने वाले व्यक्तियों की सामूहिक व्यवस्था।

निष्पादन : कार्य का समाहार करना या उसे सम्पन्न करना।

समन्वय : किसी संगठन के संचालन में कर्मचारियों में पारस्परिक प्रशासनिक सहयोग तथा सामूहिक भावना लाना।

बहिष्कार : किसी एक विशिष्ट समूह अथवा समाज से निकाला जाना।

4.13 बोध प्रश्न

1. (1) संगठन क्या है?
   (2) औपचारिक संगठन की व्याख्या कीजिए।
   (3) औपचारिक संगठन की विशेषताएं बताइए।
   (4) औपचारिक संगठन के क्रियाकलापों का वर्णन कीजिए।

2. (1) अनौपचारिक संगठन क्या है?
   (2) अनौपचारिक संगठन क्यों बनाए जाते हैं?
   (3) अनौपचारिक संगठन की क्या–क्या विशेषताएं हैं।
   (4) अनौपचारिक संगठन में क्या–क्या कमियां हैं?
   (5) औपचारिक और अनौपचारिक संगठन किस प्रकार एक दूसरे के पूरक हैं?

4.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखें भाग 13.1

(2) देखें भाग 13.3
(3) देखें भाग 13.4
(4) देखें भाग 13.5

2. (1) देखें भाग 13.6
(2) देखें भाग 13.7
(3) देखें भाग 13.8
(4) देखें भाग 13.10

4.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Avasthi A. & Maheswari, 2014, Public Administration: Laxmi Narain Agarwal : Agra, Barnard Chester, I., 1954, The Functions of the Executive; Harvard University Press : Cambridge.

Brech, E.F., 1957, Organisation : The Framework of Management; Longman Green & Co. Ltd. : London.

E.N. Gladden, An Introduction to Public Administration; London Staples Press: London.

Herbert G. Hicks & C., Ray Gullett, 1975, Organisation: Theory and Behaviour; McGraw Hill : New Delhi

Holzer, Marc and Schwester, Richar W. Public Administration (New Delhi; PHI Learning, 2015)

John M. Pfiffner and Frank M. Sherwood, 1968, Administrative Organisation; New Delhi Prectice-Hall of India Private Limited: Ne Delhi

Louis A. Allen, 1958, Management and Organisation, McGraw Kogakusha, Ltd. : London.

इकाई– 05

कार्य का विभाजन और समन्वय

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 कार्य का विभाजन क्यों?
5.3 कार्य विभाजन के आधार
    5.3.1 उद्देश्य पर आधारित संगठन
    5.3.2 प्रक्रिया पर आधारित संगठन
    5.3.3 व्यक्तियों पर आधारित संगठन
    5.3.4 स्थान पर आधारित संगठन
5.4 कार्य विभाजन के लाभ
5.5 कार्य विभाजन की सीमाएं
5.6 समन्वय का अर्थ और परिभाषा
5.7 समन्वय क्यों आवश्यक है?
    5.7.1 टकराव या द्वंद्व समाप्त करने हेतु
    5.7.2 खतरनाक प्रतियोगिता समाप्त करने हेतु
    5.7.3 किफायत और कार्यकुशलता सुनिश्चित करने हेतु
    5.7.4 लक्ष्य प्राप्त करने हेतु
5.8 समन्वय के तरीके
    5.8.1 नियोजन
    5.8.2 परामर्श
    5.8.3 सम्मेलन और समितियां
    5.8.4 क्रियाविधियों का मानकीकरण
    5.8.5 लिखित निर्देश
5.9 समन्वय की समस्याएं
5.10 सारांश
5.11 प्रमुख शब्दावली
5.12 बोध प्रश्न
5.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इकाई का उद्देश्य

1 कार्य के विभाजन की आवश्यकता और आधारों का वर्णन कर सकेंगे,
2 सार्वजनिक संगठनों में समन्वय का महत्व बता सकेंगे, तथा
3 समन्वय के तरीकों और उसकी समस्याओं पर चर्चा कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में बड़े–छोटे अनेक संगठन बन रहे हैं, जिनमें बड़ी संख्या में नर–नारी संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मिलकर काम करते हैं। इन संगठनों में हम कार्य का विभाजन और विशेषता के उदाहरण भी देखते हैं। किसी भी सामूहिक गतिविधि में कार्य का विभाजन परम आवश्यक हो जाता है। वास्तव में यह सामूहिक प्रयास का अपरिहार्य आधार है। लोगों के झुंड को एकजुट, रचनात्मक और सार्थक समूह में बदलने का एकमात्र उपाय कार्य का विभाजन ही है। इसी से कार्यकुशलता में सुधार हो सकता है। अतः कार्य का विभाजन लोक–प्रशासन की मूल विशेषता है। लूथर गुलिक के अनुसार कार्य का विभाजन संगठन की बुनियाद है, वास्तव में संगठन बनाने का कारण भी यही है। यद्यपि एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक ''वैल्थ ऑफ नेशन्स'' में श्रम के विभाजन का महत्व बतलाया था, किन्तु प्रशासन और प्रबन्ध में इस पर कोई खास ध्यान नहीं दिया जाता। यदि कार्य का विभाजन विभिन्न क्रियाकलापों को कारगर ढंग से निपटाने के लिए परम आवश्यक है तो विभिन्न गतिविधियों में तालमेल और समन्वय अनिवार्य है। समन्वय के माध्यम से ही विभिन्न प्रयासों में तालमेल और समरुपता सम्भव होती है। जिसके माध्यम से संगठन के उद्देश्यों को पूरा किया जा सकता है। टकराव समाप्त करने, मतभेदों को सुलझाने और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न गतिविधियों में समन्वय ही एकमात्र रास्ता है। संगठनों में समन्वय की महत्ता को देखते हुए ही जेम्स मूनी ने इसे ''संगठन का प्रथम सिद्धान्त'' बताया। अतः आधुनिक संगठनों में कार्य का विभाजन और विभाजित कार्य का समन्वय होता है।

5.2 कार्य का विभाजन क्यों?

कार्य का विभाजन इसलिए परम आवश्यक है क्योंकि हर व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक क्षमताओं की एक सीमा होती है। सबसे पहले कार्य का विभाजन परिवार में हुआ जहां पुरुष को भोजन की तलाश और परिवार की सुरक्षा का भार मिला तथा खाना पकाने और बच्चों के पालन पोषण की जिम्मेदारी महिला को सौंपी गईं। समय के साथ–साथ उत्पादन के तरीके बदलते गए। औद्योगिक क्रान्ति और मशीनी युग ने कार्य के विभाजन की आवश्यकता को और बढ़ा दिया। कार्य का विभाजन उत्पादन को बढ़ाता है।

कार्य का विभाजन कई कारणों से जरुरी हो जाता है, एक तो लोगों की क्षमताएं और योग्यताएं भिन्न–भिन्न होती हैं। किन्हीं दो व्यक्तियों की शारीरिक या मानसिक क्षमता समान नहीं होती। कुछ व्यक्तियों में शारीरिक शक्ति बहुत अधिक होती है और

वे ऐसे काम कर सकते हैं जिनमें भारी शारीरिक शक्ति की आवश्यकता होती है। कोयला खानों के मजदूर, निर्माण कार्यों में लगे अकुशल मजदूर और सीमा पर तैनात जवान, शरीर से ताकतवर होने चाहिए। दूसरी ओर नीति–निर्माताओं, शोध कार्यों में लगे विद्वानों, अनुसन्धान प्रयोगशालाओं में कार्यरत वैज्ञानिकों आदि की मानसिक क्षमताएं बहुत प्रखर होनी चाहिए। अतः विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार की मानसिक और शारीरिक योग्यताओं की आवश्यकता होती है। अतः एक संगठन में व्यक्तियों की क्षमताओं के अनुसार कार्य का विभाजन आवश्यक हो जाता है।

कार्य के विभाजन की जरुरत इसलिए भी महसूस होती है कि एक व्यक्ति एक समय में दो स्थानों पर मौजूद नहीं रह सकता। यानि एक व्यक्ति अकेला भिन्न–भिन्न गतिविधियों का संचालन नहीं कर सकता। एक छोटा दुकानदार तो प्रबन्धक, खजांची और स्टोरकीपर तीनों का काम एक साथ संभाल सकता है। किन्तु बड़े संगठनों में अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग व्यक्तियों को नियुक्त करना जरुरी हो जाता है। इसके लिए किसी शहर के पुलिस आयुक्त का उदाहरण लिया जा सकता है। शहर के पुलिस आयुक्त का अधिकार–क्षेत्र लाखों की आबादी वाले बड़े इलाके (मान लीजिए सौ वर्गमील) में फैला होता है। आयुक्त मोटे तौर पर दिशा निर्देश देता है। उपायुक्त सहायक आयुक्त, सर्किल इंस्पेक्टर और कांस्टेबल विभिन्न थानों के जरिए आयुक्त के फैसलों पर अमल करते हैं। इसी तरह राज्य सरकारों में मंत्रिमण्डल या मंत्रियों की परिषद् नीतियां तय करती हैं और जिला स्तर से लेकर ताल्लुक और ग्राम स्तर तक राज्य सरकारों के विभिन्न कार्यालयों में नियुक्त हजारों अधिकारी इन नीतियों पर अमल करते हैं।

एक व्यक्ति एक बार में दो काम नहीं कर सकता। हर व्यक्ति की एक निश्चित मानसिक क्षमता होती है जिससे वह एक समय में कार्य के एक पक्ष पर ही ध्यान केन्द्रित कर पाता है। आप जानते हैं कि एक स्टेनोग्राफर या आशुलिपिक पहले आशुलेखन करता है और उसके बाद लिखी गई सामग्री को टाइप करता है। वह दोनों काम एक साथ नहीं कर सकता। टेलीफोन एक्सचेंज में बोर्ड पर बैठा टेलीफोन ऑपरेटर एक बार में एक ही कॉल का जवाब दे सकता है।

आज के युग में ज्ञान और योग्यताओं का दायरा बहुत तेजी से बढ़ रहा है। कोई व्यक्ति हर तरह के ज्ञान और पहलू में पारंगत नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए चिकित्सा का क्षेत्र इतना व्यापक है कि एक डॉक्टर चिकित्सा विज्ञान की हर शाखा में महारत हासिल नहीं कर सकता, इसीलिए वह किसी एक पहलू, जैसे सर्जरी या पैथोलॉजी या बायोकैमिस्ट्री पर ध्यान केन्द्रित करता है। सर्जरी के क्षेत्र में भी वह हृदय या मस्तिष्क या किसी और अंग की सर्जरी में महारत हासिल करता है।

5.3 कार्य विभाजन के आधार

कार्य का विभाजन किस आधार पर किया जाए इस विषय पर काफी चर्चा हुई है लेकिन कोई स्पष्ट सिद्धान्त उभर कर सामने नहीं आया है। अतः इसके कई तरीके

अपनाए जा रहे हैं। इनसे अधिकारियों को सिर्फ व्यापक दिशा–निर्देश ही मिलते हैं, कोई सटीक उपाय नहीं। मोटे तौर पर कार्य का विभाजन करते समय टिकाऊ तरीके ही अपनाए जाने चाहिए। विभिन्न लेखकों ने कार्य विभाजन के अलग–अलग तरीके बताए हैं। उदाहरण के लिए लूथर गुलिक ने उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति और स्थान (इसे अंग्रेजी में 4 पी का सिद्धान्त कहते हैं) को विभाजन का आधार बनाया जबकि न्यूमैन ने इसके लिए उत्पादनों, स्थान, ग्राहकों, प्रक्रियाओं और कार्यकलापों का आधार माना। करीब–करीब गुलिक की तरह मिलेट ने भी उद्देश्य प्रक्रिया उत्पादनों, व्यक्तियों और स्थानों को आधार मानने का सुझाव दिया।

चूंकि कार्य के विभाजन का कोई सर्वमान्य तरीका नहीं है इसलिए संगठन और परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार यह तय किया जाता है कि कार्य का विभाजन किन आधारों पर किया जाए। इसी प्रकार प्रत्येक आधार के अपने फायदे और नुकसान होते हैं और कार्य का विभाजन फायदों को दृष्टि में रखते हुए ही किया जाना चाहिए। लोक प्रशासन में सबसे बढ़ी समस्या यह है कि सरकारी कार्य को कुशलतापूर्वक कारगर ढंग से और किफायत के साथ पूरा करने के लिए किस प्रकार विभाजित किया जाए। यद्यपि इसका कोई सर्वमान्य आधार नहीं फिर भी गुलिक के बताए चार आधारों, उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति और स्थान को आमतौर पर सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है।

5.3.1 उद्देश्य पर आधारित संगठन

कार्य के विभाजन का एक स्वीकार्य आधार उद्देश्य या क्रियाकलाप है। वास्तव में क्रियाकलाप को सरकार के किसी प्रमुख उद्देश्य को पूरा करने वाली परस्पर जुड़ी गतिविधियों का विशाल समूह कहा जा सकता है। इस दृष्टि से हम रक्षा विभाग को उदाहरण मान सकते हैं। रक्षा विभाग का मुख्य उद्देश्य बाहरी हमलों से देश की सुरक्षा और देश की सीमाओं की चौकसी करना है। इस प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति हेतु परस्पर सम्बन्धित सभी गतिविधयां इस संगठन के भीतर चलती रहती हैं।

उद्देश्य के आधार पर कार्य का विभाजन करने या संगठन बनाने के कुछ फायदे हैं। इससे निर्धारित लक्ष्यों को संतोषजनक ढंग से प्राप्त करना संभव हो जाता है क्योंकि एक गतिविधि के परस्पर जुड़े सभी पहलुओं पर संगठन के मुखिया का सीधा नियंत्रण होता है। इससे लोगों को भी सरकार के विभिन्न विभागों का कामकाज सम्भालने में मदद मिलती है। इससे लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु काम पर पूरा ध्यान देने की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा मिलता है। किन्तु इसके कुछ नुकसान भी हैं।

इसमें अलग–अलग विभागों या व्यक्तियों द्वारा समान कार्य करने की समस्या को दूर नही किया जा सकता क्योंकि एक विभाग का कार्य दूसरे में भी पाया जा सकता है। जैसे शिक्षा विभाग और स्वास्थ विभाग के बहुत से कार्य एक समान है। इससे सत्ता का केन्द्रीकरण होता है। हर विभाग अपने काम पर जोर देने की कोशिश करता है जिससे अनावश्यक टकराव उत्पन्न होता है। इसका एक नुकसान यह भी है कि लोग

अपनी योग्यता बढ़ाने पर ध्यान नही देते क्योंकि एक विभाग की गतिविधियाँ केवल मुख्य उद्देश्य पर ही केन्द्रित होती हैं।

5.3.2 प्रक्रिया पर आधारित संगठन

आवश्यक योग्यताओं या प्रक्रिया के आधार पर भी संगठन बनाए जा सकते है। उदाहरण के लिए टाइप कर पाना एक योग्यता है और कई संगठनों में टाइप करने वालों का एक केन्द्रीय संगठन या पूल होता है। अस्पताल में नर्सिग विभाग, नर्सों की पेशेवर दक्षता पर आधारित होता है। सरकार का सिविल इंजीनियरी कार्य के नियोजन, डिज़ाइन, निमार्ण, रख–रखाव और अन्य पहलुओं से जुड़ा रहता है।

व्यावसायिक दक्षता और सोच के इस युग में प्रक्रिया पर आधारित संगठन में योग्यता बढ़ाने की सुविधा के साथ–साथ तकनीकी योग्यता के अधिकतम उपयोग पर भी बल दिया जाता है। इससे मेहनत बचाने वाले उपकरणों के उपयोग को भी बढ़ावा मिलता है और उत्पादन बढ़ता है। एक ही समूह में प्रतिभा का संचय होने से समस्याओं का लगातार और स्थाई निराकरण होता रहता है। प्रक्रिया पर आधारित संगठन में कर्मचारी की आजीविका के नियोजन और विकास की काफी गुंजाइश होती है। किन्तु इस दृष्टिकोण में आम जनता की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को भुलाकर विशेषज्ञता पर जरूरत से ज्यादा जोर दिए जाने की आशंका बनी रहती है। यह भी हो सकता है कि व्यवसाय या योग्यता के आधार पर बने संगठनों को लोकतांत्रिक नियंत्रण स्वीकार करने में आपत्ति हो।

5.3.3 व्यक्तियों पर आधारित संगठन

लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य समुदाय को लाभ पहुँचाना है। संगठनों का आधार वह व्यक्ति भी हो सकता है जिसे लाभ मिलना है। बाल और महिला कल्याण निदेशालय, अनुसूचित जाति और जनजाति आयुक्त, और जनजातीय कल्याण निदेशालय आदि इस सिद्धान्त के कुछ उदाहरण हैं।

लक्षित व्यक्तियों के आधार पर विभागों के गठन से इन लोगों की हालत में काफी सुधार होता है। इनमें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और विकलांगो जैसे लक्षित समूहों को सही ढंग से समझने और उनके समाधान पर पूरा ध्यान देने का पूरा अवसर मिलता है। इन वर्गों पर वैसे इतना ध्यान नहीं दिया जाता, किन्तु इस आधार पर बने संगठन में विशेषज्ञता को बढ़ावा नहीं दिया जाता। दूसरे इनमें दोहराव और टकराव की संभावना भी काफी होती है। सम्भव है कि दबाव डालने वाले समूह बहुत अधिक सक्रिय हो जाएं और लाभ उठाने के इच्छुक व्यक्ति, नीति निर्धारकों को प्रभावित करने की कोशिश करें।

5.3.4 स्थान पर आधारित संगठन

संगठनों का निर्माण, कार्य के क्षेत्र के आधार पर भी किया जा सकता है। रेल विभाग के क्षेत्रीय मण्डल, विदेश मंत्रालय के क्षेत्रीय प्रभाग तथा घाटी प्राधिकरण आदि कार्यक्षेत्र पर आधारित संगठनों के अच्छे उदाहरण हैं।

क्षेत्र के आधार पर विभागों के गठन का सबसे बड़ा फायदा यह है कि क्षेत्र की समस्याओं पर सीधे ध्यान दिया जा सकता है। क्षेत्रीय दृष्टिकोण से विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया और लचीले रवैये के बढ़ावा मिलता है। दूसरी ओर इस तरह के संगठन में एकरुपता का अभाव होता है और समन्वित दृष्टिकोण अपनाना कठिन होता है।

5.4 कार्य विभाजन के लाभ

किसी भी संगठन में कार्य के विभाजन के कुछ लाभ होते हैं। एक तो संगठन की कार्यकुशलता बढ़ेगी क्योंकि अधिकारियों की नियुक्ति उनकी क्षमता, प्रवीणता के आधार पर होती है। आमतौर पर किसी भी संगठन में मुख्य अधिकारी कार्य का विभाजन अलग–अलग व्यक्ति की प्रवीणता के आधार पर करते हैं। सम्भव है कि श्रीमान 'क' गोपनीय मामलों को निपटाने में बहुत निपुण हों और उन्हें नाजुक सुरक्षा मामलों की जिम्मेदारी सौंपी जाए। कोई और व्यक्ति जोड़–तोड़ करने और लोगों तक अपनी बात पहुंचाने तथा दूसरों की बात धैर्य से सुनने में दक्ष हो और उसे जनसम्पर्क विभाग में नियुक्त किया जाए। तीसरा व्यक्ति विश्लेषण कार्य में दक्ष हो और उसकी सेवाओं का उपयोग अनुसंधान विभाग में किया जाए। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि कार्य के विभाजन में हर व्यक्ति को उसकी प्रवीणता के आधार पर काम सौंपा जाता है।

कार्य के विभाजन से उत्पादन में भी वृद्धि होती है। मोटर वाहन बनाने के कारखाने में हिस्से–पुर्जों को एक साथ जोड़ने की तकनीक का इस्तेमाल इसका एक उदाहरण है। वाहन के विभिन्न हिस्से पुर्जे कारखाने की विभिन्न इकाइयों में बनते हैं। इन हिस्से पुर्जों को एक साथ जोड़ने से कार तैयार हो जाती है चूंकि प्रत्येक इकाई सिर्फ एक पुर्जा बनाती है इसलिए कार्यकुशलता बढ़ती है और उत्पादन की गति होती है।

उचित मात्रा में कार्य के विभाजन में किफायत भी होती है क्योंकि इसमें समय, साधनों और योग्यताओं के अधिकतम उपयोग को बढ़ावा दिया जाता है।

5.5 कार्य विभाजन की सीमाएं

यद्यपि कार्य का विभाजन करना प्रत्येक संगठन में अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु एक उचित सीमा से आगे ऐसा नहीं किया जा सकता। श्रम के विभाजन में कुछ नियमों का पालन करना होता है। सबसे बड़ी शर्त तो यह है कि कार्य का विभाजन इस स्तर तक ही होना चाहिए कि एक व्यक्ति उस कार्य पर पूरा ध्यान दे सके। कार्य के इससे अधिक विभाजन से ऊर्जा और प्रयासों में बिखराव आ जाता है। गतिविधि विशेष के

अनुरुप योग्यताओं के स्तर, कार्य की मात्रा, समय, स्थान और तकनीक का भी कार्य के विभाजन पर असर पड़ता है।

यदि कार्य का विभाजन अनिवार्य है तो विभिन्न व्यक्तियों के प्रयासों में तालमेल रखना भी उतना ही आवश्यक है।

कार्य का विभाजन प्रबन्ध व्यवस्था का महत्वपूर्ण साधन है। आधुनिक लोक प्रशासन की यह बुनियादी आवश्यकता है। वास्तव में ज्ञान और व्यवसायों के विकास के साथ–साथ विशेषज्ञता और कार्य के विभाजन में तो कहीं अधिक विशेषज्ञता की आवश्यकता, बहुत बढ़ जाएगी। कार्य का विभाजन बढ़ने के साथ–साथ उसमें समन्वय की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है।

5.6 समन्वय का अर्थ और परिभाषा

समन्वय का रचनात्मक पक्ष भी है और नकारामक भी। नकारात्मक रुप में समन्वय का उद्देश्य, लक्ष्य विशेष के संदर्भ में मतभेदों या टकरावों को दूर करना है।

किसी भी संगठन में जब लोगों के विभिन्न समूहों में काम बांटा जाता है तो उसका नतीजा उनके आपसी सहयोग पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए किसी कारखाने में कार्मिक विभाग को कुशल कर्मचारियों की सेवाएं उपलब्ध कराने की व्यवस्था करनी चाहिए। स्टोर्स विभाग को कच्चे माल और वित्त विभाग को धन की व्यवस्था करनी चाहिए। स्टोर्स विभाग को कच्चे माल और वित्त विभाग को धन की व्यवस्था करनी चाहिए। प्रत्येक इकाई को एक–दूसरे के सहयोग से हर चीज समय पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था करनी चाहिए, ताकि उत्पादन रुक न पाए। अतः समन्वय बाधाएं दूर करने के साथ–साथ सहयोग की भावना पैदा करता है।

''समन्वय किसी उपक्रम में कार्यकुशलता का ऊँचा स्तर प्राप्त करने के लिए विभिन्न हिस्सों के बीच तालमेल करके उन्हें एक व्यवस्थित रुप देता है''। संगीत–आर्केस्ट्रा का उदाहरण इस परिभाषा का सही अर्थ समझने में हमारी मदद करेगा। आर्केस्ट्रा में अलग–अलग कलाकर अलग–अलग साज बजाते हैं, किन्तु हर साज के सुरों को एक सूत्र में बांधकर सुरीले संगीत में ढालने के लिए जरुरी है कि संगीत निर्देशक या संचालक उनमें समन्वय रखे।

सेकलर हडसन के अनुसार समन्वय, ''काम के विभिन्न हिस्सों के बीच तालमेल का महत्वपूर्ण कार्य है।'' क्षेत्रीय रेलवे का महाप्रबन्धक विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का संचालन करता है। इंजनों और डिब्बों की देखभाल की जिम्मेदारी मैकेनिकल इंजीनियरी विभाग के कर्मचारियों की होती है। रेल पटरियों की देखभाल का काम चीफ इंस्पेक्टर ऑफ परमानेंट वेज का है। विभिन्न रेलगाड़ियों के आने–जाने पर यातायात नियंत्रक नजर रखता है। स्टेशन अधीक्षक और उनके कर्मचारी यह ध्यान रखते हैं कि गाड़ियां समय पर आएं जाएं और यात्रियों की जरुरतें पूरी हों। स्टोर्स विभाग कच्चे माल की, वित्त विभाग धन की और कार्मिक विभाग कर्मचारियों की व्यवस्था करता है। महाप्रबन्धक

विभिन्न समूहों के बीच कार्य का विभाजन करने के बाद उनके बीच इस ढंग से तालमेल रखता है कि गाड़ियां समय पर आ–जा सकें।

5.7 समन्वय क्यों आवश्यक है?

किसी भी उद्यम में, जहां एक से अधिक कर्मचारी हों, समन्वय आवश्यक हो जाता है। प्रशासन वास्तव में एक सामूहिक गतिविधि है जिसमें सैकड़ों अधिकारी अलग–अलग कार्य करते हैं। किसी समस्या के बारे में वैचारिक भिन्नता या विभिन्न क्षेत्रों को दिए जा रहे महत्व के कारण कुछ मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं।

संगठन के भीतर काम को समय से निपटाने के बारे में संगठन के प्रमुख और कर्मचारियों के बीच मतभेद हो सकता है। प्रमुख चाहता है कि फाइलें जल्दी निपटाने पर ज्यादा जोर दिया जाए जबकि फाइल निपटाने वाले अधिकारी की शिकायत होती है संबद्ध आंकड़ों या जरुरी कागजों की कमी और दूसरे विभागों का सहयोग न मिलने के कारण काम जल्दी निपटाना कठिन हो जाता है।

उपरोक्त उदाहरण तो आमतौर पर देखे ही जाते हैं फिर भी संगठन में समन्वय निम्नलिखित कारणों से आवश्यक है।

5.7.1 टकराव या द्वंद्व समाप्त करने हेतु

आपको शायद यह जानकर आश्चर्य होगा कि दैंनदिन प्रशासन के दौरान टकराव कैसे उत्पन्न होता है। कल्याणकारी शासन में प्रशासन समाज के विभिन्न वर्गों की विविधि जरुरतों को पूरा करता है। एक फैलते महानगर में जमीन के सही उपयोग के उदाहरण से हितों का टकराव स्पष्ट हो जाता है। नगर नियोजन विभाग और शहरी विकास प्राधिकरण क्षेत्रीय योजनाएं बनाते हैं। किन्तु जमीन–जायदाद की खरीद–फरोख्त करने वालों, भवन–निर्माताओं, उद्योगपतियों और व्यापारियों की अपनी प्राथमिकताएं होती हैं। यह प्राथमिकताएं क्षेत्रीय योजनाओं के प्रतिकूल भी हो सकती हैं।

नदियों के जल के बंटवारे के बारे में भी विभिन्न राज्यों के बीच टकराव होता है। कृष्णा नदी के जल के बंटवारे के बारे में महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, और कर्नाटक की सरकारों की अलग–अलग राय है, इन विवादों का समाधान भी आवश्यक है।

परमाणु बिजलीघर लगाया जाए इस पर भी टकराव हो सकता है। पर्यावरण विभाग, पर्यावरण संरक्षण सोसाइटी और इस फैसले के कारण जमीन बेचने के लिए मजबूर लोग इस पर आपत्ति कर सकते हैं।

5.7.2 खतरनाक प्रतियोगिता समाप्त करने हेतु

एक सीमा तक आपसी प्रतियोगिता से विभिन्न कर्मचारियों के प्रदर्शन में सुधार होता है। लेकिन जब यह होड़ खतरनाक मोड़ ले लेती है तो गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। काम में देरी होती है। सरकारी विभागों में आमतौर पर पिछले वर्ष के मुकाबले ज्यादा धन खर्च करने का रिवाज है। उनके बजट अनुमान किसी भी सहयोगी विभाग

से ज्यादा होने चाहिए। आइए इसका एक शानदार उदाहरण देखें। इधर खाद्य विभाग मांग करता है कि अनाज के आयात के लिए ज्यादा धन दिया जाए, उधर कृषि विभाग चाहता है उत्पादन बढ़ाने के लिए ज्यादा धन लगाया जाए। इससे एक ही मंत्रालय के दो विभागों की आपसी होड़ का अंदाज लगता है। विभिन्न जिला स्वास्थ्य केन्द्रों के अधिकारियों के बीच परिवार नियोजन के लक्ष्य पूरे करने की होड़ के परिणामस्वरूप कभी–कभी बूढ़ों और बच्चों की भी नसबंदी कर दी जाती है। आकर्षक यात्रा सुविधाएं देने के लिए विभिन्न हवाई कम्पनियों को नुकसान भी उठाना पड़ता है। रेल और सड़क परिवहन व्यवस्था के बीच होड़ खतरनाक नहीं होनी चाहिए बल्कि तेज और सुरक्षित परिवहन सुविधा उपलब्ध कराने पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिए।

5.7.3 किफायत और कार्यकुशलता सुनिश्चित करने हेतु

कुशल प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि संगठन के लक्ष्यों को निर्धारित समय और लागत में पूरा किया जाए। इसमें जरा सी भी देरी से लागत बढ़ जाती है। यह तभी सम्भव है जब जनशक्ति, सामग्री और धन सही वक्त और सही समय पर उपलब्ध हो और उच्च स्तर से ये निर्देश हों कि कार्य को निर्धारित समय में पूरा किया जाए। भोपाल के भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स लि0 में मशीनें लगाने के काम के उदाहरण से यह साफ हो जाता है कि समन्वय के अभाव में काम में देरी और लागत में वृद्धि किस प्रकार होती है। यह कारखाना भोपाल में लगाया जा रहा था और विदेशों से मंगाई गई भारी मशीनों को बम्बई पहुंचने के बाद रेलगाड़ी से भोपाल भेजा जाना था। मशीनों के बम्बई पहुंचने के बाद पता चला कि उपलब्ध वैगनों में यह मशीनें पश्चिमी घाट से होकर नहीं जा सकतीं। अतः जहाज को बम्बई से कलकत्ता बन्दरगाह भेज दिया गया। जिससे फालतू पैसा खर्च हुआ और देर भी हुई। अब दक्षिण पूर्व रेलवे के पास उस आकार के पर्यावरण वैगन न होने के कारण जहाज को और चार हफ्ते इंतजार करना पड़ा जिसके लिए हर्जाना देना पड़ा। मशीनें आने से पहले ही मजदूरों की नियुक्ति कर ली गई थी, देरी होने पर उन्हें वापस नहीं भेजा जा सकता था। इससे समय तो बर्बाद हुआ ही, खर्च भी बढ़ गया। यह सब इंतजाम और समन्वय की कमी के कारण हुआ।

5.7.4 लक्ष्य प्राप्त करने हेतु

किसी उद्यम में लक्ष्य पूरे करने का काम समन्वय पर निर्भर होता है। किसी आम अस्पताल के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि मरीजों को स्वास्थ्य और चिकित्सा सेवा समय से उपलब्ध कराने के लिए समन्वय कितना जरुरी है। अस्पताल का प्रशासन सर्जनों, डाक्टरों, नर्सों, पैथोलोजिस्ट, बायो–कैमिस्ट, प्रयोगशाला तकनीशियनों, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों, प्रशासक, फार्मासिस्टों आदि के सामूहिक प्रयासों का सर्वोत्तम उदाहरण है। अधीक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह इस समूह का मार्गदर्शन करें और सदस्यों की गतिविधियों में समन्वय रखें ताकि मरीजों को सेवाएं उपलब्ध हो सके।

5.8 समन्वय के तरीके

समन्वय अपरिहार्य तो है ही लेकिन प्रशासन में समन्वय के विभिन्न तरीकों को जानना भी जरुरी है। तरीके निम्न प्रकार हैं :

5.8.1 नियोजन

नियोजन समन्वय का एक महत्वपूर्ण तरीका है। नियोजन का अर्थ है ''भावी गतिविधियों की पहले से रुप रेखा तैयार करना, जिसमें कार्य के विभिन्न पहलुओं का पता लगाकर व्यवस्थित क्रियान्वयन की कार्यसूची बनाना शामिल है।'' नियोजन की उपयोगिता निश्चित समय सीमा के भीतर उपलब्ध संसाधनों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने में है। विद्युत उत्पादन के लिये विशाल ताप बिजली संयंत्र के निर्माण को हम उदाहरण मान सकते हैं। संयंत्र के निर्माण का फैसला होते ही नियेाजन की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। इसके अन्तर्गत जमीन के अधिग्रहण, भवन निर्माण, स्वदेशी उपकरणों के निर्माण, मशीनों के आयात, संयंत्र की स्थापना, तकनीकी कर्मचारियों की नियुक्ति और संयंत्र को चालू करने जैसे कार्यों के विभिन्न चरण निश्चित कर लिए जाते हैं। काम एक निश्चित क्रम में चलता है जिसमें प्रत्येक इकाई अपना निर्धारित कार्य पूरा करती है। यदि नियोजन सही ढंग से किया गया हो तो देरी की आशंका नहीं के बराबर होती है।

5.8.2 परामर्श

समन्वय सुनिश्चित करने का एक और तरीका है परामर्श। यदि एक विभाग के फैसले से किसी दूसरे विभाग के कार्यकलाप पर असर पड़ने की आशंका हो तो पहले से सलाह करके उचित फैसला किया जाना चाहिए। चूंकि अधिकांश प्रशासनिक फैसले वित्तीय स्थिति से जुड़े होते हैं। अतः यह आम रिवाज है कि हर विभाग अतिरिक्त खर्च की फाइलों को वित्त विभाग के पास भेजे ताकि इसकी मंजूरी पहले से मिल सके। आपसी परामर्श की कमी का एक उदाहरण है सड़कों का निर्माण। अक्सर जल आपूर्ति विभाग, बिजली या टेलीफोन विभाग समय–समय पर सड़कों पर खुदाई करते रहते हैं। संबद्ध विभागों का काम पूरा होने के बाद भी सड़क बिछाने का काम किया जा सकता है।

5.8.3 सम्मेलन और समितियां

सम्मेलन, समितियां और अन्तर–विभागीय समितियां समन्वय सुनिश्चित करने के संवैधानिक तरीके हैं। स्वास्थ्य मंत्रियों के वार्षिक सम्मेलन में राज्यों और केन्द्र सरकार के मंत्रियों को विचारों के आदान–प्रदान का अवसर मिलता है जिससे वे एक साझी कार्य योजना बना सकते हैं। रेलवे के महाप्रबन्धकों और रेलवे बोर्ड के सदस्यों के सम्मेलन में तेल परिवहन–व्यवस्था उपलब्ध कराने की समस्याओं पर विचार होता है। अन्तर–विभागीय समितियों के माध्यम से भी समन्वय किया जाता है ताकि काम ठीक ढंग से चलता रहे। यातायात नियमों को लागू करने के काम की समीक्षा करने वाली

अन्तर–विभागीय समिति में पुलिस विभाग, सड़क और भवन निर्माण, नगर–निगमों और नगर पालिका प्रशासन के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। भारत सरकार और राज्य सरकारों के स्तर पर समन्वय का काम मंत्रिमंडल सचिवालय, सामान्य प्रशासन विभाग और राष्ट्रीय विकास परिषद् जैसी संस्थाएं करती हैं। राष्ट्रीय विकास–परिषद योजनाओं के मामले में केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच समन्वय करती है। इसी प्रकार क्षेत्रीय परिषद् भी विभिन्न क्षेत्रों में समन्वय रखती है। इसके अध्यक्ष गृहमंत्री और सदस्य संबद्ध क्षेत्रों के मुख्यमंत्री होते हैं।

5.8.4 क्रियाविधियों का मानकीकरण

क्रियाविधियों और उपायों के मानकीकरण से समन्वय में सुविधा होती है। इससे विभिन्न एजेंसियों के लिए समान कार्यक्रम अपनाने का मार्ग प्रशस्त होता है। सभी मंत्रालयों की विभिन्न आवश्यकताओं हेतु सामान खरीदने की प्रक्रिया आपूर्ति और निपटान महानिदेशालय द्वारा निर्धारित की जाती है। क्रियाविधि के मानकीकरण से विभिन्न विभागों द्वारा खरीद के मामले में उलझन समाप्त हो जाती है और एकरुपता रहती है एक ही स्थान पर गतिविधियां केन्द्रित रहने से समन्वय बेहतर होता है। मुद्रण, लेखा परीक्षा, उपकरणों तथा भवनों की देखभाल की केन्द्रीयकृत व्यवस्था इसका अच्छा उदाहरण है। इस केन्द्रीयकृत व्यवस्था का एक लाभ यह है कि प्रयासों में दोहरापन नहीं होता और सभी सामान समय से उपलब्ध हो जाता है।

5.8.5 लिखित निर्देश

यदि किसी संगठन में मुख्यालय से स्पष्ट निर्देश मिले तो कार्य सुचारु रुप से चलता है। उदाहरण के लिए जिलाधीशों को बाढ़ और सूखे आदि स्थितियों में किए जाने वाले उपायों के बारे में स्पष्ट निर्देश दिए जाते हैं। इससे जिला प्रशासन, समस्या उत्पन्न होते ही बचाव के उपाय शुरु कर देता है।

5.9 समन्वय की समस्याएं

वैसे तो संगठन में समन्वय की महत्ता बहुत स्पष्ट है किन्तु दुर्भाग्यवश कारगर ढंग से समन्वय रखना बहुत कठिन है। किसी संगठन में भविष्य की अनिश्चितता, जानकारी और अनुभव की कमी, नियोजन की कमी, संगठन के आकार, और घटकों की संख्या के कारण समन्वय रखने में कठिनाई आ सकती है। संक्षेप में संगठन की सफलता या विफलता इस बात पर निर्भर है कि समन्वय के लिए कितने कारगर उपाय किये गये हैं। वास्तव में समन्वय कारगर ढंग से लक्ष्य की प्राप्ति हेतु विभिन्न व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधने वाली शक्ति है।

5.10 सारांश

विभिन्न व्यक्तियों की अलग–अलग शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के कारण कार्य का विभाजन आवश्यक है। उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन से कार्य के विभाजन की आवश्यकता महसूस हुई। जिससे विशेषज्ञता को बढ़ावा मिला। कार्य के विभाजन

के साथ–साथ संगठन में समन्वय का भी उतना ही महत्व है। समन्वय के जरिए, विभिन्न लक्ष्यों को किफायती और कारगर ढंग से प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों और संस्थाओं के प्रयासों में तालमेल रखा जाता है।

5.11 प्रमुख शब्दावली

आजीविका : किसी व्यक्ति के नौकरी में लगने और उसके व्यक्तिगत विकास एवं भविष्य की स्थिति।

टकराव : परस्पर विचारों का मतभेद अथवा हितों को लेकर होने वाले द्वंद्व आदि से जूझना।

नियोजनः भविष्य के कार्यों को पहले से व्यवस्थित कर उनकी एक रूपरेखा बना लेना।

मानकीकरण : किसी भी विषय या वस्तु का एक ऐसा रूप या स्तर बना देना, जिसका मूल्यांकन करने या उसे आंकने में उलझन न हो।

5.12 बोध प्रश्न

1. (1) कार्य के विभाजन के क्या कारण हैं?
   (2) कार्य के विभाजन के आधार क्या हैं?
   (3) कार्य के विभाजन के लाभ और सीमाएं क्या हैं?
2. (1) समन्वय क्या है और इसकी क्या आवश्यकता है?
   (2) समन्वय के तरीकों की व्याख्या कीजिए।
   (3) समन्वय की समस्याएं क्या हैं?

5.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखें भाग 20.2
   (2) देखें भाग 20.3
   (3) देखें भाग 20.5

2. (1) देखें भाग 20.6 और 20.7
   (2) देखें भाग 20.8
   (3) देखें भाग 20.9

5.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Avasthi A, and Maheshwari, S.R., 2014, Public Administration (14th rev. ed); Laxmi Narain Agarwal : Agra

Gullick Luther and Urwick L, 1937, Papers on the Science of Administration (Eds); Public Administration Service : New York.

Mooney, J.D,m 1957, Principles of Organisation; Harper: New York

Pfiffer John M & Sherwood, Frank M, 1968, Administrative Organisation; Prentice Hall of India Private Limited: New Delhi.

इकाई– 06
सोपानक्रम

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 अर्थ और परिभाषा
6.3 महत्व
6.4 मूल विशेषताएं
6.5 स्तर लांघना
6.6 लाभ
6.7 कमियां
6.8 व्यावहारिक उपयोग
6.9 सारांश
6.10 प्रमुख शब्दावली
6.11 बोध प्रश्न
6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इकाई का उद्देश्य

1 सोपानक्रम के सिद्धान्त का अर्थ बता सकेंगे,
2 सोपानक्रम का महत्व समझ सकेंगे,
3 सोपानक्रम की मूल विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे, तथा उसके लाभ और कमियों के बारे में चर्चा कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

कोई भी संगठन विशेषज्ञता प्राप्त करने के उद्देश्य से विभिन्न इकाइयों में विभाजित होता है तथा 'सोपानक्रम' संगठन में उच्चतम अधिकारी निम्नतम कर्मचारी तक सम्बन्धों में ''वरिष्ठ'' और ''अधीनस्थ'' की रेखा खींच कर संगठन की विभिन्न इकाइयों में समन्वय स्थापित करता है।

6.2 अर्थ और परिभाषा

भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो ''सोपानक्रम'' का अर्थ किसी अधीनस्थ पर वरिष्ठ का नियंत्रण या सत्ता है। लेकिन प्रशासन में सोपानक्रम का अर्थ एक ऐसा बहुस्तरीय संगठन है जिसमें क्रमवार कई स्तर होते हैं जो आपस में एक–दूसरे से जुड़े

होते हैं। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिससे किसी संगठन के विभिन्न व्यक्तियों के प्रयासों को एक–दूसरे से जोड़ा जाता है। किसी भी बड़े संगठन में कुछ ऐसे लोग होते हैं जो आदेश देते हैं जबकि उसी संगठन के अन्य लोग इन आदेशों का पलन करते हैं। इसके परिणामस्वरुप संगठन में ऊपर से नीचे तक उत्तरदायित्वों के कई स्तरों के माध्यम से वरिष्ठ और अधीनस्थ के सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। संगठन में इन सम्बन्धों का पिरामिड आकार का ढांचा स्थापित हो जाता है जिसे मूनी और रैली ने ''सीढ़ीनुमा प्रक्रिया'' की संज्ञा दी है। संगठन में सीढ़ीनुमा'' का अर्थ है अधिकारों तथा सम्बन्धित उत्तरदायित्वों के अनुपात में दायित्वों का स्तर निर्धारित करना। मूनी के अनुसार यह सीढ़ीनुमा श्रृंखला सभी जगह पाई जाती है। जहां कहीं भी वरिष्ठ और अधीनस्थ के सम्बन्धों से बना लोगों का संगठन होगा वहीं सीढ़ीनुमा सिद्धान्त भी लागू होगा।

विद्वानों ने सोपानक्रम की परिभाषा अलग–अलग प्रकार से की है। एल. डी. व्हाइट के अनुसारः ''सोपानक्रम, व्यवस्था में ऊपर से नीचे तक उत्तरदायित्व के कई स्तरों के कारण उत्पन्न वरिष्ठ–अधीनस्थ का वह सम्बन्ध है जो सब जगह लागू होता है।'' दूसरे शब्दों में सोपानक्रम का अर्थ है उच्च स्तर पर नियंत्रण। प्रशासन में सोपानक्रम का अर्थ किसी संगठन का कई स्तरों अथवा सीढ़ियों में बंटा होना है। इसे ''सीढ़ीनुमा सिद्धान्त'' भी कहते हैं। जैसे सीढ़ी में एक के ऊपर एक पायदान होते हैं उसी प्रकार सोपानक्रम में विभिन्न स्तर होते हैं। इस व्यवस्था में सबसे बड़ा अधिकारी सबसे ऊँची कुर्सी पर बैठ अपनी पैनी दृष्टि से अपने सबसे निचले कर्मचारियों के दिलों को टटोल सकता है और उनकी गतिविधियों को अपने आदेशानुसार जैसा चाहे ढाल सकता है। सोपानक्रम का अर्थ है संगठन की गतिविधियों का मार्गदर्शन करने और उन पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से इकाइयों को मिला कर, एक बड़ी इकाई बनाना। यह एक ऐसी पद्धति है जिससे विभिन्न व्यक्तियों के प्रयासों को, ऊपर से नीचे तक, एक–दूसरे से जुड़े वरिष्ठ–अधीनस्थ सम्बन्धों के माध्यम से किसी सांझे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक सूत्र में पिरो दिया जाता है। जे. डी. मिलेट के अनुसार सोपानक्रम एक ऐसी पद्धति है जिससे विभिन्न लोगों के प्रयासों को आपस में जोड़ दिया जाता है।

प्रत्येक संगठन का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये वह अपनी गतिविधियों को विभिन्न इकाइयों में बांटता है। इन इकाइयों को भी तब तक उप–इकाइयों में विभाजित किया जाता है जब तक सबसे निचला स्तर न आ जाए जो संगठन सोपानक्रम के अनुसार कार्य करता है उसमें अधिकार अथवा सत्ता ऊपर से नीचे की ओर एक–एक सीढ़ी अथवा एक–एक स्तर उतरते हुए आते हैं। सोपानक्रम में ऊपर या नीचे एक–एक सीढ़ी या एक–एक स्तर चढ़ कर या उतर कर आया जाता है। प्रत्येक कर्मचारी को अपने से वरिष्ठ कर्मचारी के आदेश का पालन करना होता है तथा अपने अधीनस्थ को आदेश देना होता है। इस प्रकार सोपानक्रम सिद्धान्त में यह आवश्यक है कि ऊपर या नीचे के स्तर से सम्पर्क स्थापित करते समय बीच के किसी भी स्तर को लांघा या अनदेखा न किया जाए। इसे ''उपयुक्त माध्यम से'' काम करना कहते हैं। अतः हर प्रकार का आदेश या जानकारी एकदम ऊपर के

या एकदम नीचे के स्तर से ही आनी चाहिए। प्रत्येक अधिकारी अपने पास केवल आवश्यक अधिकार ही रखता है, अन्य अधिकारों को वह अपने अधीनस्थों में बांट देता है। इस प्रकार सोपानक्रम के परिणामस्वरुप निर्णय लेने के विभिन्न स्तरों की रचना होती है। सोपानक्रम ढांचे के कारण प्रमुख कार्यकारी अधिकारी संगठन के किसी भी स्तर के कर्मचारी को आदेश दे सकता है तथा उत्तरदायित्व सौंप सकता है।

6.3 महत्व

सोपानक्रम के बिना किसी संगठन की कल्पना करना मुश्किल है। निश्चित रुप से संगठन निर्धारित संख्या के लोगों में कार्यों का विभाजन करने की प्रक्रिया है। कार्यों और उत्तरदायित्वों का वितरण आड़ी और खड़ी दोनों दिशाओं में होता है। संगठन के ढांचे में आड़े और खड़े (लम्बवत्) दोनों ओर वृद्धि होती है। जब संगठन में नए–नए स्तर जोड़े जा रहे हों तो उसे खड़ी वृद्धि कहते हैं, लेकिन जब स्तरों में वृद्धि किए बिना ही नए–नए कार्य या स्थान जोड़े जा रहे हों तो उसे आड़ी वृद्धि कहते हैं। खड़ी वृद्धि से शीर्ष प्रबन्ध, मध्यम प्रबन्ध, प्रेक्षक तथा कार्य–निष्पादन का वास्तविक स्तर, जैसे स्तरों की रचना होती है। वास्तव में इन स्तरों का तात्पर्य अपने आप में किसी प्रकार की वरिष्ठता या अधीनस्थता नहीं है, फिर भी विभिन्न स्तरों के उत्तरदायित्वों में असमानता, वेतनमान में अन्तर तथा उन पर काम करने वाले लोगों की योग्यता और गुणों में भेद होने के कारण संगठन में वरिष्ठ–अधीनस्थ सम्बन्ध स्थापित हो ही जाते हैं।

सीढ़ीनुमा व्यवस्था की आवश्यकता दो कारणों से पूरी होती है :

1. कार्य में विशेषज्ञता प्राप्त करने के उद्देश्य से, (जो कि प्रबन्ध के सिद्धान्त के लिए अत्यावश्यक है) कार्य को उसके आवश्यक हिस्सों में बांटना।
2. विशेषज्ञताओं के व्यवहार तथा कार्यों को एक संयुक्त प्रयास में जोड़ने की प्रक्रिया।

6.4 मूल विशेषताएं : सोपानक्रम की कुछ विशेषताएँ नीचे दी गई हैः

- पूरे प्रशासनिक क्रिया–कलाप को इकाइयों और उप इकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है।
- इन इकाइयों की स्थापना एक के नीचे एक की जाती है जिससे पिरामिड का सा आकार बन जाता है।
- विभिन्न स्तरों को अधिकार सौपे जाते हैं।
- सोपानक्रम पर आधारित संगठन "उचित माध्यम से" सिद्धान्त का पालन करता है। सभी आदेश और सूचनाएं उचित माध्यम से हो कर गुजरनी चाहिए। बीच के किसी भी स्तर को अनदेखा नही किया जा सकता।
- व्यक्ति केवल अपने से वरिष्ठ एक अधिकारी से आदेश लेता है किसी भी अन्य अधिकारी से नही। यहां "समादेश की एकता" का सिद्धान्त लागू होता है।

- अधिकार और उत्तरदायित्व में समुचित ताल–मेल रखा जाता है। बिना उत्तरदायित्व के अधिकार खतरनाक होते हैं जबकि बिना अधिकार के उत्तरदायित्व अर्थहीन हो जाते हैं।

  सोपानक्रम के सिद्धांन्त को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

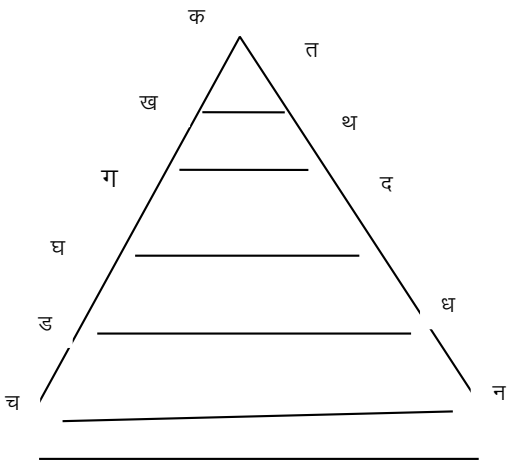

ऊपर दिए गए चित्र में, "क" संगठनात्मक पिरामिड के शिखर पर है। वह संगठन का प्रधान है। "ख" ''क'' का अधीनस्थ है। ''ग'' ''ख'' का निकटतम अधीनस्थ है तथा साथ ही ''क'' का भी अधीनस्थ है। इस प्रकार अगर हम इस श्रृंखला के नीचे चलते जाएं तो पाएंगे कि ''च'' ''ड'' का निकटतम अधीनस्थ है तथा साथ ही ''क'' का भी। अतः आदेश शिखर से तल तक चले आते है, अर्थात् "क'' से ''ख'' को, ''ख'' से ''ग'' को, ''ग'' से ''घ'' को ''घ'' से ''ड'' को, तथा ''ड'' से ''च'' को, तथा संचार सूचनाबद्ध तल से शिखर की ओर होता है अर्थात् ''च'' से ''ड़'' को, ''ड़'' से ''घ'' को और इसी प्रकार शिखर तक। यही बात इस परामिड त्रिभुज के दूसरी ओर भी लागू होती है अर्थात् ''क''से ''त'' तक। यदि ''च'' को आदेश देना चाहता है तो उस आदेश को ''ख'', ''ग '' ''घ'' और ''ड़'' से होकर जाना पड़ेगा और यदि ''च'' को ''त'' से संपर्क स्थापित करना है तो उसे ''ड़'', ''घ'', ''ग'', ''ख'' और ''क'' तक जाना होगा और फिर ''क'' से नीचे के स्तरों से होते हुए एक–एक स्तर कर ''त'' तक पहुंचना होगा। इस चित्र में ''ख'' ''क'', ''त'' से ''च'' तक अथवा सत्ता की उस श्रृंखला का प्रतिनिधित्व करते हैं जो पूरे संगठन को एक सूत्र में पिरो कर रखती हैं। ''क'' से ''च'' तक आदेशों का एक–एक सीढी उतरते हुए पहुंचने तथा संपर्क का ''च'' से ''क'' तक एक–एक सीढ़ी कर चढ़ते हुए पहुंचने को ''उचित माध्यम से'' संपर्क कहते हैं।

इस सिद्धांत को निम्नलिखित उदाहरण से भी समझाया जा सकता है :

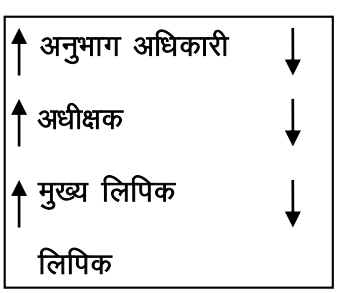

यदि अनुभाग अधिकारी लिपिक (क्लर्क) को आदेश देना चाहता है तो उस आदेश को पहले अधीक्षक और मुख्य लिपिक (हैड क्लर्क) से हो कर जाना होगा तभी वह लिपिक के पास पहुंचेगा। इस प्रकार लिपिक से कोई प्रस्ताव अनुभाग अधिकारी तक तभी पहुंचेगा जब वह पहले मुख्य लिपिक और फिर अधीक्षक से हो कर गुजरा हो।

6.5 स्तर लांघना

व्यावहारिक रूप से देरी से बचने के लिए ऐसा आसान रास्ता खोज लिया जाता है जिससे सोपानक्रम के मूल सिद्धांतों की भी अवहेलना नही होती। ऐसा करने के दो रास्ते हो सकते है। हेनरी फैयोल ने सुझाव दिया है कि सोपानक्रम में सत्ता अथवा अधिकारों की औपचारिक श्रृंखला के उपर पर एक 'सेतु' स्थापित किया जा सकता है ताकि किसी विभाग के अधीनस्थ अधिकारी अन्य विभागों के अपने समान्तर अधिकारियों के साथ सीधा संपर्क स्थापित कर सकें। ऊपर के चित्र में ''F'' तथा ''त'' ''उचित माध्यम से'' सिद्धांत का अनुसरण किए बिना एक दूसरे के साथ सीधे संपर्क स्थापित कर सकते हैं। यह संपर्क बिदुओं से दर्शाया गया है, लेकिन प्रक्रिया के विरूद्ध आसान रास्ता अपनाने से पहले उन्हें इसके लिए अपने अन्य वरिष्ठ अधिकारियों की आज्ञा लेनी होगी। अथवा कार्य शीघ्रता से निपटाने के उद्देश्य से वे अपने से वरिष्ठों की अनुमति लिए बिना भी एक दूसरे से संपर्क स्थापित कर सकते हैं। लेकिन उनके बीच क्या हुआ इसकी पूरी जानकारी उन्हें अपने वरिष्ठ अधिकारियों को अवश्य देनी चाहिए।

अधिकारियों के बीच सीधे संपर्क स्थापित करने तथा कार्य की गति में तेजी लाने के लिए बीच के एक या अधिक स्तरों को लांघा जा सकता है। इसे ''स्तर लांघना'' कहते हैं। ''क'' सीधे ''ग'' से संपर्क स्थापित कर सकता है। यदि''ग'' ''ख'' को यह बता दें कि उसके और ''क'' के बीच क्या विचार–विमर्श हुआ। कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार ने ''फाइल लांघना परीक्षण'' नाम से एक योजना शुरू की थी जिसके अंतर्गत सोपानक्रम के मध्यवर्ती स्तरों को लांघ कर फाइलें सीधे निर्णय लेने वाले अधिकारी तक पहुंचाने की व्यवस्था थी।

अतः प्रत्येक स्तर पर वरिष्ठ और अधीनस्थों के बीच समुचित आपसी विश्वास और वफादारी से सोपानक्रम, संगठन व्यवस्था में होने वाली देरी को भले ही पूरी तरह से समाप्त न किया जा सके पर उसमें काफी कमी अवश्य लाई जा सकती है। ऊपर जिन दो आसान रास्तों की चर्चा की गई है वे दोनों ही देरी को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

उर्विक ने ठीक ही कहा है,''प्रत्येक संगठन में सीढ़ी नुमा श्रृंखला वैसे ही आवश्यक है जैसे कि हर घर में अपना निकास किन्तु इस कड़ी में संचार का एकमात्र साधन बनाना वैसे ही अनावश्यक है जैसे कि घर के निकास में अपना समय बिताना।''

6.6 लाभ

संगठन में सोपानक्रम सिद्धांत के प्रयोग से होने वाले कुछ लाभ निम्नलिखित हैः

1. प्रत्येक बडे संगठन में उद्देश्य की एकता होनी चाहिए, जिसे केवल सोपानक्रम व्यवस्था से ही प्राप्त किया जा सकता।
2. सोपानक्रम, संगठन की विभिन्न इकाइयों को आपस में जोड़ कर एक संयुक्त ढॉचे की रचना करता है। एम0पी0 शर्मा के अनुसार, ''यह संगठनात्मक समन्वय की ओर एकजुटता का माध्यम है। यह संगठन उनके ढांचे से उसी तरह संबंधित है। जिस प्रकार सीमेंट किसी भवन के ढांचे से।''
3. यह संगठन में ऊपर और नीचे दोनों और संपर्क का माध्यम उपलब्ध कराता है। इससे प्रत्येक कार्मिक को यह स्पष्ट हो जाता हैकि उसका संबन्ध किससे है।
4. इससे गठन के प्रत्येक स्तर और पद पर उत्तरदायित्व निर्धारित करने में सुविधा रहती है। प्रत्येक कर्मचारी को संगठन में अपनी स्थिति और उत्तरदायित्व का ज्ञान होता है तथा यह भी मालूम होता है कि वह किसके प्रति उत्तरदायी है।
5. सोपानक्रम सिद्धांत के परिणामस्वरूप स्थापित ''उचित माध्यम से'' व्यवस्था से प्रक्रिया का कड़ाई से पालन किया जाता है जिससे आसान रास्तों का प्रयोग या मध्यवर्ती स्तरों को अनदेखा किया जाना संभव नही हो पाता।
6. सोपानक्रम के फलस्वरूप उच्चतम स्तर पर काम का बोझ हल्का हो जाता है तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया का विकेन्द्रीयकरण हो जाता है। इससे उच्च कार्यकारी स्तर से नीचे कई और अधीनस्थ स्तर भी स्थापित हो जाते हैं। प्रत्येक अधीनस्थ स्तर स्वयं को सौंपे गए निर्दिष्ट मामलों में निर्णय लेने का अधिकारी हो जाता है। संगठन का प्रत्येक कर्मचारी निर्णय लेने और अपने अधीनस्थों के मार्ग निर्देशन के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। साथ ही साथ इससे सर्वोच कार्यकारी के काम का बोझ हल्का होता है तथा अधीनस्थ अधिकारियों में भी संगठन में अपने महत्व की भावना जोर पकड़ती है।
7. ''उचित माध्यम से'' नियत कड़ाई से पालन किए जाने के कारण फाइलों की गति की प्रक्रिया आसान हो जाती है और यह जानना आसान हो जाता है कि कोई फाइल विशेष इस समय कहां है।

6.7 कमियां

संगठन में सोपानक्रम के सिद्धांतों को लागू करने के कुछ नुकसान भी हैं। ये कमियां नीचे दी जा रही है।

1. सोपानक्रम पद्धति में आदेश ऊपर से नीचे की ओर चलते हैं। निचले स्तरों के कर्मचारियों या अधिकारियों से आशा की जाती है कि वे अपने से वरिष्ठ लोगों के आदर्शों का ज्यों का त्यों पालन करें। इससे निचले स्तरों पर काम के प्रति कोई चाव या फूर्ति नहीं रह पाती।
2. इससे प्रशासनिक संगठन में लचीलापन नही रह पाता जिसके कारण संगठन के लोगों में आपसी जीवंत संबन्धों का भली–भांति विकास नही हो पाता है।

3. इस पद्धति में सफलता या असफलता काफी सीमा तक संगठन के प्रमुख की इच्छा अनिच्छा पर निर्भर करती है। यदि वह संगठन मे व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर नई स्फूर्ति का संचार कर सकें तो सफलता ही सफलता है अन्यथा संगठन निश्चित रूप से असफल हो जाएगा।.
4. सोपानक्रम पर आधारित संगठन की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके कारण कार्य के निपटान में अनावश्यक देरी हो जाती है। पीछे दिए गए चित्र में हमने देखा कि ''उचित माध्यम से'' नियम को अगर कड़ाई से लागू किया जाए तो किसी सूचना को ''च'' से ''त'' तक पहुंचने से पहले उसे ''ड़'', ''घ'', ''ख'', ''क'', ''छ'', ''ज'', ''झ'', और ''ग'' से हो कर जाना पड़ेगा और फिर उसके बाद वापस भी इसी प्रकार जाएगी, ये कुल मिला कर 20 सीढ़ियाँ बन जाती हैं। इसका अर्थ हुआ कार्य में अनावश्यक विलंब। कहा जाता है कि सन् 1940 में 'पर्ल हार्बर त्रासदी'' इसलिए नही हुई क्योंकि अमरीका सेनाओं के कमांडर को जापानी सेनाओं के सर्वोच्च कमांडर को जापानी सेनाओं की गतिविधि के बारे में समय पर सूचना नहीं मिल पाई थी, बल्कि इसलिए कि उसे यह जानकारी उचित माध्यम से नही मिली थी।

6.8 व्यावहारिक उपयोग

यह पता लगाना आवश्यक है कि प्रशासन ने दैनिक कार्यों में सत्ता अथवा अधिकारों का उपयोग सोपानक्रम सिद्धान्त के अनुसार किया जाता है या नहीं। अर्ल लैटहैम जैसे कुछ आलोचकों के अनुसार यह सोचना गलत है कि वरिष्ठ अधिकारी, अधीनस्थों पर बिना सोचे–समझे अधिकार चलाते हैं। यह कहा जा सकता है कि अधीनस्थ कर्मचारी वरिष्ठ कर्मचारियों के आदेशों का पालन इसलिए करते हैं क्योकि वरिष्ठ लोग अधिक अनुभवी होने के फलस्वरूप अधिक ज्ञानी होते हैं। लेकिन यह भी सही है कि कभी–कभी अधीनस्थों के पास अधिक जानकारी होती है क्योंकि वे किसी समस्या से अपने वरिष्ठ की तुलना में कहीं अधिक गहराई से जुड़े होते हैं। ठीक इसी कारण से अधीनस्थों के निर्णयों को उनके वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा स्वीकार कर लिया जाएगा।

यह बात भी समझी जानी चाहिए कि कोई भी संगठन केवल सोपानक्रम के सिद्धांत पर ही नही चलता है। प्रत्येक संगठन में औपचारिक संबंध भी होते हैं। नीग्रो के अनुसार किसी भी संगठन का केवल वही ढांचा और औपचारिक संबंध नही होते जो उसके संगठनात्मक चार्टो और नियम पुस्तिकाओं में लिखे होते हैं। संगठन तो वास्तव में एक सामाजिक व्यवस्था भी है। जिसमें उसके सदस्य ऐसा व्यवहार भी कर सकते हैं जो अधिकारी से अलग हो। इसे अनौपचारिक संगठन कहते हैं, और अगर किसी एंजेसी की कार्यप्रणाली को सही प्रकार से समझना है तो अनौपचारिक संगठन की भूमिका को समझना अत्यावश्यक हो जाता है।

6.9 सारांश

सोपानक्रम को संगठन के सिद्धात के रूप में ही मान्यता प्राप्त है। इस सिद्धांत में वरिष्ठ और अधीनस्थों के बीच व्यवस्थित संबंधों को बल दिया जाता है। ''उचित माध्यम से'' नियम सोपानक्रम का केंद्र बिन्दु है। इस पद्धति के अंतर्गत संगठन का आकर पिरामिड (त्रिभुज) की तरह होता है जिसके शिखर पर सर्वोच्च अधिकारी तथा आधार पर कर्मचारी होते हैं और इन दोनों छोरो के बीच एक के बाद एक कई स्तर होते हैं जो आड़े भी हैं और खड़े भी। अर्थात यह सत्ता की एक सीढी है जिसमे कई पद हैं। आदेश और सूचनाएँ एक बार में एक सीढ़ी से ही नीचे या ऊपर आ–जा सकते हैं। किसी भी प्रकार के उल्लंघन से अव्यवस्था और अविश्वास फैल जाएगा। संगठन के एक सिद्धांत के रूप में सोपानक्रम ऊपर और नीचे के स्तरों के लिए संपर्क के माध्यम के रूप में कार्य करता है, प्रक्रिया का पालन सुनिश्चित करता है, निर्णय लेने के प्रक्रिया का विकेंद्रीकरण करता है तथा संगठन के प्रमुख के कार्य के बोझ को हल्का करता है। लेकिन देरी इस प्रणाली की सबसे बडी कमी है। इसके लिए दो आसान रास्तों का पता लगाया गया है, वे हैं अत्यावश्यक मामलों में अधिकारों अथवा ''सत्ता की वास्तविक श्रृंखला के उस पार सेतु स्थापित करना'' तथा "लांघना'' लेकिन सोपानक्रम से होने वाले लाभ उसमें निहित कमियों से कही अधिक हैं। कुल मिलाकर संगठन केवल औपचारिक संबंधो पर आधारित हो कर नही चलते हैं। वास्तव में प्रत्येक संगठन में अनौपचारिक संबंध होते हैं। वरिष्ठ और अधीनस्थ कर्मचारी अपनेपन तथा बंधुत्व के सद्भावपूर्ण वातावरण में मिल कर काम करते हैं क्योंकि उनके बीच अनौपचारिक संबन्ध भी होते हैं, केवल औपचारिक संबंधों से ही यह संभव नही है। सोपानक्रम किसी संगठन की स्थापना के उद्देश्यों की प्राप्ति करने तथा सर्वसम्मति पैदा करने की एक अत्यंत लाभदायी पद्धति है जो संगठन में स्वाभाविक रूप से ही पाई जाती है।

6.10 प्रमुख शब्दावली

सोपानक्रम : सीढ़ी; सीढ़ी में पदों का क्रम

अधीनस्थ : किसी के अन्तर्गत कार्य करने वाला; जिस पर अपने से वरिष्ठ अधिकारी या कर्मचारी का आदेश चलता है।

सम्पर्क : जानकारी अथवा सूचना का प्रवाह।

6.11 बोध प्रश्न

1. (1) संगठन के सिद्धांत के रूप में सोपानक्रम का महत्व समझाइए।
   (2) सोपानक्रम का क्या अर्थ है?.

2. (1) सोपानक्रम की मूल विशेषताएं क्या हैं?
   (2) स्तर लांघना क्या है?

3. (1) सोपानक्रम के क्या लाभ हैं?

(2) सोपानक्रम सिद्धान्त में क्या कमियां हैं?

(3) सोपानक्रम की कमियों से निपटने के लिए क्या आप कोई उपाय सुझा सकते हैं?

6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखें भाग 21.2 और 21.3
   (2) देखे भाग 21.2

2. (1) देखे भाग 21.4
   (2) देखे भाग 21.5
   (3) देखे भाग 21.7
   (4) देखे भाग 21.5, 21.8, और 22.9

3. (1) देखे भाग 21.6
   (2) देखे भाग 21.7
   (3) देखे भाग 21.8

6.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Avasthi, A. and Maheshwari, S.R., 2014, Public Administration (rev. ed); Lakshmi Narain Agarwal; Agra.

Bhattacharya, Mohit, 2010, New Horizon of Public Administration, New Delhi ; Jawahar Publications

Dimock, Marshal Edward and Dimock, Gladys Oden, 1975, Public Administration (ed). Oxford & IBH Publishing Co: New Delhi.

Henry, Nicholas, Public Administration and Public Affairs, 13th Edition, New Delhi : PHI Learning, 2015

इकाई– 07
नियंत्रण का क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 अर्थ
7.3 नियंत्रण के क्षेत्र का महत्व
7.4 नियंत्रण के क्षेत्र और सोपानक्रम के बीच संबंध
7.5 नियंत्रण क्षेत्र को प्रभावित करने वाले कारण
7.6 ग्रेकुनास का फार्मूला
7.7 संशोधन के अंतर्गत नियंत्रण का क्षेत्र
7.8 सारांश
7.9 प्रमुख शब्दावली
7.10 बोध प्रश्न
7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

इकाई का उद्देश्य

- नियंत्रण के क्षेत्र के अर्थ और महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।
- इस बात पर विचार कर सकेंगे कि व्यावहारिक रूप में यह संकल्पना कैसे कार्य करती है; और
- उन कारणों को बता सकेंगे जो नियंत्रण के क्षेत्र को प्रभावित करते हैं।

7.1 प्रस्तावना

संगठन की सोपानक्रम प्रणाली में एक दूसरे के ऊपर सीढ़ियां या स्तर होते हैं। प्रश्न यह है कि संगठन में लगातार कितने स्तर या सीढ़ियां हो सकती हैं? किसी सोपानक्रम में प्रत्येक वरिष्ठ व्यक्ति को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के काम की देख–रेख करनी होती है। ऊपर जो प्रश्न किया गया है, वह इस बात पर निर्भर है कि वरिष्ठ अधिकारी निचले स्तर के कितने कर्मचारियों के कार्यो की कुशलतापूर्वक देख–रेख कर सकता है। दूसरे शब्दों में एक सामान्य व्यक्ति के ध्यान का क्षेत्र कितना है? सार्वजनिक प्रशासन में एक वरिष्ठ अधिकारी के नियंत्रण का क्षेत्र कितना होता है उदाहरण के लिए कितने अधीनस्थ कर्मचारियों की वह कुशलतापूर्वक देख–रेख कर सकता है?

सोपानक्रम का मतलब नीचे के लोगों पर, ऊपर के लोगों द्वारा नियंत्रण है। यह एक वरिष्ठ अधिकारी की अधीनता वाले अनेक क्रमिक सोपानों या स्तरों वाला श्रेणीकृत संगठन है। प्रत्येक कर्मचारी अपने वरिष्ठ अधिकारी के आदशों का पालन करता है और प्रत्येक वरिष्ठ अधिकारी द्वारा कितने अधीनस्थ कर्मचारियों की कुशलतापूर्वक एवं कारगर ढंग से देख–रेख की जा सकती है। यह एक महत्वपूर्ण सवाल है। समादेश और निर्देश केवल एक स्त्रोत से आने चाहिएं। प्रत्येक कर्मचारी के लिए केवल एक अधिकारी होना चाहिए जिसके समादेश के पालन की उससे उम्मीद की जानी चाहिए। नियंत्रण के क्षेत्र, किसी वरिष्ठ अधिकारी द्वारा देख–रेख किए जाने वाले अधीनस्थों की संख्या को सीमित बनाते हैं तो समादेशों की एकता से प्रत्येक कर्मचारी के लिए वरिष्ठ अधिकारियों की संख्या सीमित करके एक की जाती है ताकि गड़बड़ी और गलतफहमियों को टाला जा सके।

7.2 अर्थ

''स्पैन' का शब्दिक अर्थ है जो किसी व्यक्ति के अंगूठे और कनिष्ट ऊँगली को फैलाए जाने से बनती है। जबकि नियंत्रण शब्द का मतलब आदेश–निर्देश या नियंत्रित करने वाले अधिकार या सत्ता से है। लोक प्रशासन में नियंत्रण के क्षेत्र का मतलब उन अधीनस्थ कर्मचारियों से है जिन पर एक अधिकारी कारगर ढंग से नियंत्रण रख सकता है। इसका मतलब यह भी है कि कोई अधिकारी कितने अधीनस्थों को निर्देश दे सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि नियंत्रण के क्षेत्र का मतलब मातहतों की उस संख्या या कार्य की उस इकाई से है जिन्हे एक प्रशासक निजी रूप से निर्देशित कर सकता है। डिमॉक के शब्दों में किसी उद्यम में उसके प्रमुख अधिकारी और उसके मुख्य और उसके सह–अधिकारियों के बीच सीधे और नियमित संचार सम्पर्क को "नियंत्रण का क्षेत्र" कहते हैं। मनोविज्ञान में वी0 ए0 ग्रेकुनासस ने इस संकल्पना को 'ध्यान के क्षेत्र'से जोड़ा है। इसका अर्थ है पर्यवेक्षण और जिम्मेदारी का विस्तार।

नियंत्रण का क्षेत्र ध्यान के क्षेत्र पर निर्भर है। हममें से कोई भी व्यक्ति एक साथ एक खास संख्या से अधिक वस्तुओं की ओर ध्यान नहीं दे सकता। मनोवैज्ञानिकों ने ध्यान के क्षेत्र में कई प्रयोग किए हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सामान्य तौर पर एक व्यक्ति एक समय में एक खास संख्या से अधिक चीजों की ओर ध्यान नही दे सकता, चूंकि लोक प्रशासन में नियंत्रण का क्षेत्र मनोविज्ञान के "ध्यान के क्षेत्र" से जुड़ा है, इसलिए यह मानकर चला जाता है कि कोई वरिष्ट अधिकारी जितने व्यक्तियों को कारगर ढंग से नियंत्रित कर सकता है, उनकी संख्या की एक सीमा होती है। यदि अधीनस्थों की संख्या उस सीमा से अधिक हुई तो यह संगठन के लिए नुकसानदेह होगा।

शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से मानव क्षमता की एक सीमा होती है। इसलिए यह व्यापक धारणा है कि कोई वरिष्ठ अधिकारी कितना भी सक्षम क्यों न हो, वह असीमित संख्या में अधीनस्थों का निरीक्षण नही कर सकता है। नियंत्रण के क्षेत्र

की वास्तविक सीमा क्या है, इस बारे में लोक प्रशासन के रचनाकारों के विचार समान नही हैं। सर इयान हेमिल्टन ने यह सीमा तीन से चार की नियत की है। लार्ड हाल्डेन और ग्राहम वॉलस की धारणा है कि एक वरिष्ठ अधिकारी दस से बारह की देख–रेख कर सकता है। उर्विक का कहना है कि उच्च और निचले स्तर के नियंत्रण के क्षेत्र के बीच अंतर होता है। उनके अनुसार उच्च स्तर पर वरिष्ठ अधिकारी छह या सात से अधिक अधिनस्थों की देख–रेख नही कर सकता जबकि नीचे के स्तर पर जहाँ का काम सरल और नियमित ढंग का होता है, आठ से बारह अधीनस्थों के काम का निरीक्षण कर सकता है। 1937 में वॉलास द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार किसी मुख्य अधिकारी के नियंत्रण का क्षेत्र देश के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है। जापान में एक मुख्य अधिकारी के अधीन 13 विभाग होते है । कनाडा, जर्मनी और इटली में 14, फ्रांस में 17, रूस 19 या 20, इंग्लैड में 25 और अमेरीका में लगभग 60 विभाग होते हैं। यद्यपि ये संख्या समान नही है लेकिन कहीं भी प्रशासन अस्त–व्यस्त नही हुआ।

कुछ लेखकों के अनुसार अमेरीका के सरकारी संगठनों में नियंत्रण का क्षेत्र बड़ा होने के निम्नलिखित कारण हैं:

1. वहां अनेक विभागों मे इस प्रकार की प्रवृति पाई जाती है क्योंकि 'इम्पायर बिल्डर' किस्त के विभाग के प्रधान यह चाहते हैं कि वे केवल मुख्य अधिकारी या संचालन मंडल के प्रति ही जवाबदेह है।
2. प्रत्येक दबाव समूह एक स्वतंत्र विभाग में अपने ढंग की प्रशसनिक गतिविधियां कायम करना चाहता है।
3. हर कार्यकारी अधिकारी सोपानक्रम की सीढियों से गुजरे बगैर सत्ता तक पहुंचना चाहता है। 1949 में हूवर आयोग ने अमरीकी राष्ट्रपति द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले नियंत्रण के विशाल क्षेत्र की आलोचना की थी। आयोग ने उन 65 विभागों या एजेंसियों को स्वतंत्र विनियमित आयोगों को छोडकर का उल्लेख किया था जो राष्ट्रपति के नियंत्रण क्षेत्र में आते है।

लेकिन सभी लेखकों का आमतौर पर इस बारे में यह मत है कि क्षेत्र जितना छोटा होगा, सम्पर्क उतना ही ज्यादा होगा और परिणाम स्वरूप नियंत्रण अधिक कारगर होगा। दूसरी ओर सेक्लर हड्सन का कहना है कि ''अत्यंत सीमित नियंत्रण के क्षेत्र में खतरे निहित हैं। उदाहरण के लिए कुछ प्रतिवेदनों के ब्यौरेवार निरीक्षण का परिणाम यह होगा कि अधीनस्थों को प्रेरित नही किया जा सकेगा या उनकी क्षमता का पूरा उपयोग नही हो पायेगा।" यह भी संभव है कि नियंत्रण का क्षेत्र जितना छोटा होगा, समादेशों की जकड़न उतनी ही अधिक होगी। इसलिए विभिन्न लेखक यह मानते हैं नियंत्रण का क्षेत्र तीन से 15 के बीच होना चाहिए। यद्यपि लेखकों ने यह पता लगाने की कोशिश की है कि वरिष्ठ अधिकारी द्वारा देख–रेख के लिए व्यक्तियों की आदर्श संख्या क्या हो सकती है।

7.3 नियंत्रण के क्षेत्र का महत्व

नियंत्रण के क्षेत्र की समस्या सोपानक्रम सिद्धान्तों का स्वाभाविक विस्तार है। जैसा कि हमने पहले देखा है, सोपानक्रम वाले संगठनों में एक के बाद एक कई स्तर और सीढियां होती हैं। प्रत्येक स्तर की जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति पर होती है। किसी संगठन में कितने स्तर होने चाहिए इस बात पर निर्भर करता है कि उस संगठन में निचले स्तर पर कर्मचारी कितने हैं जिनका निरीक्षण किया जाना है और प्रत्येक वरिष्ठ अधिकारी कितने अधीनस्थों का कारगर ढंग से निरीक्षण कर सकता है। इससे पता चलता है कि सोपानाक्रम और नियंत्रण के क्षेत्र में निकट का संबंध है। इसलिए किसी संगठन में एक वरिष्ठ अधिकारी के नियंत्रण के क्षेत्र को ध्यान मे रखकर सोपानक्रम में स्तरो या सीढियों का निर्धारण किया जाना चाहिए। यदि किसी वरिष्ठ अधिकारी से उसकी क्षमता से अधिक संख्या में कर्मचारियों के नियंत्रण की उम्मीद की जाएगी तो उससे कार्य में विलंब होगा और अकुशलता बढ़ेगी। किसी संगठन के कार्य की गुणवत्ता उसके कारगर नियंत्रण और निरीक्षण पर निर्भर करती है। कोई भी संगठन इसकी उपेक्षा नही कर सकता। यदि क्षेत्र व्यक्ति की क्षमता से अधिक होगा तो संगठन अस्त–व्यस्त हो जाएगा।

7.4 नियंत्रण के क्षेत्र और सोपानक्रम के बीच संबंध

किसी संगठन के स्तरों का निर्धारण नियंत्रण के क्षेत्र को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए। इसे समझने के लिए मान लीजिए एक राज्य में पुलिस जवानों की संख्या 20,000 है और एक वरिष्ठ अधिकारी 5 पुलिस कर्मियों का कुशलतापूर्वक निरीक्षण कर सकता है। इस मामले में 7 स्तर या सीढ़ियों की जरूरत होगी जैसा कि नीचे दिखाया गया है:

1 पुलिस महानिरीक्षक
6 उप–पुलिस महानिरीक्षक
32 पुलिस अधीक्षक
160 उप–पुलिस अधीक्षक
800 पुलिस निरीक्षक
4,000 उप–पुलिस निरीक्षक
20,000 पुलिस कांस्टेबल (4,000 पुलिस थानों मे 5–5 के समूह में, प्रत्येक थाना एक उप–निरीक्षक के अधीन)

यहां 20,000 सिपाहियों को 5 से विभाजित करने पर अगले स्तर के लिए उप–निरीक्षकों की व्यवथा होगी। बाद में 4,000 निरीक्षकों को 5 से विभाजित करने पर 800 निरीक्षकों की जरूरत पड़ेगी जिनके लिए देख–रेख करने वाले 160 अधिकारियों अर्थात उप–पुलिस अधीक्षकों की आवश्यकता होगी। इन्हें उपरोक्त आधार पर 32 पुलिस अधीक्षकों के अधीन नियुक्त किया जाएगा और ये 32 पुलिस अधीक्षक 6 उप पुलिस महानिरीक्षकों के अधीन होंगे जो खुद एक पुलिस महानिरीक्षक के अधीन होंगे। सीधे

तौर पर इस अधिकारी के पांच की बजाए 6 अधीनस्थ होगें जो कि नियत मानक से एक अधिक है।

यदि पुलिस सिपाहियों की संख्या बढ़कर 30,000 हो जाए और किसी अधिकारी द्वारा कारगर ढंग से देख– रेख करने के लिए अधीनस्थों की संख्या 5 ही रहे तो स्तरों की संख्या 8 हो जाएगी जैसा की नीचे दिखाया गया है:

1 महानिरीक्षक
2 उप–महानिरीक्षक
10 सहायक–महानिरीक्षक
48 पुलिस अधीक्षक
240 उप–पुलिस अधीक्षक
1200 निरीक्षक
6000 उप–निरीक्षक
30,000 सिपाही

यहां हमने देखा कि सहायक महानिरीक्षक के एक नए स्तर का सृजन किया गया है। इसका कारण यह है कि नीचे के स्तर पर मातहत कर्मचारियों की संख्या अधिक हो गई है प्रत्येक व्यक्ति 5 की बजाए 6 अधीनस्थों की देख–रेख कर सके इसलिए इसके लिए फिर 7 स्तरों की जरूरत होगी। इसी प्रकार यदि कर्मचारियों की संख्या 1,000 है और नियंत्रण का क्षेत्र 10 है तो चार स्तरों की जरूरत होगी। जैसा कि नीचे दिखाया गया है:

मुख्य अधिकारी
10 पर्यवेक्षक
100 पर्यवेक्षक
1000 कर्मचारी

इसी प्रकार यदि उसी संगठन में नियंत्रण के क्षेत्र 5 है तो संगठन में नीचे दिए गए ढंग से 6 स्तर होगे:

2 पर्यवेक्षक
8 पर्यवेक्षक
40 पर्यवेक्षक
200 पर्यवेक्षक
1000 कर्मचारी

सोपानक्रम के सिद्धांत की तरह नियंत्रण का क्षेत्र भी संगठन के व्यापक सिद्धांत हैं। एक व्यक्ति के अंतर्गत अधीनस्थों की संख्या कितनी होगी इस पर प्रश्न चिन्ह लगाया जा सकता है, लेकिन सिद्धांत पर नही ।

इस बारे में दो प्रकार के विचार हैं कि संगठन में कितने स्तर होने चाहिए। यदि स्तरों की संख्या अधिक होगी तो नियंत्रण का क्षेत्र कम होगाऔर निरीक्षण ज्यादा होगा लेकिन पर्यवेक्षकों की संख्या बढ़ेगी और साथ ही खर्च भी बढ़ जाएगा। इससे

मुख्य अधिकारी ओर कार्यस्थल की दूरी भी बढ़ जाती है, चूंकि संदेशों को कई स्तरों से गुजरना पड़ेगा इसलिए उनके स्वरूप और तथ्य में परिवर्तन हो सकता है, जिससे निर्णय की प्रक्रिया कठिन बन जाएगी।

दूसरी ओर यदि किसी संगठन में स्तरों की संख्या कम होगी तो काम तेजी से हो सकेगा। पर्यवेक्षकों की संख्या भी कम होगी और खर्च में भी बचत होगी तथा अधिक अधिकार सौंपे जा सकेंगे। कर्मचारियों का मनोबल भी ऊंचा उठेगा और वे अधिक दिलचस्पी से काम कर सकेंगे। वे उत्तरदायित्व वहन करना भी सीख जाएंगे, लेकिन समन्वय करना समस्या बन जाएगा। इसलिए अनेक संगठनों में नियंत्रण का क्षेत्र कम से कम रखा जाता है और स्तरों की संख्या बढ़ा दी जाती है।

7.5 वी0 ए0 नियंत्रण क्षेत्र को प्रभावित करने वाले कारण

प्रशासनिक सिद्धांत या व्यवहार द्वारा नियंत्रण के क्षेत्र की आदर्श संख्या निश्चित करना संभव नही है। लेकिन इस समस्या के बारे में आम सहमति के कुछ ऐसे बिन्दु हैं जिन्हें ध्यान में रखना होगा। पहली बात यह है कि इस बारें मे सहमति है कि निरीक्षण के प्रत्येक स्तर का अपना निंयत्रण का क्षेत्र होता है और इसके उल्लंघन से काम अस्त–व्यस्त हो जाने की आशंका रहती है। इस संदर्भ में एल0 उर्विक ने वी0ए0 ग्रेकनासस का उदाहरण देते हुए कहा है कि यदि वरिष्ठ अधिकारी अपने पाँच अधीनस्थों में एक को और जोड़कर उनकी संख्या 6 कर लेता है उससे मात्र 23 प्रतिशत अतिरिक्त सहायता मिलती है, मगर उसके निरीक्षण का काम बढ़कर सौ प्रतिशत हो सकता है। इसका कारण यह है कि सिर्फ अलग–अलग अधीनस्थों का ही नहीं बल्कि उनके आपसी संबधों के विभिन्न संयोगों का भी निरीक्षण करना होता है। अतः नियंत्रण का क्षेत्र हर जगह मौजूद रहता है और इनकी सीमा के उल्लंघन से सकार्य अस्त–व्यस्त होने की आशंका रहती है। आप इस बारे मे जानना चाहते होंगे कि कुछ समय पहले भारत में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने कालेजों की कक्षाओं में नियंत्रण और ध्यान के क्षेत्र के बारे में अध्ययन किया था। उसने निष्कर्ष निकाला था कि एक कक्षा में कई अध्यापक केवल दस से बारह छात्रों को ही सही ढंग से शिक्षा दे सकता है, इससे अधिक नहीं।

दूसरे यह स्वीकार किया गया है कि नियंत्रण का क्षेत्र कुछ कारणों पर निर्भर करता है। यह भिन्न–भिन्न कारणों पर अलग–अलग होती है। i) कार्यकलाप ii) समय iii) स्थान iv) पर्यवेक्षक और अधीनस्थ का व्यक्तित्व v) सत्ता का प्रतिनियोजन vi) पर्यवेक्षण की तकनीक। हम इनमें से प्रत्येक कारण पर विचार करेगें।

कार्यकलाप का मतलब कार्य के उस स्वरूप से है जिसकी देख–रेख की जानी है। जहां कार्य रोजमर्रा के दोहराए जाने वाले, नापे जा सकने वाले, या समान ढंग के होते हैं वहां भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्यो की अपेक्षा नियंत्रण का क्षेत्र अधिक होता है। उदाहरण के लिए काम की मात्रा ज्ञात होने के कारण ज्यादा टाइपिस्टों की देख–रेख

करना सरल होगा। लेकिन डॉक्टरों इंजीनियरों और टाइपिस्टों आदि का निरीक्षण एक साथ करना संभव नही होगा।

समय का मतलब कार्य के उस स्वरुप से है जिसकी देख–रेख की जानी है। जहां कार्य रोजमर्रा के दोहराए जाने वाले, नापे जा सकने वाले, या समान ढंग के होते हैं, वहां भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्यों की अपेक्षा नियंत्रण का क्षेत्र अधिक होता है। उदाहरण के लिए काम की मात्रा ज्ञात होने के कारण ज्यादा से ज्यादा टाइपिस्टों की देख–रेख करना सरल होगा, लेकिन डॉक्टरों, इंजीनियरों और टाइपिस्टों आदि के काम का एक साथ निरीक्षण करना संभव नहीं होगा।

स्थान का मतलब कार्य स्थल से है। यदि अधीनस्थ और अधिकारी एक ही छत के नीचे होंगे तो देख–देख आसान और जल्दी होगी। लेकिन यदि वे अलग–अलग स्थानों पर काम करते हैं तो देख–रेख मुश्किल होगी क्योंकि व्यक्तिगत ध्यान नहीं दिया जा सकेगा। इस संदर्भ में उर्विक ने 'सीधी देख–रेख' और अधिकारी की 'सुलभता' के बीच जो भेद किया है उस पर ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा। इसका मतलब यह हुआ कि एक अधिकारी सीधे तौर पर केवल सीमित संख्या में ही सदस्यों की देख–रेख कर सकता है जबकि बड़ी संख्या में अधीनस्थों को अपने पास पहुंचने की व्यवस्था शुरु करके संगठन में लचीलापन ला सकता है।

'मानव व्यवहार की सभी विशेषताओं का योग' ही व्यक्तित्व है। इसमें व्यक्ति के शारीरिक और बौद्धिक गुण शामिल होते हैं, यदि पर्यवेक्षक सक्षम, मेहनती और चतुर है तो वह काफी संख्या में अपने अधीनस्थों की देख–रेख कर सकते हैं। कुछ ऐसे भी पर्यवेक्षक हैं जो सभी काम अपने पास रखते हैं और उन्हें किसी को सौंपते नहीं। इस तरह के पर्यवेक्षक ज्यादा संख्या में अधीनस्थों की देख–रेख नहीं कर सकते।

सत्ता का प्रतिनियोजन भी नियंत्रण के क्षेत्र पर असर डालता है। कुछ पर्यवेक्षक अपने पास कुछ ही काम रखते हैं और बाकी काम अपने अधीनस्थों को सौंप देते हैं ऐसा करके वे काफी संख्या में अधीनस्थों की देख–रेख कर सकते हैं। कुछ ऐसे भी पर्यवेक्षक हैं जो सभी काम अपने पास रखते हैं और उन्हें किसी को सौंपते नहीं। इस तरह के पर्यवेक्षक ज्यादा संख्या में अधीनस्थों की देख–रेख नहीं कर सकते।

पर्यवेक्षक द्वारा देख–रेख के लिए जो तकनीक अपनाई जाती है, वह भी नियंत्रण के क्षेत्र पर असर डालती है। यदि देख–रेख की तकनीक मानकीकृत है तो नियंत्रण का क्षेत्र ज्यादा होगा क्योंकि अधीनस्थ बहुत निकट से देख–रेख को पसंद नहीं करते, जहां पर्यवेक्षक की सीधी देख–रेख की जरुरत होती है, वहां नियंत्रण का क्षेत्र कम होता है।

7.6 ग्रेकुनास का फार्मूला

यदि देख–रेख के लिए निर्धारित संख्या से अधिक अधीनस्थों को शामिल कर लिया जाए तो ऐसी स्थिति में नियंत्रण की जटिलता को समझने के लिए वी. ए. ग्रेकुनास ने एक गणितीय फार्मूला प्रस्तुत किया है। प्रत्येक अधिकारी अधीनस्थों के नियंत्रण की

जिम्मेदारी के बोझ को अपने और अपने अधीनस्थों के बीच सम्बन्ध को केवल एकल सम्बन्धों के आधार पर नहीं आंका जा सकता। उसके अनुसार इसमें गुणात्मक सम्बन्ध भी होता है, जो गणितीय अनुपात को बढ़ा देता है। सीधा एकल सम्बन्ध हमेशा अधीनस्थों की संख्या के अनुपात में बढ़ता है। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति बढ़ने से समूह में केवल एक एकल सम्बन्ध बनता है। लेकिन ग्रेकुनास के अनुसार सीधे समूह और गुणात्मक सम्बन्ध भी होते हैं जो अधीनस्थों की संख्या में वृद्धि की तुलना में कहीं अधिक तेजी से बढ़ते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि प्रत्येक व्यक्ति जुड़ने से अनेक गुणात्मक एवं सीधे सामूहिक सम्बन्ध उत्पन्न होते हैं क्योंकि समूह में व्यक्ति पहले से ही मौजूद होते हैं। इसलिए सम्बन्धों की संख्या घातीय अनुपात में बढ़ती है। अपने अध्ययन के आधार पर ग्रेकुनास ने सम्बन्धों की संख्या की गणना के लिए एक फार्मूला विकसित किया है ताकि अधिकारी नियंत्रण के क्षेत्र की जटिलता की जांच– पड़ताल कर सकें।
यह फार्मूला नीचे की तालिका में दिया गया है।

तालिका

सीधे और क्रास संबंध

क्रम सं	**संबंध**	**फार्मूला**
1	सीधा एकल	–ए = एन
2	क्रॉस	–बी = एन (एन–1)
3	सीधा समूह	–सी = एन (2एन–1)

टिप्पणी : 'एन' का मतलब अधीनस्थों की संख्या से है।

उपरोक्त फार्मूले के अनुसार यदि किसी संगठन में तीन अधीनस्थ हैं तो, वहां एकल संबन्ध तीन, गुणात्मक संबन्ध और सीधे समूह संबन्ध होंगे। यदि इसमें एक और सदस्य जुड़ जाए तो सीधे एकल संबंध में कोई परिवर्तन नहीं होगा, वह चार ही रहेंगे लेकिन गुणात्मक संबंध 12 हो जाएंगे और सीधे समूह संबंधो की संख्या घातीय अनुपात मे बढ़कर 28 हो जाएगी। इससे स्पष्ट होता है कि अधिकारी नियंत्रण के अधीन समूह में प्रत्येक एक व्यक्ति के जुड़ने से सीधे समूह संबंधों की संख्या इस हद तक बढ़ जाएगी की सीधा नियंत्रण मुश्किल हो जाएगा और कुछ मामलों में तो असंभव हो जाएगा। ग्रेकुनास का यह भी कहना है कि चार अधीनस्थों के लिए तो प्रत्येक समूह के संयोग को समझना और याद रखना संभव नही होगा क्योंकि संबन्ध ज्यादा जटिल हो जाएंगे।

ग्रेकुनास द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत वैध हो या नहीं, उसके फार्मूले की कोई वैधता हो या नही, इतना जरूर है कि अधीनस्थों की संख्या में वृद्धि से व्यक्ति और समूहों के संबधों में उत्पन्न जटिलताओं को ग्रेकुनास ने पूरी तरह सामने ला दिया है। कोई अधिकारी कितने मातहत कर्मचारियों का नियंत्रण कर सकता है, इस बारे में विचार

करते समय ग्रेकुनास की उपरोक्त संकल्पना पर सावधानी से विचार करने की जरूरत होगी।

7.7 संशोधन के अंतर्गत नियंत्रण का क्षेत्र

नियंत्रण के क्षेत्र के समूचे विचार में हाल के वर्षो में संशोधन हुए हैं। प्रशासन में स्वचालन के उपयोग में वृद्धि, सूचना क्रांति और विशेष की बढ़ती हुई संख्या इस तरह के परिवर्तन के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार रही है। स्वचालन और मशीनीकरण प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप काम सरल ढंग से और संचार सम्पर्क तेजी से होने लगा है। समय और दूरी की समस्या विजय प्राप्त कर लेने से कागजी कार्यो में विलंब की समस्या काफी हल हो गई है। इसके अलावा सारणी बनाने ,हिसाब किताब, खरीद, छंटाई और संगणना जैसे कार्यों में मशीनों का इस्तेमाल होने लगा है। स्वचालन से, तालिका बनाने, रिकार्ड रखने, बिल बनाने और वेतन का हिसाब–किताब रखने के काम में पर्याप्त सुधार हुआ है। आज हम कंप्यूटर तथा अन्य इलेक्ट्रानिक उपकरणों के युग मे पहुंच गये हैं। ये उपकरण बडी तेजी से प्रशासन को पर्याप्त जानकारी और सही ऑकड़े उपलब्ध कराते हैं जिनके लिए आमतौर पर अधिक कर्मचारियों की जरूरत होती है। इस प्रकार नियंत्रण के क्षेत्र का दायरा पर्याप्त रूप से बढ़ जाता है और अधिकारी के लिए संख्या में अधीनस्थों की देख–रेख करना संभव हो जाता है।

7.8 सारांश

प्रशासनिक संगठन में आम निर्देश के सिद्धांत के रूप में नियंत्रण के क्षेत्र का सिद्धांत उपयोगी है। इसका मतलब यह है कि एक अधिकारी कितने मातहत कर्मचारियों पर कारगर नियंत्रण रख सकता है। यह एक वरिष्ठ अधिकारी के ध्यान के क्षेत्र से जुडा होता है। इसमें कोई संदेह नही कि वरिष्ठ द्वारा अधीनस्थों पर कारगर नियंत्रण से संगठन के कार्य की गुणवत्ता और कार्य कुशलता पर्याप्त रूप से सुधर जाती है। इसलिए व्यवहार में इसे कठोरता से लागू नही किया जा सकता। व्यक्तियों की ऐसी कोई आदर्श संख्या नियत नही है, जितने की कोई अधिकारी देख–रेख कर सकता है। कार्यकलाप, समय, स्थान, वरिष्ठ अधिकारी और अधीनस्थों के व्यक्तित्व, सत्ता के प्रत्यायोजन और देख–रेख की तकनीक जैसे कारणों से नियंत्रण के क्षेत्र मे बदलाव आता रहता है।

समन्वय का उद्देश्य प्रयास की एकता की सुविधा प्रदान करना है।

7.9 प्रमुख शब्दावली

सोपानक्रम : सीढ़ी दर सीढ़ी चलने वाली एक ऐसी व्यवस्था जिमसें वरिष्ठ कर्मचारी या व्यक्ति को अधीनस्थ कर्मचारी या व्यक्ति की देख–रेख करनी होती है।

संकलपना : एक ऐसी मानसिक धारणा, जो उस वस्तु या व्यक्ति के संदर्भ में बना ली गई है।

घातीय अनुपात : एक से दो और दो से चार के अनुपात क्रम में वृद्धि पाना।

अधीनस्थ : किसी वरिष्ठ कर्मचारी के अधीन कार्य करने वाले।

7.10 बोध प्रश्न

1. (1) नियंत्रण के क्षेत्र के अर्थ की व्याख्या कीजिए।
   (2) नियंत्रण के क्षेत्र के महत्व पर प्रकाश डालिए।

2. (1) क्या आप यह मानते हैं कि नियंत्रण के क्षेत्र का सिद्धांत सोपानक्रम का विसतार है, उनके सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिए।
   (2) नियंत्रण के क्षेत्र को प्रीाावित करने वाले कारणों की व्याख्या कीजिए।
   (3) नियंत्रण का क्षेत्र एक विशिष्ट संकल्पना है, 'स्पष्ट कीजिए।
   (4) ग्रेकुनास के फार्मूले को समझाइए।

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखें भाग 22.1 और 22.2
   (2) देखें भाग 22.3

2. (1) देखें भाग 22.4
   (2) देखें भाग 22.5
   (3) देखें भाग 22.4 और 22.5.
   (4) देखें भाग 22.6

7.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Avasthi, A. and Maheshwari, S.R., 2014, Public Administration, 30th rev. ed. Lakshmi Narain Agarwal: Agra

Bhambri, C.P. 1972, Public Administration, (Theory and Practice) 5th ed. Jain Prakash nath and Co ; Meerut.

Bhattacharya, Mohit, 1974, public Administration, The World Press Private Ltd.: Calcutta.

Dimock, M.E., and Dimock, G.O. 1975, Public Administration Oxford & IBH Publishing Co. New Delhi.

John, M. Pfiffner and Frank M. Sherwood, 1968, Administrative Organisation, Prentice- Hall of India Pvt. Ltd. : New Delhi.

इकाई–08
समादेश की एकता

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 अर्थ
8.3 महत्व
8.4 व्यवहार में समादेश की एकता
8.5 समादेश की एकता को प्रभावित करने वाले कारक
8.6 सिद्धांत के अपवाद
8.7 समादेश की एकता के पक्ष मे तर्क
8.8 समादेश की एकता के विरोध में तर्क
8.9 सारांश
8.10 प्रमुख शब्दावली
8.11 बोध प्रश्न
8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य

- समादेश की एकता के सिद्धांत के अर्थ और महत्व को बता सकेंगे।
- व्यवहार में इस सिद्धांत के लागू होने और इसके अपवादों को समझ सकेंगे।
- इस सिद्धान्त की अच्छाइयों और कमियों पर विचार कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

संगठनों का ढांचा सोपानक्रम पर आधारित होता है और अधिकारियों और मातहतों के संबंध स्पष्ट तरीकों से निर्धारित किए गए होते हैं। ऐसे संगठनों में विभिन्न श्रेणी के पदों के आधार पर काम में फर्क होता है। यह स्वयं सिद्ध ही है कि ऐसे संगठनों में मातहत अपने ऊपर के अधिकारी से आदेश प्राप्त करते हैं। समादेश की एकता सोपानक्रम की व्यवस्था की पूरक है और आदेश प्राप्त करने के इसी तरीके पर बल देती है, लेकिन आधुनिक संगठनों का ढांचा काफी जटिल हो गया है और विशिष्ट कामों के लिए विशेषज्ञों के होने के कारण सिर्फ अपने से ठीक एक पद ऊपर वाले अधिकारी से तकनीकी और सामान्य, दोनों प्रकार के आदेश ले पाना कठिन हो जाता

है, लेकिन इस बुनियादी नियम का उल्लंघन समादेश की एकता के सिद्धान्त के प्रतिकूल है ।

8.2 अर्थ

लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण समस्याओं मे से एक है– सामूहिक भावना और सहयोग से काम करावाना, ताकि संगठन के सदस्य एक दूसरे के विपरीत उद्देश्यों के लिए काम न करने लगे। समादेश की एकता का मतलब है कि संगठन में कर्मचारी केवल एक अधिकारी से आदेश प्राप्त करें। इस सिद्धांत के पक्के समर्थक हेनरी फेयोल के अनुसार इसका अर्थ है कि 'कर्मचारी को केवल अधिकारी का आदेश प्राप्त करना चाहिए।' इसी तरह पिफनर और प्रेस्थस का कहना है कि 'संगठन के किसी भी सदस्य को केवल एक और एकमात्र प्रमुख को अपने काम का विवरण देना चाहिए।' इससे कर्मचारी परस्पर विरोधी आदेशों की समस्याओं से बच जाते हैं। अगर किसी संगठन में कोई कर्मचारी एक से अधिक अधिकारियों से आदेश लेता है तो आदेशों के एक दूसरे के विपरीत हाने की संभावना रहती है। इससे कर्मचारियों के मन मे उलझन हो जाती है कि वे किसके और किस आदेश का पालन करें। परिणाम यह होता है कि कर्मचारी काम कर ही नही पाता। किसी संगठन में कर्मचारियों के सुचारू रूप से काम करने के लिए यह जरूरी है कि कर्मचारियों को यह साफ–साफ मालूम हो कि उनका काम क्या है और उन्हें क्या करना है। दोहरे या ज्यादा समादेशों से कर्मचारी अपने काम और लक्ष्यों के बारे में साफ–साफ नही जान पाता। इसलिए किसी संगठन में कर्मचारी के सुचारू रूप सें काम करने के लिये समादेश की एकता बहुत महत्वपूर्ण है।

8.3 महत्व

अगर कर्मचारी को एक से ज्यादा अधिकारियों से आदेश मिलते हैं, तो उलझन और विवाद की आशंका बनती है और उद्देश्य की स्पष्टता कम होती है। ऐसी स्थिति में कर्मचारी किसी स्पष्ट उद्देश्य के लिए काम कर पाने में परेशानी महसूस करता है। दोहरे या ज्यादा समादेश होने से कर्मचारी दुविधा में पड़ जाता है कि किसके आदेश का पालन करे और किस आदेश का पालन करें। संगठन में समादेश की एकता न होने पर पहली समस्या यह उत्पन्न होती है। दूसरी आशंका यह रहती है कि जोड़ तोड़ करने वाला कर्मचारी एक अधिकारी को दूसरे अधिकारी के विरूद्ध भड़काकर काम से बचने की कोशिश करेगा। ऐसी प्रक्रिया में कर्मचारी अपने अधिकारियों से खिलवाड़ करता है और इस प्रकार संगठन के उद्देश्य की गरिमा को ही कम कर देता है। समादेश की एकता न होने पर या तो उलझन फैलती है या संगठन में धूर्तता का माहौल पनपता है, जब कर्मचारियों को दो परस्पर विपरीत समादेश मिलते हैं तो इसके परिणामस्वरूप कार्यकुशलता में कमी होती है। यहां तक कि संगठन का काम भी अस्त–व्यस्त हो जाता है। इन दोनों बातों से संगठन को नुकसान होता है। संगठनों

को इन कमजोरियों और परेशानियों से बचाने के लिए समादेश की एकता की संकल्पना महत्वपूर्ण है।

8.4 व्यवहार में समादेश की एकता

अगला प्रश्न यह है कि क्या व्यवहार में संगठनों में समादेश की एकता को अपनाया जा सकता है। हम उदाहरण देकर इस प्रश्न पर विचार करते हैं।

जिलाधीश जिला स्तर पर कृषि, पशुपालन, सहकारिता, कानून और व्यवस्था, शिक्षा, चिकित्सा स्वास्थ सेवाओं जैसे सभी विभागों और कार्यकलापों का प्रमुख होता है। अगर जिला प्रशासन को एक संगठन माना जाये तो जिले के सभी विभागों के कर्मचारियों को सीधे उसी से आदेश लेने चाहिए, लेकिन व्यवहार में वे अपने विभागीय प्रमुखों और जिलाधीश दोनों से आदेश लेते हैं। विभागीय प्रमुख राज्य प्रशासन के अपने अधिकारियों और जिलाधीश दोनों से आदेश लेते हैं, इस तरह, आधुनिक संगठनों में समादेश की एकता लागू कर पाना मुश्किल होता है।

इसी तरह, औद्योगिक संगठनों में किसी एक अधिकारी द्वारा अपने मातहत सभी कर्मचारियों को आदेश दे पाने में व्यावहारिक कठिनाईयाँ आती हैं, क्योंकि कर्मचारी संगठन के अनेक स्तरों पर विभिन्न तकनीकी और सामान्य अधिकारियों के साथ काम करते हैं और उनसे आदेश लेते हैं।

इस प्रकार, चाहे जिला प्रशासन हो या औधौगिक संगठन, कर्मचारी एक से अधिक अधिकारियों से आदेश प्राप्त करते है। जब तक आदेश एक–दूसरे के विपरीत नही होते, कर्मचारी के लिये कोई पेरशानी नही होती। इस तरह समादेश की एकता में महत्व एकता का है, न कि समादेश का। एकता का मतलब संगठन के काम में एकरूपता से है। समादेश का क्षेत्र अधिकारियों या सामान्य प्रशासकों और तकनीकी अधिकारियों द्वारा कर्मचारियों के आदेश दिये जाने का है। जब तक समादेश संगठन के उद्देश्य की एकरूपता के अनुकूल होते हैं, यह बात महत्वपूर्ण नही रहती कि कौन–कौन अधिकारी क्या समादेश या आदेश दे रहे हैं।

अगर आदेशों में परस्पर विरोध और भ्रम हो तो कर्मचारी को इस बात को अधिकारियों को बता कर समस्या का समाधान करना चाहिए।

8.5 समादेश की एकता को प्रभावित करने वाले कारक

संगठनों की संख्या और जटिलता बढ़ती जा रही है। इसलिये विशेषज्ञों का अमल और इनकी एजेंसियों की संख्या, शक्ति और प्रभाव बढ़ता जा रहा है। ये एजेंसियाँ कार्यपालक एजेंसियों के कर्मचारियों को प्रशासनिक, तकनीकी, कानूनी और अन्य अनेक प्रकार के आदेश सीधे देने लगी हैं। इससे समादेश की एकता के सिद्धांत का महत्व काफी कम हो रहा है। कर्मचारी संशय से घिर जाता है कि वह किसके, किस आदेश का, कब पालन करे। यह बड़ी विस्मयकारी स्थिति है। दूसरी ओर, यह ऐसी स्थिति भी है जिसमें कर्मचारी को निर्णय लेने का ज्यादा अधिकार ओर छूट मिल जाती है।

जोड़–तोड़ करने वाला कर्मचारी ऐसी हालत में संगठन के उद्देश्यों के साथ खिलवाड़ कर सकता है। इन प्रवृतियों पर रोक कैसे लगे? हालांकि कर्मचारी अलग–अलग अधिकारियों से समादेश लेता है लेकिन उसकी कार्यकुशलता का आंकलन संगठन का कोई एक अधिकारी ही करता है। इसलिए समादेश इसी आंकलन करने वाले अधिकारी के हाथ मे रहता है। काम का आंकलन करने का अधिकार रखने वाले इसी अधिकारी के हाथ मे समादेश की एकता की असली कुंजी रहती है।

8.6 सिद्धांत के अपवाद

किताबी तौर पर ऐसा लगता है कि समादेश की एकता का सिद्धांत हर जगह लागू होने वाला निर्विवाद सिद्धांत है। लेकिन आधुनिक संगठनों की वृद्धि और जटिलता को देखते हुए व्यवहार मे इस सिद्धांत के कई अपवाद सामने आते हैं। ऐसी स्थितियां भी होती है,जब कर्मचारी एक अधिकारी तकनीकी और किसी दूसरे अधिकारी के प्रशासनिक नियंत्रण में रहता है। स्वास्थ, चिकित्सा या कृषि जैसे सभी तकनीकी विभागों में सही स्थिति रहती है। ऐसे में, एक से ज्यादा अधिकारियों के आदेश से बचना लगभग असंभव ही है।

वैज्ञानिक प्रबंधन आंदोलन के प्रेणता एफ0 डब्ल्यू0 टेलर ने समादेश की एकता के सिद्धांत को स्वीकार नही किया। उन्होंने इसके स्थान पर ''कार्य संबंधी नेतृत्व'' का सिद्धांत रखा जिसमें काम के हिसाब से निर्देश और निरीक्षण की बात कही गयी है। अंतिम रूप से किसी भी संगठन में कर्मचारी/कर्मचारियों की कार्यकुशलता का आंकलन करने वाले अधिकारी के हाथ में ही वास्तविक समादेश की एकता रहती है। इस प्रकार कर्मचारी की कार्यकुशलता का आकलन का अधिकार ही किसी संगठन में प्रभावी समादेश की एकता का मुख्य आधार है। उदाहरण के लिये किसी औद्योगिक संगठन में कर्मचारी किसी परियोजना दल में या एक समूह में अनेक प्रकार के तकनीकी काम करता है, लेकिन उसकी कार्यकुशलता का आंकलन कार्मिक प्रबंधक करता है। इसी प्रकार राज्य प्रशासन में, भले ही वाणिज्य कर विभाग करता है। ऐसे आदेशों के पीछे यह धारणा है कि अगर कर्मचारी को अपने विशिष्ट काम के लिये उस क्षेत्र के विशेषज्ञ अधिकारी का निर्देशन मिले तो वह बेहतर काम कर सकता है। इसी धारणा के अनुरूप टेलर ने हर कर्मचारी के लिये आठ पर्यवेक्षक सुपरवाइजर या ''फोरमैन'' सुझाये हैं, इनमें से प्रत्येक कर्मचारियों को काम के विशिष्ट क्षेत्र मे विशिष्ट निर्देश देते हैं। ये आठ पर्यवेक्षक है। 1. गैग बॉस 2. स्पीडबॉस 3. निरीक्षक इंस्पेक्टर 4. रिपेयर बॉस 5. काम का क्रम और तरीका निर्धारित करने वाला आर्डर आफ वर्क एंड रूट क्लर्क 6. निर्देश कार्ड जारी करने वाला; इंस्ट्रैक्शन कार्ड क्लर्क 7. समय और लागत की निगरानी करने वाला; टाइम एंड कॉस्ट क्लर्क 8. कारखाने में अनुशासन बनाए रखने वाला; शोप लोर डिसीप्लनेरियन) इन आठ पर्यवेक्षको में पहले चार तो कारखाने में ही अपने विशिष्ट कार्य क्षेत्र में निर्देश और समादेश देते हैं। बाकी चार योजना बनाने वाले और ऐसे निर्देश जारी करने वाले अधिकारी हैं। टेलर का विचार था कि समादेश की अनेकता से

श्रम विभाजन होता है और क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञता हासिल करने की प्रवृति बढती है। कुशल पर्यवेक्षण के लिये समादेश की अनेकता इसलिये भी आवश्यक है, क्योंकि एक ही व्यक्ति सभी क्षेत्रों का विशेषज्ञ नही हो सकता है।

टेलर के इस नये विचार को लोक प्रशासन में मान्यता मिली। आज लोक प्रशासन के क्षेत्र में सामान्य प्रशासकों के साथ–साथ अनेक क्षेत्रों के तकनीकी विशेषज्ञ काम करते हैं। ये सभी कर्मचारियों का पर्यवेक्षण करते हैं। यह जरूरी है कि इनके काम के बीच तालमेल रहे। तकनीकी पर्यवेक्षक है काम की पेशेवर दक्षता पर निगरानी रखना जबकि प्रशासनिक पर्यवेक्षक का उद्देश्य मानवीय, भौतिक और अन्य संसाधनों का बेहतर तरीके से उपयोग करना।

8.7 समादेश की एकता के पक्ष मे तर्क

इस धारणा के समर्थक तर्क देते है कि यह धारणा वास्तविक और व्यावहारिक है। इन समर्थकों के अनुसार भले ही एक से ज्यादा अधिकारी कर्मचारी को आदेश दें, उनके समादेशों का लक्ष्य एक ही होता है। सैकलर हडसन के अनुसार''कोई एक अधिकारी कर्मचारी को नीति संबंधी आदेश देता है, तो दूसरा कार्मिक, तीसरा बजट संबंधी और चौथा आपूर्ति और उपकरण संबंधी आदेश देता है।'' जब तक इन समादेशों और आदेशों मे कोई विवाद नहीं होता, समादेश की एकता बनी रहती है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि आदेश देने वाले तकनीकी विशेषज्ञ कर्मचारी को महज सुझाव और मदद देने वाले लोग हैं। अगर आदेशों में कोई विवाद हो तो अंतिम रूप से कर्मचारी को अपने ऊपर के अधिकारी के ही आदेश मानने होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि संगठनों में समादेश की एकता होती है। अन्य संगठनों की तुलना में, सेना और गुप्तचर विभागों जैसे संगठनों में समादेश की एकता अधिक होती है। इससे स्पष्ट होता है कि कुछ विशिष्ट संगठनो में समादेश की एकता अनिवार्य है।

मार्शल एडवर्ड डिमॉक और ग्लेडिस औगडेन डिमौक का भी कहना है कि संगठन में कोई तो प्रमुख होगा ही। अनके आदेशेां का मतलब है आदेशों में भ्रम का पनपना। काम में उचित सहयोग के लिये आपसी संबंधो और अधिकारों के बारे में स्पष्ट जानकारी होनी जरूरी है। अगर ऐसा नही होगा तो न सही संकेत मिलेगें, न काम सही सही होगा। पूरे कार्यक्रम के दौरान संपर्क बिगड़ जायेगा, और मिलजुल कर किये जाने वाले काम के लिये जरूरी सभी बातो में कोई तालमेल नही रहेगा। गुलिक ने समादेश की एकता की संकल्पना के महत्व को बताते हुए कहा है कि इस धारणा से कट्टर और अव्यवहारिक तरीके से चिपके रहना तो बेहूदा लगेगा। लेकिन इस सिद्धांत को न मानने से जो उलझन, गैर जिम्मेदारी और काम में ढीलापन आयेगा वह बहुत बुरा होगा। इसलिए इस सिद्धांत का महत्व संगठनो में तालमेल वाला ढांचा कायम करने में है। इस सिद्धांत के अन्य लाभ हैंः निर्देशों में परस्पर विरोधी बातें न होना, कर्मचारियों पर कारगर निगरानी, और ठीक ठीक जिम्मेदारियां तय होना। हेनरी फेयोल ने इस सिद्धांत को न मानने के विरूद्ध चेतावनी देते हुए कहा है कि–''ऐसा करने पर कोई अधिकारी की बात नही मानेगा, अनुशासन नही रहेगा, व्यवस्था समाप्त हो जायेगी और स्थिरता

को ही खतरा पैदा हो जाएगा।'' फेयोल के अनुसार अगर एक व्यक्ति को दो अधिकारी आदेश दें तो बड़ी असहज और अव्यवस्था बढ़ जाएगी।

8.8 समादेश की एकता के विरोध में तर्क

समादेश की एकता के सिद्धांत के अनुसार हर कर्मचारी को केवल एक ही अधिकारी से आदेश लेने चाहिये। लेकिन प्रशासन के व्यावहारिक क्षेत्र में इस सिद्धांत को लागू करने में काफी कठिनाइयां आती हैं।

अनेक विद्वानों ने इस सिद्धांत की आलोचना की है। सेकलर हडसन का कहना है कि जटिल सरकारी तंत्र में व्यवहार में हर व्यक्ति के लिए एक ही अधिकारी की स्थिति शायद की कभी रहती हो। इनके अनुसार समादेश देने ओर पालन करने वाले की दुनिया के बाहर भी अनेक संबध होते हैं। जिनके तहत कारगर और सुचारू काम–काज के लिये अनेक लोगों के साथ काम करना और उनके लोगों को अपने काम का ब्यौरा देना जरूरी होता है। सेकलर हडसन कहते हैं कि सरकारी प्रशासन में कई प्रमुख होते हैं और किसी की भी उपेक्षा नही की जा सकती।

दूसरे अनेक सिद्धांतों की तरह समादेश की एकता भी मात्र ऐसी सैद्धांतिक धारणा है जो व्यावहारिक रूप से संगठनों में लागू नही हो पाती। समितियों, आयोगों और स्वायत्त संगठनों में इस धारणा की कोई प्रासंगिकता नही है अनुसंधान प्रयोगशालाओं जैसे संगठनों में इस सिद्धांत को लागू करने से नुकसान ही होगा। नित नये तकनीकी आविष्कारों वाले तेजी से बदलते समाज में ऐसी धारण महत्वहीन ही होती है। विकासशील प्रशासन में व्यक्ति को अनेक तकनीकी और सामान्य कार्मिकों के साथ काम करना होता है और सभी से आदेश और निर्देश लेने होते हैं। इसलिये ''एक व्यक्ति, एक अधिकारी'' जैसी धारणाओं से विकासशील प्रशासन में जड़ता आती है। जॉन डी0 मिजलेट ने कहा है कि ''समादेश की एकता की धारणा को इस बात के साथ तालमेल बिठाना ही होगा कि निगरानी और नियंत्रण का काम दोहरा, अर्थात् तकनीकी और प्रशासनिक हो सकता है। इन दोनों क्षेत्रों के लिए अलग–अलग पर्यवेक्षक हो सकते हैं। एक पर्यवेक्षक कार्य कुशलता पर निगरानी रख सकता है जब कि दूसरा काम के लिये उपलब्ध मानवीय और भौतिक संसाधनों के कारगर इस्तेमाल का ध्यान रख सकता है। लूथर गुलिक जैसे इस सिद्धांत के समर्थक विद्वानों ने भी यह बात स्वीकार की है कि इस सिद्धांत का कड़ाई से पालन करने से बड़ी बेहूदी स्थितियां सामने आ सकती हैं।

8.9 सारांश

लोक प्रशासन के बदलते क्षेत्र को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि जब तक उलझन और विवाद की स्थिति से बचा जा सके, इस बात में कोई बुराई नहीं है कि कर्मचारी एक से ज्यादा अधिकारियों से आदेश ले। अगर आदेशों में आपसी विरोध या उलझन की स्थिति आए तो कर्मचारी को यह बात अपने अधिकारियों को बतानी चाहिए। निष्कर्ष के रूप में यही कहा जा सकता है कि किसी संगठन में समादेशों की

एकता केवल संगठन का प्रशासनिक प्रमुख या प्रशासनिक अधिकारों वाला वरिष्ठ अधिकारी ही ला सकता है।

8.10 प्रमुख शब्दावली

स्वयंसिद्ध : ऐसा सत्य, जिसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता न हो।

कार्य कुशलता का आंकलन : संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान की दृष्टि से किसी व्यक्ति की उपलब्धियों को आंकना।

8.11 बोध प्रश्न

1. (1) समादेश की एकता से आप क्या समझते हैं?
   (2) लोक प्रशासन में समादेश की एकता का क्या महत्व है?
   (3) समादेश की एकता के सिद्धांत के कया अपवाद हैं?

2. (1) समादेश की एकता कौन से कारक प्रभावित करते हैं?
   (2) समादेश की एकता के पक्ष में दिये जाने वाले तर्कों को समझाइए।
   (3) समादेश की एकता के विरोध में दिये जाने वाले तर्कों की समीक्षा कीजिए।

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखें भाग 23.2
   (2) देखें भाग 23.3
   (3) देखें भाग 23.5

2. (1) देखें भाग 23.6
   (2) देखें भाग 23.7
   (3) देखें भाग 23.8

8.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Avasthi, A. and Maheshwari, S.R. 1985, Public Administration, (14th ed), Lakshmi Narain Agarwal; Agra.

Dimock, Marshal Edward and Dimock, Gladys Ogden, 1975, Public Administation (Third Ed): Oxford & IBH Publishing Co. ; New Delhi.

Fayol, Henry, 1957, General and Industrial Management: Isssac Pitman: London, Gulick, Luther and Urwick Lyndall (eds), 1937, Papers on the Science of Admiistration; Public Administration Service: New York.

Pfiffner, John M. and Sherwood, Frank M. 1968, Administative Organisation; Prentice Hall of India: New Delhi.

Seckler-Hudson, C. 1957, Organisation and Management (Theory and Practice), The American University press: Washington D.C.
Sharma, M.P. 1983, Public Administration (Theory and Practice) (19th ed), Kitab Mahal: Allahabad.
Simon Herbert, 1957, Administrative Behaviour; A Study of Decision Making Process in Administrative Organisation, The Free Press New York. Taylor, Frederick W. 1947 Scientific Management, Harper, New York.

इकाई– 09
केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 केंन्द्रीकरण का अर्थ
9.3 विकेंद्रीकरण का अर्थ
9.4 विकेन्द्रीकरण के प्रकार
9.5 केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण को प्रभावित करने वाले तत्व
9.6 केन्द्रीकरण के गुण एवं दोष
9.7 विकेन्द्रीकरण के गुण एवं दोष
9.8 सारांश
9.9 मुख्य शब्दावली
9.10 बोध प्रश्न
9.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इकाई के उद्देश्य :

- केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की संकल्पना और उनके सम्बन्धों की व्याख्या कर सकेंगे।
- उन तत्वों का विश्लेषण कर सकेंगे जिनके कारण किसी संगठन में केन्द्रीकरण या विकेन्द्रीकरण अथवा दोनों के सम्मिश्रण को अपनाया जाता है।

9.1 प्रस्तावना

केन्द्रीकरण और विकेंद्रीकरण, संगठन की महत्वपूर्ण संकल्पनाएं हैं। ये संकल्पनाएं यह बताती हैं कि निर्णय लेने की शक्ति को किस प्रकार विभाजित किया जाता है या संगठन के विभिन्न स्तरों पर उसे कैसे सौंपा जाता है।

9.2 केंन्द्रीकरण का अर्थ

फेयोल के अनुसार, केन्द्रीयकरण प्राकृतिक आदेश से सम्बन्धित है। केंन्द्रीकरण का अर्थ है अधिकारिक शक्तियों को संगठन के उच्च स्तर पर केंद्रित करना। इस प्रवृति का लक्ष्य है केन्द्रीकृत कार्य। इसलिए यह सत्ता के छितराव तथा प्रत्यायोजन के सिद्धांत के ठीक विपरीत है। नीति–निर्धारण तथा निर्णय लेने की प्रक्रियाओं पर इसका महत्वपूर्ण

प्रभाव पड़ता है। किसी केंन्द्रीकरण संगठन में प्रबन्धन और प्रशाासन के ये दो क्षेत्र उच्चतम अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र हैं। संगठनात्मक सोपानक्रम के निचले स्तर के अधिकारी निर्देश, सलाह, स्पष्टीकरण तथा अर्थ निर्णय के लिए हमेशा अपने से ऊपर के स्तर के अधिकारियों पर निर्भर करते हैं। यहां तक कि मुख्य संगठन की क्षेत्रीय इकाइयाँ या शाखाएँ भी निर्णय लेने की शक्ति नही रखती। इसलिए वे पूरी तरह से केंद्रीय प्रबन्धकों पर निर्भर करती है। क्षेत्रीय इकाइयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे केंद्रीय प्रबन्धकों के रूप में कार्य करने वाले मुख्यालय द्वारा दिए गए पूर्व निर्धारित निर्देशों के अनुरूप ही इन निर्देशों को कार्यान्वित करें। केन्द्रीकरण उस समय तीक्ष्ण हो जाता है जब कोई संगठन एक ही स्थान का प्रयोग उन प्रवृतियों का विवरण देने के लिए किया गया है जो सत्ता के छितराव से भिन्न है बहुधा यह विभागीय गतिविधियों, सेवा, प्रभागों, या एक ही विभाग में केन्द्रीकृत समान या विशिष्ट गतिविधियों की ओर संकेत करता है, लेकिन जब प्रबन्ध के एक पक्ष के रूप में केंद्रीकरण की चर्चा की जाती है तो इसका अर्थ होता है सत्ता को सौपने या रोके रखना तथा निर्णय लेने में सत्ता का छितराव या जमाव होना''।

इस प्रकार केन्द्रीकरण को भौतिक सुविधाओं का जमाव तथा निर्णय लेने वाली शक्तियां भी माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में प्रत्यायोजन का सीमित तथा नियंत्रक प्रयोग ही केन्द्रीकरण है। हेनरी फायोल का केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण के बारे मे यह कहना है ''जिससे अधीनस्थ के महत्व में वृद्धि हो वह विकेंद्रीकरण है जो उसे घटाये व वह केंद्रीकरण है।''

9.3 विकेंद्रीकरण का अर्थ

विकेंद्रीकरण का अर्थ विभिन्न व्यक्तियों या समूहों ने विभिन्न प्रकार से लिया। लुई ए0 ऐलन ने इसे व्यावसायिक प्रबंध की कला एवं विज्ञान के प्रशासकीय कार्यविधि में सबसे अधिक उलझी हुई तथा उलझाने वाली विधि माना है। पिफनर और शेरवुड का कहना है, ''कुछ अर्थो में तो विकेन्द्रीकरण को प्रबन्ध व्यवस्था का धर्म वाक्य माना जाने लगा है। सर्वप्रथम तो इसे एक ऐसी जीवन पद्धति माना जाता है जिसे कम से कम आशिंक रूप में विश्वास के आधार पर अपनाया जाना चाहिए। दूसरे, यह एक आदर्शवादी संकल्पना है जिसकी नैतिक जड़ें प्रजातंत्र में निहित हैं। तीसरे, प्रारंभ में यह ज्यादा मुश्किल जीवन पद्धति जान पड़ती है क्योंकि इसमें मानव संस्कृति से विपरीत व्यावहारिक परिवर्तन करना पड़ता है। यही कारण है कि विकेंद्रीकरण का नया साहित्य इस बात पर जोर देता है कि संगठनात्मक व्यवहार में कैसे परिवर्तन लाया जाए। लोग सत्ता के प्रत्यायोजन को कठिन पाते हैं न वे दीर्घकालीन योजना के आधार पर सोच पाते है और न आदेश देने के बजाय आदेश सुन पाते हैं। वे दूसरे लोगों तथा उनके कार्यो का मूल्यांकन चिड़चिडाहट या तनाव के क्षणों के आधार पर करते हैं, न कि सब मिलाकर आने वाले परिणाम के आधार पर। एक विकेंद्रीकृत संगठन में विकेन्द्रीकरण न केवल प्रशासकीय सत्ता के न्याय या छितराव की एक विधि है बल्कि यह राजनैतिक

सत्ता के हस्तांतरण का भी एक लोकतांत्रिक तरीका है। एक विकेंद्रीकरण संगठन में लोकतांत्रिक नियम अपनाना आवश्यक भी है। ऐसे नियम प्रशासकीय संगठन के विभिन्न स्तरों के अधिकारियों की उस क्षमता को विकसित करने में सहायक होते हे जिससे सबसे अधिक वांछित निर्णय लिए जा सके। इसके अतिरिक्त ये नियम न केवल विभिन्न प्रशासकीय स्तरों पर अधिकाधिक पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते हैं बल्कि संगठन तथा जनसाधारण के बीच भी उचित सम्पर्क स्थापित करने में सहायता करते हैं।

यह भी मत व्यक्त किया गया है कि विकेन्द्रीकरण किसी भी संगठन में सुविधाओं के भौतिक स्थान तथा सत्ता के छितराव की सीमा को बताता है। इसलिए यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसके कारण अन्तिम आदेश देने की शक्ति तथा परिणामों के लिए उत्तरदायित्व पूरे देश में स्थित स्थानीय इकाइयों को सौंपा जाता है। यह तर्क दिया जाता है कि कुशल एवं प्रभावी कार्य के लिए अधीनस्थ अधिकारियों तथा उप विभागों को कार्य एवं उत्तरदायित्व सौंपना ही विकेन्द्रीकरण का सार है। हम यह भी कह सकते हैं कि एक विकेन्द्रीकृत संगठन में निचले स्तर के अधिकारियों को कई मामलों में निर्णय लेने की स्वतंत्रता होती है तथा प्रमुख नीतियों या अर्थ निर्णयों से सम्बन्ध कुछ एक मामलों को ही संगठन के उच्चतर स्तरों तक भेजा जाता है, लेकिन सामान्य अर्थ में विकेन्द्रीकरण को विभाजन, हस्तांतरण तथा प्रत्योजन के अर्थों में ही प्रयोग किया जाता है। यद्यपि इन शब्दों के विभिन्न गुणार्थ हैं। हस्तान्तरण में राजनैतिक एवं कानूनी शक्ति का शाखा विस्तार होता है जबकि विभाजन तथा प्रत्योजन केवल, स्थानीय प्रशासकीय सत्ता के लिए प्रयोग किए जाते हैं। विकेन्द्रीकरण सत्ता के राजनैतिक, कानूनी एवं प्रशासकीय तीनों स्तरों के लिए प्रयोग किया जाता है।

9.4 विकेन्द्रीकरण के प्रकार

विकेन्द्रीकरण चार प्रकार का होता हैः प्रशासनिक, कार्यात्मक, राजनैतिक एवं भौगोलिक। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण में संगठन के प्रशासकीय सोपानक्रम में निचले स्तर के अधिकारियों को सत्ता हस्तांतरित की जाती है। इसके अन्तर्गत अधीनस्थ इकाईयों को सत्ता या कार्यों का हस्तान्तरण भी किया जा सकता है। कार्यात्मक विकेन्द्रीकरण से तात्पर्य है कि किन्हीं कार्यों को विशिष्ट इकाइयों या विभागों को सौंप दिया जाता है– जैसे शिक्षा या स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य राजनैतिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत उच्चस्तरीय राजनैतिक अंगों में केन्द्रित सत्ता को निचले स्तर के राजनैतिक अंगों में विकेन्द्रित किया जाता है। पंचायतीराज संस्थाएं विकेन्द्रीकरण की इकाइयां हैं जहां राज्य सरकार द्वारा निर्णय लेने की राजनैतिक सत्ता, पंचायतों, समितियों तथा जिला परिषदों में विकेन्द्रित की जाती है। अंत में, भौगोलिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत मुख्यालय के कार्यों तथा शक्तियों को प्रभावी कार्य के लिए क्षेत्राधिकारियों में विकेन्द्रित किया जाता है। उदाहरण के लिए राज्य सरकार के विभागीय अध्यक्षों की अधिकतर शक्तियां क्षेत्रीय तथा जिला स्तर पर उनके क्षेत्राधिकारियों में विकेन्द्रित की जाती हैं।

इससे स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तुरन्त निर्णय लेने में सुविधा होती है।

9.5 केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण को प्रभावित करने वाले तत्व

केन्द्रीय और विकेन्द्रीय, सत्ता संचालन के दो छोर हैं, इसलिए ये सापेक्षिक शब्द हैं। हम किसी एक ऐसे संगठन की कल्पना नहीं कर सकते जो पूर्णरुप से केन्द्रीकृत या विकेन्द्रीकृत हो, क्योंकि इन दोनों के प्रयोग के बीच भी सत्ता की निरन्तरता रहती है। इन दोनों को एक दूसरे के पूरक के रुप में देखने की आवश्यकता है, क्योंकि इन दोनों का सम्मिलन ही स्थिरता, जवाबदेही, निपुणता और प्रभावीपन लाता है। किसी लोकतांत्रिक ढांचे में उनका प्रयोग किसी संगठन के उद्देश्य, जीवन, आकार तथा सेवा की प्रकृति पर निर्भर करता है। यह कहा गया है कि अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए एक संगठन को कुछ काम करने ही होते हैं जो मूलरुप में स्वभाव एवं प्रभाव में केन्द्रीकृत होते हैं। इसके अतिरिक्त उनका कार्य सत्ता के केन्द्रीय बिन्दु से ही हो सकता है। ऐसे दो प्रमुख कार्य हैं– योजना, संगठन, प्रेरणा, समन्वय तथा अधीनस्थ अधिकारियों और क्षेत्रीय इकाइयों के कार्यों में नियंत्रण। जैसे आधारभूत व्यवस्थात्मक कार्यों के मामलों में निर्णय लेना तथा कार्य प्रारम्भ करना। इस प्रकार कार्य प्रारम्भ करने तथा निर्णय लेने तक उच्च स्तरीय– अधिकारी वास्तविक सत्ता को संगठन के केन्द्र में ही निहित रखते हैं। दूसरी तरफ अर्नेस्ट डेल का कहना है कि निम्नलिखित स्थितियों में विकेन्द्रीकरण की मात्रा अधिक होती है:

(i.) प्रबन्ध सोपानक्रम के निचले स्तर पर जितने अधिक निर्णय लिए जाएंगे उतना ही विकेन्द्रीकरण अधिक होगा।

(ii.) प्रबन्ध के निचले स्तर पर लिए गए निर्णय जितने अधिक महत्वपूर्ण होंगे, उतना ही विकेन्द्रीकरण अधिक होगा। उदाहरण के लिए जब क्षेत्रीय इकाई का प्रमुख बिना किसी अन्य व्यक्ति से परामर्श किए वित्तीय निवेश या खर्च मंजूर करने की शक्ति रखता है।

(iii.) विकेन्द्रीकरण सत्ता के ढांचे में निचले स्तर पर अधिक निर्णय लिए जाते हैं और इनका असर संगठन के अधिकतर कार्यों पर समग्र रुप से पड़ता है। इस प्रकार वे संगठन जो विभिन्न शाखा स्तरों पर केवल कार्यात्मक निर्णय लेने की अनुमति भी देते हैं।

(iv.) जब निर्णय पर कम नियंत्रण की आवश्यकता हो, विकेन्द्रीकरण उस समय सर्वाधिक होता है। जब कोई जांच पड़ताल ही न हो, जब प्रवर अधिकारियों को लिए गए निर्णयों की सूचना देने की आवश्यकता हो तो विकेन्द्रीकरण में कमी आ जाती है। यदि निर्णय लेने से पहले प्रवर अधिकारियों से परामर्श लेना पड़े तो विकेन्द्रीकरण और कम हो जाता है। जब कम लोगों से परामर्श किया जाए और परामर्श देने वाले संगठन सोपानक्रम में निचले स्तर पर हों तो विकेन्द्रीकरण की मात्रा बढ़ जाती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन दो संकल्पनाओं का प्रयोग एक से अधिक तत्वों से प्रभावित होता है। आधुनिक समय में जब प्रशासकीय एवं राजनैतिक संगठन में विविधता हो तो लोगों को अधिकधिक लाभ देने के लिए सत्ता के केन्द्रीकृत एवं विकेन्द्रीकृत ढांचे को प्रयोग करने की आवश्यकता होती है। यह कल्याणकारी राज्य या लोकराज्य के लिए जरुरी तत्व है। जनमत विकेन्द्रीकरण के पक्ष में बढ़ता जा रहा है किन्तु यह भी सत्य है कि कुछ राजनैतिक ताकतें एवं नौकरशाही स्पष्ट कारणों से विकेन्द्रीकृत प्रणाली के पक्ष में नहीं हैं। पिफर और शेरवुड का कहना है कि ''विकेन्द्रीकरण को हमेशा एक ऐसे संघर्ष का सामना करना पड़ेगा जो समन्वय के पक्षधर तथा उसके विरोधियों के बीच होता है। आवश्यक बात यह है कि एक ऐसी जीवन पद्धति अपनायी जाए जिसमें लोग अधिक से अधिक अपने व्यक्तिगत लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास कर सकें और साथ ही भिन्न मत रखने वाले दूसरे व्यक्तियों के साथ मिलकर सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करें''।

विकेन्द्रीकरण के राजनैतिक एवं प्रशासनिक तत्व भी हैं, लेकिन प्रबन्ध में या प्रशासनिक संगठनों के लिए विकेन्द्रीकरण को एक ऐसी प्रशासकीय विधि के रुप में देखा गया है जो निर्णय लेने की शक्ति को एक छितराए तरीके से अवस्थित करती है। इसके विपरीत केन्द्रीकरण को शीर्षस्थ प्रबन्ध में सत्ता के जमाव के रुप में देखा जाता है। इन दोनों संकल्पनाओं की संयन्त्र, कार्मिक तथा उपकरण जैसी भौतिक सुविधाओं की दृष्टि से विवेचना करते हुए मर्विन कोहन मत व्यक्त करते हैं कि कोई भी संगठन दोनों की विशेषताएं प्रदर्शित करता है। कोहन ने चार सम्भावित सम्मिलन बनाए हैं और उन्हें वह ''केन्द्रीकरण– विकेन्द्रीकरण सांचा या मैट्रिक्स" का नाम देता है इन्हें नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :

केन्द्रीकरण–विकेन्द्रीकरण सांचा या मैट्रिक्स

	केन्द्रीकृत (जमाव)	**विकेन्द्रीकृत (छितराव)**
संयत्र कर्मचारी उपकरण (सुविधाएँ)	उत्पाद, सेवाएँ और व्यापार कार्य जो एक ही भवन में या एक स्थानीयकृत क्षेत्र के विभिन्न भवनों में केन्द्रीकृत हैं।	उत्पाद, सेवाएँ और व्यापार कार्य जो विभिन्न क्षेत्रों में छितराया हुआ है, अनेक संयंत्र संचालन प्रत्येक उप–इकाई एक अलग अस्तित्व लिए होती है, यह भी संभव है कि यह स्वायत्त, आत्मनिर्भर इकाई हो जो प्रमुख व्यापार स्वयं करें।
सत्ता (निर्णय लेना)	एकत्रीकरण की उच्च मात्रा और प्रबन्ध के उच्च स्तरों पर निर्णय लेने को बनाए रखना	प्रत्यायोजन की उच्च मात्रा और प्रबंध के निचले स्तरों पर निर्णय लेने की समतलीय या उर्ध्वगामी स्वतंत्रता, अधीनस्थ अधिकारी अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र "लाभ केन्द्र" संकल्पना

	अधीनस्थ अधिकारी बहुत अधिक निर्भर	

इस मैट्रिक्स से हमें चार सम्भावित सम्मिलन मिलते हैं। इन सभी में केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण की सीमा अलग–अलग है। अब हम उन सम्मिलनों की व्याख्या करेंगे–

(i.) पहला सम्मिलन सुविधाओं और संगठनात्मक सोपानक्रम उच्च स्तरों पर सत्ता के केन्द्रीकरण की उच्च मात्रा दर्शाता है। इन स्तरों के अधिकारी निर्णय लेने तथा निर्णय के क्रियान्वयन का व्यवस्थात्मक कार्य करते हैं। ऐसा संगठन सरकार में विशेषतः रक्षा या रक्षा उत्पादन के पक्षों जैसे– संवेदनशील विषयों से सम्बन्धित हो सकता है या फिर विदेश मंत्रालय में कुछ स्थितियों में भी हो सकता है। इसमें सत्ता का अल्पमत न के बराबर प्रत्यायोजन होता है। निजी उद्योग में यह किसी एक व्यक्ति या एक परिवार के अन्तर्गत चलने वाली इकाइयों से मिलता–जुलता होता है और जिसका कार्य क्षेत्र बहुत छोटा या मालिकों द्वारा सुचारु रुप से संचालित होता है।

(ii.) दूसरे सम्मिलन से एक ऐसा संगठन पैदा होता है जिसकी भौतिक सुविधाएं एक ही स्थान पर केन्द्रित होती हैं। दूसरे शब्दों में उत्पाद या सेवाएं तो केन्द्रीकृत होती हैं किन्तु निर्णय लेने की शक्ति समतलगामी या ऊर्ध्वगामी रुप में न्यस्त होती हैं। जिस स्तर के अधिकारियों को निर्णय लेने की शक्ति प्रदान की जाती है, वे प्रभावी प्रबन्ध के लिए अपने से ऊपर के अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं क्योंकि उनके निर्णय सर्वोच्च प्रबन्धकों की सम्पूर्ण नीति के अनुरुप होने चाहिए। इस प्रकार की स्थिति सेवा संस्थाओं में पाई जा सकती है। जैसे– राज्य व्यापार निगम या वे संस्थाएं जो अन्न वसूली से सम्बन्धित हैं और वितरण व्यवस्था में संलग्न हैं।

(iii.) तीसरे, ऐसा भी संगठन हो सकता है जिसमें भौतिक सुविधाएं देश के विभिन्न हिस्सों या क्षेत्र विशेष में स्थित विभिन्न इकाइयों में छितरायी होती हैं लेकिन मुख्य निर्णय लेने की शक्ति प्रबन्ध उच्चाधिकारियों के पास ही होती है। इकाइयों को केवल कुछ छोटे विषयों में निर्णय लेने का अधिकार होता है जैसे– छुट्टी या अतिरिक्त समय भत्ता मंजूर करना आदि। इस प्रकार मुख्य नीतियों के फलस्वरुप प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य करने की शक्ति का ही प्रत्यायोजन किया जाता है जिससे वे मुख्य नीतियों के छोटे–मोटे पक्षों को कार्यान्वित कर सकें। महत्वपूर्ण एवं मुख्य नीतियां सर्वोच्च प्रबन्धकों द्वारा ही निश्चित की जाती हैं। ये प्रबन्धक केन्द्रीय कार्यालय या मुख्यालय में होते हैं। इसी वर्ग में विभिन्न प्रकार के सार्वजनिक एवं निजी यातायात संगठनों को रखा जा सकता है।

(iv.) अन्त में हम उस संगठन को रख सकते हैं जो प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण या जमाव समाप्त करने के सिद्वान्त पर आधारित होता है। ऐसा उस स्थिति में होता है जब भौतिक सुविधाएं तथा निर्णायक शक्ति दोनों ही विभिन्न स्तरों एवं इकाइयों में छितरायी हुई या विकेन्द्रित होती हैं। ऐसे संगठन को व्यापक कार्य करने होते हैं और इकाइयों को महत्वपूर्ण कार्यकारी स्वायत्तता प्राप्त होती है। हिन्दुस्तान मशीन टूल्स

लिमिटेड को इस वर्ग में रखा जा सकता है। मर्विन कोह्न ने जो ''लाभ केन्द्र'' की संकल्पना की है उसे इसी संगठन के नमूने का हिस्सा माना जा सकता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि यह संकल्पना केवल निजी व्यवसाय पर ही लागू होती है जो कि आमतौर पर लाभ के आधार पर चलता है। लेकिन सरकारी संगठनों में उत्पादकता अथवा सामाजिक या आर्थिक उपलब्धियों को लाभ माना जाता है और ये उपलब्धियां पूरे देश या किसी वर्ग विशेष के लिए लाभप्रद होती है।

हम यह कह सकते हैं कि किसी एक या दोनों के मिश्रण को अपनाना संगठन और उसके दृष्टिकोणों पर निर्भर करेगा। इसके अतिरिक्त कार्यों की प्रकृति, उत्पाद एवं सेवाएं, दूरगामी योजनाएं और उत्पादन एवं वितरण की नीति भी इस विषय में आधार हो सकती है। इस प्रकार केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के बीच संतुलन आंतरिक एवं बाह्य प्रभावों के कारण बदलता रहता है। आन्तरिक प्रभाव अधिकारी एवं अधीनस्थों के सम्बन्धों पर आधारित सोपानक्रम के सिद्धान्त की आवश्यकता से उत्पन्न होते हैं। दूसरी ओर सेवा की प्रकृति भी इसे प्रभावित करती है। बाह्य प्रभाव एक ओर तो ग्राहक वर्ग के साथ सम्बन्ध पर आधारित होते हैं दूसरी ओर ये उस वातावरण पर आधारित होते हैं जिसमें कोई संगठन कार्य करता है। मुख्यतः यह लोगों की परिपक्वता तथा देश के विकास के स्तर पर निर्भर करता है। मुतालिब के शब्दों में, ''सोपानक्रम का सिद्धान्त उन अवस्थाओं में अधिक अधिनायकवादी नहीं होता जहां संगठन के सदस्य और ग्राहक वर्ग उस समाज से संबद्ध हों जो समतावादी संकल्पना को उच्च महत्व देता हो"। राजनैतिक और प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण की सफलता के लिये पिफनर और शेरवुड यह सुझाव देते हैं कि विकेन्द्रीकरण को वांछित लाभ पाने के लिए बहुत ध्यान देना पड़ेगा इसके अतिरिक्त इसके लिए न केवल किसी संगठन के सदस्यों की चारित्रिक परिपक्वता आवश्यक है बल्कि बृहत समाज की संस्कृति और उस संगठन की उस–संस्कृति में भी परिपक्वता आवश्यक है।

9.6 केन्द्रीकरण के गुण एवं दोष

केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित संगठन की नीतियों तथा कार्यक्रमों के निर्माण ओर क्रियान्वयन दानों में केन्द्रीय दिशा–निर्देश प्रदान कर सकते हैं। लुई ए. ऐलन के शब्दों में, ''इस प्रकार का संगठन अपने अन्दर व्यक्तिगत नेतृत्व की सक्रिय भूमिका द्वारा आसानी से गतिशीलता ला सकता है। साथ ही कार्य की एकरुपता लाने वाले संगठनात्मक कार्य को पूरा करने के लिए एक समाकलित प्रस्ताव लाने में मदद कर सकता है।" इसके अतिरिक्त यह संकल्पना संकट काल में तथा अशातीत मामलों में निपटाने में काफी सहायक होती है।

केन्द्रीकरण के गुण

(i.) किसी भी केन्द्रीकृत संगठन में एक सी नीतियां तथा व्यवहार बनाना अधिक सरल होता है। इसके अतिरिक्त यह निर्दिष्ट कार्यविधि के अनुरुप प्रभावी रुप से कार्य

कर सकता है और संगठन के विभिन्न स्तरों तथा इकाइयों में बेहतर समन्वयन ला सकता है।

(ii.) यह प्रणाली सर्वोच्च अधिकारियों एवं प्रबन्धकों की प्रतिष्ठा एवं प्रभाव को और बढ़ाती है, चूंकि शक्ति सर्वोच्च स्तर पर केन्द्रित होती है इसीलिए वास्तविक शक्ति रखने वाले सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति या व्यक्तियों की पहचान करना आसान होता है। यह उन अधिकारियों या नेताओं की अभिलाषाएं पूरी करने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने में मदद करती है जो प्रतिष्ठा के साथ वास्तविक संगठनात्मक कार्यों को जोड़ना पसन्द करते हैं।

(iii.) यदि केन्द्रीकरण की प्रक्रिया मजबूत की जाती है तो किसी प्रशासनिक संगठन में पुनरावृत्ति से बचा जा सकता है।

(iv.) मर्विन कोह्न ने दावा किया है कि किसी भी केन्द्रीकृत संगठन में कर्मचारियों तथा उपकरण के पूर्ण उपयोग द्वारा एक सामूहिक रुप विकसित किया जा सकता है।

यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीकरण के गुण बहुत सीमित हैं और छोटे आकार के संगठनों में मिल सकते हैं, लेकिन बड़े संगठनों में केन्द्रीकरण प्रभावी नीति–निर्धारण और उसके क्रियान्वयन में बाधक होता है।

केन्द्रीकरण के दोष

(i.) केन्द्रीकृत संगठन में प्रबन्धकों की दूसरी पंक्ति बिल्कुल भी विकसित नहीं हो पाती, क्योंकि निचले स्तर के अधिकारी उच्च स्तरीय अधिकारियों के आदेशों एवं निर्देशों पर निर्भर करते हैं। संकटकालीन स्थिति में वांछित समाधानों के लिए तुरन्त निर्णय लेने पड़ते हैं। केन्द्रीकृत संगठन में यदि इकाई स्तर पर संकटकालीन स्थिति उत्पन्न होती है तो इकाई द्वारा उसका समाधान मुश्किल हो जाता है, क्योंकि उस इकाई के पास निर्णय लेने की शक्ति नहीं होती।

(ii.) केन्द्रीकरण का सिद्धान्त संगठन के सम्भावित विस्तार या विविधता के विपरीत कार्य करता है। केन्द्रीकृत अधिकारी संगठन की स्थानीय आवश्यकताओं को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझ पाते।

(iii.) सत्ता के प्रत्यायोजन सिद्धान्त का न्यूनतम प्रयोग होता है क्योंकि वास्तविक शक्ति तो संगठन के उच्चतम स्तर के अधिकारियों में निहित होती है। इस प्रकार हर मामले में निर्णय के लिए सर्वोच्च अधिकारी से मिलना आवश्यक होता है। ऐसे संगठन में सारी निर्णायक शक्ति कुछ ही लोगों में इकट्ठी होती है और बाकी के लोग ऊपर से प्राप्त आदेशों को मात्र कार्यान्वित ही करते हैं।

(iv.) चूंकि अधीनस्थ कर्मचारियों को छोटी–छोटी बातों के लिए भी अपने अधिकारियों से परामर्श लेना पड़ता है, इससे संगठन के कार्य की हानि होती है और अनावश्यक देरी भी होती है।

9.7 विकेन्द्रीकरण के गुण एवं दोष

कई विद्वानों का कथन है कि एक विकेन्द्रीकृत संगठन में सोपानक्रम में निचले स्तर के अधिकारी काफी हद तक निर्णय लेने की शक्ति रखते हैं और ऐसे संगठन में निचले स्तर पर लिए गए निर्णय उच्च स्तरीय निर्णयों की तुलना में अधिक होते हैं।

विकेन्द्रीकरण के गुण

कई विद्वानों का कथन है कि एक विकेन्द्रीकृत संगठन में सोपानक्रम में निचले स्तर के अधिकारी काफी हद तक निर्णय लेने की शक्ति रखते हैं और ऐसे संगठन में निचले स्तर पर लिए गए निर्णय उच्च स्तरीय निर्णयों की तुलना में अधिक होते हैं।

विकेन्द्रीकरण के गुण

1. विकेन्द्रीकरण संगठन स्थानीय क्षेत्र एवं लोगों की आवश्यकताओं तथा मांगों का ज्यादा ध्यान रखता है। यह वास्तविक समस्याओं को भली–भांति समझाकर, उसका मूल्यांकन करके उनके प्रभावी समाधान के लिए निर्णय ले सकता है। ब्रिटेन में स्थानीय सरकारी संस्थाएं स्थानीय समस्याओं के निराकरण के लिए काफी हद तक अधिकार सम्पन्न हैं। भारत ब्रिटेन में स्थानीय सरकारी संस्थाएं स्थानीय समस्याओं के निराकरण के लिए काफी हद तक अधिकार सम्पन्न हैं। भारत के संदर्भ में स्थानीय सरकारी संस्थाओं को स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने के लिए कुछ सीमित अधिकार दिए गए हैं।

2. शक्ति न्यास या प्रत्यायोजन किसी भी विकेन्द्रीकृत संगठन का अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है। उच्च स्तरीय संगठन निम्न स्तरीय संगठनों के साथ सत्ता को मिलकर भोगते हैं। इस प्रक्रिया में उच्चस्तरीय संगठन बहुत महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेते हैं, जबकि निम्न स्तरीय कम महत्वपूर्ण समस्याओं का समाधान करने के लिए स्वतंत्र होते हैं। इस प्रकार उच्च स्तरीय अधिकारियों पर अनावश्यक भार नहीं पड़ता।

3. एक विकेन्द्रीकृत संगठन नवीन परिवर्तनों को प्रोत्साहित करता है, क्योंकि यह संगठन निचले स्तरों द्वारा सुझायी गयी नई तकनीकी, तथा सृजनात्मक विचारों का स्वागत करता है। इसके अतिरिक्त यह व्यवस्था संगठन में कार्यरत सामान्य एवं विशिष्ट कार्यकर्ताओं के सर्वोत्तम गुणों को अपनाने का प्रयास करती है। यह कार्यकर्ताओं के बीच अधिक आपसी आदान–प्रदान लेने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त, एक विकेन्द्रीकृत व्यवस्था संगठन के विस्तार को प्रोत्साहित करती है और लक्ष्यों की प्रभाव उपलब्धि के लिए वांछनीय विविधता की अनुमति देती है।

लुई ए0 ऐलन का कहना है कि एक विकेन्द्रीकृत संगठन में निम्नलिखित क्षेत्रों में सहायता मिलती हैः

1. उच्चस्तरीय प्रबन्धकों तथा केन्द्रीय स्थान से कार्य करने वाले लोगों पर बोझ कम करने में।
2. विविधता लाने में।
3. वस्तुओं तथा सेवाओं को प्रभावी एवं सार्थक रुप से उपलब्ध कराने के लिए कार्यस्थल पर ही निर्णय लेने में।

4. सार्थक एवं उचित प्रतिभाओं से विकास को प्रोत्साहित करने में। संगठन के अन्दर लोगों में कार्य–प्रेरणा बढ़ाने में।
5. विकेन्द्रीकरण के विभिन्न लाभों के अलावा इस व्यवस्था में काफी कमियां भी हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि विकेन्द्रीकरण से विघटन आ सकता है और उससे संगठन के उच्च स्तर काफी कमजोर पड़ सकते हैं।

विकेन्द्रीकरण के दोष

1. विकेन्द्रीकृत संगठन में विभिन्न स्तरों पर संचार कठिन हो जाता है। कई बार ऊपर से दिया गया संदेश अस्पष्ट हो जाता है और जब यह संगठन में सम्बद्ध व्यक्ति तक अर्थ बदल जाता है। इसके अलावा भौगोलिक दूरियां भी प्रभावी संचार एवं नियंत्रण व्यवस्था में कठिनाइयां पैदा करती है।

2. नीति निर्धारण एवं नीति क्रियान्वयन स्तर पर भी प्रभावी समन्वयन करना कठिन होता है।

3. इससे अधिकांश संगठनों में कार्यों का एक दूसरे पर आच्छादन एवं पुनरावृत्ति हो जाती है, क्योंकि वे निश्चित रुप में गतिविधियों और उत्तरदायित्वों की पहचान तथा परिभाषा करने में असमर्थ रहते हैं। किसी भी विकेन्द्रीकृत संगठन में कर्मचारियों के कार्य करने में पुनरावृत्ति आमतौर पर पाई जाती है न कि अपवाद स्वरुप।

4. संगठन के उच्चस्तरीय अधिकारियों का नियंत्रण अपेक्षाकृत कम होता है। अतएव निर्णय लेने में वांछनीय एकरुपता बनाये रखना कठिन हो जाता है।

विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में संचालनात्मक गतिविधियों में अधिक खर्चा आता है। ऐसी स्थिति के लिए तत्व उत्तरदायी हो सकते हैं, लेकिन एक निश्चित तत्व यह है कि संगठन में उपलब्ध प्रतिभा का कम उपयोग हो पाता है।

9.8 सारांश

किसी संगठन के निर्माण के लिए केन्द्रीकरण महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। उनका सम्बन्ध संगठन में सत्ता के विभाजन से होता है। केन्द्रीकृत व्यवस्था में सत्ता उच्च स्तरों पर केन्द्रित होती है। निचले स्तर के अधिकारी निर्देश, सलाह एवं सुझाव के लिए हमेशा उच्च स्तरीय अधिकारियों पर निर्भर करते हैं। इस व्यवस्था में क्षेत्रीय संस्थायें तथा जिला इकाइयां मात्र कार्यान्वयन इकाइयां होती हैं। उनको केन्द्रीय अधिकारियों द्वारा निर्देश दिये जाते हैं। दूसरी ओर विकेन्द्रीकृत प्रशासकीय एवं राजनैतिक सत्ता के हस्तांतरण के लोकतांत्रिक तरीके को अपनाया जाता है। साथ ही इसमें संयंत्र और कर्मचारी वर्ग जैसी सुविधाओं की भौतिक स्थिति में सम्मिलित है। सम्पूर्ण संगठन में सत्ता के छितराव की सीमा भी निर्धारित की जाती है। हम कह सकते हैं कि विकेन्द्रीकरण द्वारा निम्न स्तरीय अधिकारियों को कई मामलों में निर्णय लेने का अधिकार प्रदान किया जाता है और उच्च स्तर पर केवल कुछ एक मामले ही भेजे जाते हैं। लेकिन सामान्य भाषा में विकेन्द्रीकरण को अन्य अर्थों में भी प्रयोग किया जाता है। जैसे जमाव की समाप्ति,

हस्तान्तरण और प्रत्यायोजन। हालांकि इन तीनों शब्दों के भावार्थ भिन्न हैं। हस्तान्तरण में राजनीतिक तथा कानूनी शक्ति का शाखा विस्तार आता है। जमाव की समाप्ति और प्रत्यायोजन में केवल प्रशासकीय शक्ति की ओर संकेत है, किन्तु विकेन्द्रीकरण में शक्ति के राजनीतिक, कानूनी एवं प्रशासकीय तीनों ही पहलू आ जाते हैं।

जब निचले स्तर पर रुटीन या नैत्यक तथा महत्वपूर्ण दोनों प्रकार के मसलों में अधिक निर्णय लिये जाते हैं, तब विकेन्द्रीकरण की मात्रा अधिक हो जाती है। दूसरे शब्दों में अधीनस्थ स्तरों पर अधिक स्वतंत्रता देने से संगठन का ढांचा अधिक विकेन्द्रीकृत हो जाता है। इस व्यवस्था में अधीनस्थ इकाईयों पर उच्च स्तरीय नियंत्रण एवं निरीक्षण कम होता है। मर्विन कोहन का मत है कि संयन्त्र, कर्मचारी वर्ग आदि सुविधाओं की स्थिति तथा निर्णायक शक्ति की स्थिति के आधार पर हम संगठन के चार नमूने पाते हैं जहां सत्ता का केन्द्रीकरण या जमाव या इसका छितराव ही हमें केन्द्रीकृत या विकेन्द्रीकृत संगठन प्रदान करता है। इन दोनों सिद्धान्तों के अपने प्रकृति, उद्देश्य एवं कार्य क्षेत्र के आधार पर इन दोनों में से एक या दोनों ही सिद्धान्तों का प्रयोग कर सकते हैं।

9.9 मुख्य शब्दावली

''लाभ केन्द्र'' दृष्टिकोणः इसके अन्तर्गत कोई कम्पनी आत्मनिर्भर, स्वतः पूर्ण और अर्ध–स्वायत्त इकाइयां स्थापित करती हैं जो अपने नफे या नुकसान के लिए स्वयं उत्तरदायी होती है। ऐसी इकाइयों में लाभ का व्यक्तियों से सीधा सम्बन्ध होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक इकाई एक ''लाभ केन्द्र'' बन जाती है इससे व्यक्तिगत प्रयासों को बढ़ावा मिलता है।

प्रत्यायोजन : अधिकार सौंपना।

नैत्यकः दिनचर्या से सम्बन्धित या नित्यप्रति दिया जाने वाला।

9.10 बोध प्रश्न

1. (1) केन्द्रीकरण क्या है? यह विकेन्द्रीकरण से किस प्रकार भिन्न है?
   (1) अधिक विकेन्द्रीकरण लाने वाले तत्वों का विवरण दीजिए।
   (3) मर्विन कोहन के केन्द्रीकरण– विकेन्द्रीकरण मैट्रिक्स की व्याख्या कीजिए।

2. (1) केन्द्रीकरण के गुण एवं दोषों की विवेचना कीजिए।
   (1) विकेन्द्रीकरण के मुख्य लाभ क्या हैं?

9.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखें भाग 24.2
   (1) देखें भाग 24.3
   (3) देखें भाग 24.5

2. (1) देखें भाग 24.6
   (1) देखें भाग 24.7

9.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Avasthi A. and Maheshwari S.R., 2014, Public Admiistration (30th rev. ed); Laxmi Narain Aggarwal: Agra.

Henry, Nicholas, Public Administration and Public Affairs 13th Ed. New Delhi : PHI, 2015

Pfiffner John M. and Sherwood, Frank M, 1968, Administrative Organisation; Prentice Hall of India Pvt.: Ltd. New Delhi.

Special Number on Decentralisation- Indian Journal of Public Administration, July-September 1978.

इकाई– 10

प्रत्यायोजन

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 प्रत्यायोजन का अर्थ
10.3 प्रत्यायोजन की विशेषताएं
10.4 प्रत्यायोजन की अवश्यकता
10.5 प्रत्यायोजन के प्रकार
10.6 प्रत्यायोजन के सिद्धान्त
10.7 प्रत्यायोजन में अड़चनें
10.7.1 संगठनात्मक अड़चनें :
10.7.2 व्यक्ति की अड़चनें
10.8 प्रत्यायोजन की सीमाएं
10.9 सारांश
10.10. मुख्य शब्दावली
10.11 बोध प्रश्न
10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इकाई के उद्देश्य :

- प्रत्यायोजन का अर्थ और महत्व बता सकेंगे,
- प्रत्यायोजन के प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे,
- प्रत्यायोजन के विभिन्न सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकेंगे,
- प्रत्यायोजन की प्रमुख समस्याओं और सीमाओं पर विचार कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

आज का युग बड़े–बड़े संगठनों का युग है। बड़े संगठनों की संख्या दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। अतः प्रत्योजन की आवश्यकता भी बहुत बढ़ गई है। एक छोटे संगठन का मुखिया सारे अधिकार अपने हाथ में रचा कर भले ही अपना संगठन कुशलता से चला ले, किन्तु बड़े संगठनों मे ऐसा करना संभव नही है। बड़े संगठन में मुखिया संगठन के संचालन से संबद्ध सभी अधिकार औपचारिकता रूप से तो अपने हाथ में

रख सकता है लेकिन कार्यकुशलता के लिए उसे कुछ अधिकार अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को सौंपने होते हैं और फिर सभी संगठनों का आधार सोपानक्रम का सिद्धान्त होता है जो संगठन के विभिन्न स्तरों और इकाइयों को एक अधिकारों की लम्बी श्रृंखला में बांधे रखता है। इस सिद्धान्त का मूल तत्व है अधिकारों और दायित्वों का प्रत्योजन। इसलिए संगठन के विकास के साथ–साथ प्रत्योजन की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। एल0 डी0 व्हाईट के अनुसार ''कार्य की विशालता और अधिक मात्रा की परिस्थतियों के कारण अधिकारों का कुछ प्रत्यायोजन करना और अधिकांश समस्याओं के उत्पन्न होते ही उन्हें सुलझाना आवश्यक हो जाता है।''

एक संगठन अधिक कार्य करता है जब अधीनस्थ जिम्मेदार पदों में कदम रख सकता है।

10.2 प्रत्यायोजन का अर्थ

प्रत्यायोजन का अर्थ है, किसी कार्य विशेष को पूरा कराने हेतु किसी वरिष्ठ अधिकारी द्वारा अधीनस्थ को अधिकार सौंप दिया जाना। मूनी के अनुसार प्रत्यायोजन का अर्थ है किसी उच्च अधिकारी द्वारा नीचे के अधिकारियों को कुछ निश्चित अधिकार सौप देना। जब कोई व्यक्ति अपने प्रतिनिधि या अधीनस्थ को कुछ अधिकार सौंप देता है तथा निरीक्षण और नियंत्रण का अधिकार अपने पास रखता है, उसे प्रत्यायोजन कहते हैं। यानि कानूनी रुप से प्रत्यायोजित अधिकार अभी भी प्रत्यायोजक या प्रत्यायोजित व्यक्ति के हाथ में होते हैं। एल्बर्ट के0 विक्सबर्ग ने भी कुछ ऐसी ही परिभाषा दी है ''प्रत्यायोजन की प्रक्रिया में संगठन के कुछ कार्य अधीनस्थों को सौंपे जाते हैं और इन गतिविधियों तथा कर्तव्यों के सफल निर्देशन के लिए आवश्यक अधिकार एक या अधिक व्यक्तियों को सौंपे जाते है।" किन्तु जार्ज0 आर0 टैरी जैसे विद्वान प्रत्यायोजन के इस अर्थ से सहमत नहीं है। उनके अनुसार यह जरूरी नही है कि प्रत्यायोजन की प्रक्रिया में उच्च अधिकारी द्वारा निचले अधिकारी को या वरिष्ठ द्वारा अधीनस्थ को अधिकार सौंपे जाएं। टैरी के अनुसार ''प्रत्यायोजन का अर्थ है, संगठन की एक इकाई या अधिकारी द्वारा दूसरे को अधिकार सौंपना।'' इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्यायोजन में अधिकार सिर्फ ऊँचे स्तर से निचले स्तर को ही नहीं बल्कि निचले स्तर से ऊँचे स्तर के अधिकारियों या समान स्तर के अधिकारियों के बीच भी सौंपे जा सकते हैं। टैरी के अनुसार, प्रत्यायोजन को तीन वर्गो मे बाँटा जा सकता है,

(क) नीचे की ओरः जब उच्च अधिकारी अपने नीचे के अधिकारी को अधिकार सौंपता है जैसे सेल्स मैनेजर, सेल्स मैन को अधिकार सौंपता है, (ख) ऊपर की ओर जब नीचे का अधिकारी अपने से ऊपर के किसी अधिकारी को अधिकार सौंपता है जैसे शेयर धारक निदेशक मंडल को अपने अधिकार सौंप देता है, (ग) समान स्तर परः जब समान स्तर पर अधिकार सौंपे जाते है जैसे एक व्यक्ति संगठन में अपने साथियों के बीच अधिकार बाँट देता है। अतः प्रत्यायोजन का अर्थ है एक दूसरे को कुछ काम या अधिकार और जिम्मेदारी सौंपना और कुशलता के प्रति जवाबदेही उत्पन्न करना।

10.3 प्रत्यायोजन की विशेषताएं

प्रत्यायोजन का अर्थ अधिकारों का अवक्रमण या उन्हें किसी दूसरे को सौंपना है। उसकी निम्नलिखित विशेषताएं हैं:

(1) प्रत्यायोजन में किसी अधीनस्थ या संगठन की किसी अन्य इकाई को कुछ हद तक अपने ढंग से कार्य करने का अधिकार दिया जाता है। अधिकार प्राप्त करने वाले को अधिकार सौंपने वाले द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर काम करना होता है। इन सीमाओं के भीतर भी अधीनस्थ व्यक्ति मनमाने ढंग से नही बल्कि अधिकार सौंपने वाले अधिकारी द्वारा निर्धारित नीति,नियमों और व्यवस्थाओं के अनुसार ही काम कर सकता है।

(2) प्रत्यायोजन का दोहरा स्वरूप होता है। वरिष्ठ अथवा प्रत्यायोजक अपने अधीनस्थ को अधिकार सौंपता जरूर है पर साथ ही उन्हे अपने हाथ में भी रखता है। टैरी ने इसे बहुत सही ढंग से समझाया है। ''जैसे आप दूसरों के साथ जब ज्ञान बाँटते हैं, तब ज्ञान उन्हें तो मिलता ही है लेकिन आपके पास भी रहता है।''

(3) प्रत्यायोजन का अर्थ है आंशिक रूप से अधिकार सौंपना। प्रत्यायोजक या अधिकार सौंपने वाला अपने अधीनस्थ को सारे अधिकार नही सौंपता और यदि सारे अधिकार सौंप देगा तो वह नियंत्रण और निरीक्षण के अपने अधिकार का उपयोग भी नही कर सकेगा। अतः प्रत्यायोजन एक निश्चित सीमा तक ही किया जा सकता है।

(4) प्रत्यायोजित अधिकार में फेरबदल किया जा सकता है। उसे घटाया–बढ़ाया या वापस भी लिया जा सकता है। यह सब परिस्थिति की आवश्यकता और कार्य पर निर्भर करता है।

10.4 प्रत्यायोजन की अवश्यकता

प्रत्यायोजन की प्रक्रिया दुनिया भर में अपनाई जाती है। कोई भी संगठन, अधिकारों के प्रत्यायोजन के बिना काम नहीं कर सकता क्योंकि इससे किफायत और कुशलता के साथ–साथ प्रशासन भी सुचारू ढंग से चलता है। प्रत्यायोजन का औचित्य सिद्ध करने वाले आधार निम्नलिखित हैं:

(1) कार्य की मात्रा : काम की मात्रा बढ़ने पर किसी न किसी प्रकार प्रत्यायोजन आवश्यक हो जाता है। संगठन का मुखिया सारी जिम्मेदारी अपने कन्धों पर नहीं उठा सकता और अगर वो ऐसा करेगा तो काम का नुकसान अवश्य होगा। उसमें न किफायत होगी और न ही कुशलता। एल्बर्ट के0 विक्सबर्ग के अनुसार,''जैसे–जैसे उत्पादन की मांग और मात्रा बढ़ती है, वैसे–वैसे संगठन के काम के लिए और अधिक लोगों के सहयोग की जरूरत पड़ती है। कर्मचारियों की संख्या बढ़ने पर काम का, वास्तविक उत्पादन का, सामूहिक सेवाओं के विपणन का और उनकी सम्बद्ध आवश्यकताओं का बंटवारा होता है। श्रम का बंटवारा होता है और उसके साथ अक्सर सोच–विचार भी बढ़ता है। ऐसे कामों का पता लगाया जाता है जो दूसरे लोग संतोषजनक ढंग से कर

सकते हैं और उन कामों को नए कर्मचारियों को सौंपा जाता है। इसके परिणामस्वरूप मात्रा से सम्बद्ध अनेक ऐसे दबाव पड़ते हैं जिनसे कर्तव्यों और दायित्वों का प्रत्यायोजन, और पुनर्निरीक्षण होता है।

(2) **जटिलताः** संगठनों के संचालन का कार्य दिनों–दिन जटिल होता जा रहा है। नियमों और तकनीकों की पेचीदगियों ने परेशानी और बढ़ा दी है, इसीलिए विशेषज्ञों की आवश्यकता बहुत बढ़ गई है। प्रमुख अधिकारी इन्ही जटिलताओं के कारण मजबूर होकर विचार–विमर्श, सोचने–समझने और योजनाएं बनाने का काम अपने विशेषज्ञ कर्मचारियों पर छोड़ने लगे हैं, लेकिन योजनाओं को मंजूरी देने का अधिकार फिर भी प्रमुख अधिकारी के पास रहता है।

(3) **नीति–निर्धारण और नियोजन हेतु समय की बचतः** संगठन के मुखियों को नियोजन और नीति–निर्धारण के लिए अधिक से अधिक समय की जरूरत होती है। अगर वह छोटे–मोटे कामों में फंसा रहेगा तो नियोजन और निर्णय की प्रक्रिया पर अधिक ध्यान नही दे सकेगा जो वरिष्ठ अधिकारी कारगर ढंग से प्रत्यायोजन करते हैं वे निरीक्षण और नियोजन के कामों के लिए अधिक समय दे पाते हैं। इससे संगठन की कार्य–कुशलता बढ़ती है और उसका संचालन सुचारू ढंग से होता है। अतः प्रत्यायोजन से संगठन का मुखिया अपने समय और शक्ति का उपयोग, नीति–निर्धारण, नियोजन और फैसले करने के लिए कर सकता है और ऐसी छोटी–मोटी जिम्मेदारियों से मुक्त रहता है, जिन्हें उसके अधीनस्थ आसानी से उठा सकते हैं। यह कथन बिल्कुल सही है कि, ''व्यवसायिक अनुभव की एक दुःखद समस्या यह है कि व्यक्तिगत रुप से कुछ कार्यो में पारंगत लोग अक्सर इसलिए असफल हो जाते हैं कि उस पर ऐसी जिम्मेदारी लाद दी जाती है, जिनका ज्ञान उन्हें नहीं होता और जिनका प्रत्यायोजन करना भी वे नही सीख सकते हैं।''

(4) **शैक्षिक महत्वः** प्रत्यायोजन से बहुत कुछ सीखने का अवसर भी मिलता है। प्रबंधक का एक प्रमुख काम, अपने अधीनस्थों को जिम्मेदारियां बांटना और फैसले लेना सिखाना है। प्रत्यायोजन की प्रक्रिया की इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका है। इससे अधीनस्थ कर्मचारियों को भी जिम्मेदारियों में हिस्सा बंटाने और निर्णय लेने का अवसर मिलता है। वे प्रोत्साहित होते हैं और संगठन के प्रति उनकी अधिक वफादारी तथा अपनेपन की भावना विकसित होती है। उनका मनोबल मजबूत होता है और संगठन से जुड़े रहने में उन्हे गर्व का अनुभव होता है।

(5) **प्रबन्ध विकासः** प्रत्यायोजन की प्रक्रिया केवल शैक्षिक नहीं, इससे और भी कई लाभ मिलते हैं। इससे प्रबन्धकीय क्षमता के विकास के प्रशिक्षण की सुविधा मिलती है और अधीनस्थों में से प्रबन्धक वर्ग तैयार करने में मदद मिलती है। विभिन्न स्तरों पर मौजूद अधिकारी अनेक महत्वपूर्ण मसलों पर स्वयं फैसले लेकर कार्रवाई कर सकते हैं। उनमें स्वयं प्रगति और प्रतिभा के प्रदर्शन का काफी मौका मिलता है। अतः प्रत्यायोजन प्रबन्धक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

(6) **संगठन में लचीलापन लाने हेतु :** किसी भी संगठन की व्यवस्था में कठोर रवैए से नुकसान होता है। यह रवैया उत्पादकता बढ़ाने और कार्यकुशलता के रास्ते में बाधक होता है। संगठन में लचीलापन लाने के लिए प्रत्यायोजन आवश्यक है। प्रत्यायोजन से कठोरता दूर हो जाती है, बदलती परिस्थितियों के अनुसार काम करने में मदद मिलती है।

(7) **भौगोलिक फैलावः** बड़े संगठनों का भौगोलिक कार्यक्षेत्र बहुत फैला हुआ होता है। उनकी अनेक शाखाएं और इकाइयां काफी बड़े इलाके में फैली होती हैं। अधिकारों के प्रत्यायोजन और विकेन्द्रीकरण से विविधि और दूर–दूर तक फैले कारोबार के कारगर प्रबन्ध में मदद मिलती है। बड़े संगठन में शाखाएं और इकाइयाँ मुख्यालय से दूर होती हैं और उन्हें कारगर ढंग से चलाने के लिए अधिकारों का प्रत्यायोजन आवश्यक है।

(8) **किफायत और कुशलता :** अधिकारों के प्रत्यायोजन से श्रम के विभाजन में मदद मिलती है, जो कुशलता और तेजी से काम करने के लिए जरुरी है। प्रत्योजन, देरी की संभावनाओं को कम करके संगठनों को और किफायती तथा कुशल बनाता है। प्रत्यायोजन में प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर अधिकारों के स्पष्ट बंटवारे से विभिन्न शाखाओं और संगठन के विभिन्न स्तरों पर कारगर नियंत्रण रखा जा सकता है।

(9) **उत्तराधिकार में सहायताः** प्रत्यायोजन और उत्तराधिकार के बीच गहरा सम्बन्ध है। एक प्रशासक प्रत्यायोजन के जरिए अपने उत्तराधिकारी के लिए रास्ता बनाता है। अर्थात् एक प्रशासक के हटाने पर दूसरा उसकी जगह ले सकेगा। इरविन हास्केल शेल के शब्दों में, ''किसी भी अधिकारी के उत्तराधिकारी का रास्ता तैयार करने का सबसे कारगर उपाय प्रत्यायोजन है। वास्तव में यह प्रशासकों की नई पंक्ति के चुनाव और प्रशिक्षण का सबसे महत्वपूर्ण साधन है।'' प्रत्यायोजन उत्तराधिकारी के चुनाव या आदर्शों की निरन्तरता में भी सहायक है। प्रत्येक संगठन के कुछ आदर्श होते हैं और प्रशासक बदलने पर भी वे आदर्श ज्यों के त्यों मौजूद रहते हैं।

अमेरीकी प्रशासन की चर्चा करते हुए व्हाईट ने प्रत्यायोजन की आवश्यकता इन शब्दों में व्यक्त की है : ''कार्य की विशालता और अधिक मात्रा की परिस्थितियों के कारण अधिकारों का कुछ प्रत्यायोजन और अधिकांश समस्याओं को उत्पन्न होते ही सुलझाना आवश्यक हो जाता है। नागरिकों की सुविधा की दृष्टि से भी ज्यादातर मामलों को वाशिंगटन के बाहर ही निपटाना पड़ता है। प्रशासनिक व्यवस्था में देरी को रोकने के लिए एक मुख्यालय के बजाय सैकड़ों या हजारों क्षेत्रीय कार्यालयों में फैसले लेना जरुरी हो जाता है। कुछ मामलों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार नीतियों और कार्यक्रमों में फेरबदल भी करना होता है। इसके लिए क्षेत्रीय अधिकारियों को फैसले करने की छूट होनी चाहिए। अधिकारों के प्रत्यायोजन का वास्तविक अर्थ हैः अधिक शक्ति, अधिक जिम्मेदारी की भावना, और क्षेत्रीय प्रतिनिधियों में बेहतर मनोबल। वे वाशिंगटन में बैठे अपने वरिष्ठ अधिकारियों के संदेशवाहक ही नहीं बने रहना चाहते।''

10.5 प्रत्यायोजन के प्रकार

प्रत्यायोजन कई किस्म का हो सकता है जैसे– स्थाई या अस्थाई, पूर्ण या आंशिक, सशर्त या बिना शर्त, औपचारिक या अनौपचारिक और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष।

स्थाई और अस्थाई प्रत्यायोजनः प्रत्यायोजन स्थाई भी हो सकता है, अस्थाई भी। स्थाई प्रत्यायोजन के अन्तर्गत अधिकार हमेशा के लिए सौंप दिए जाते हैं, बशर्ते कि परिस्थितियां सामान्य रहें। केवल असाधारण परिस्थितियों में ही यह अधिकार वापस लिए जा सकते हैं। अस्थाई प्रत्यायोजन में कोई भी काम कराने के लिए थोड़े समय के लिए ही अधिकार सौंपे जाते हैं। काम पूरा हो जाने पर प्रत्यायोजन भी समाप्त हो जाता है। इरविन हास्केल शेल के अनुसार, ''परिस्थितियों के अनुसार, प्रत्यायोजन की मात्रा और क्षेत्र बदलता रहता है। उदाहरण के लिए आप किसी काम के लिए जिम्मेदार व्यक्ति के वापस लौटने तक उसकी जिम्मेदारियां किसी और को सौंप सकते हैं।''

पूर्ण और आंशिक प्रत्यायोजन : प्रत्यायोजन तब पूर्ण होता है जब उसके साथ कोई शर्त नहीं होती और जिस व्यक्ति को अधिकार सौंपे जाते हैं उसे निर्णय और कार्रवाई करने का पूरा अधिकार होता है, जब उसके फैसलों पर प्रत्यायोजन करने वाले अधिकारी की मंजूरी जरुरी होती है तो प्रत्यायोजन आंशिक होता है। जैसे अगर विदेश भेजे गए राजनयिक को बातचीत का पूरा अधिकार हो तो पूर्ण प्रत्यायोजन है और यदि उसे अन्तिम वार्ता से पहले सलाह या स्वीकृति लेनी हो तो आंशिक प्रत्यायोजन है।

सशर्त और बिना शर्त प्रत्योजन : प्रत्यायोजन सशर्त भी होता है तथा बिना शर्त का भी। प्रत्यायोजन सशर्त तब होता है, जब उसके साथ शर्तें जुड़ी होती हैं यानि अधिकार ग्रहण करने वाले व्यक्ति पर कुछ पाबंदियां लगा दी जाती हैं। यदि अधिकार ग्रहण करने वाला व्यक्ति बेरोक–टोक कार्रवाई करने को स्वतंत्र है तो बिना शर्त प्रत्यायोजन कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि अधीनस्थ के फैसलों पर वरिष्ठ अधिकारी की स्वीकृति और निरीक्षण आवश्यक है तो सशर्त प्रत्यायोजन होगा और अगर वह अपनी समझ से कार्य करने को स्वतंत्र है तो बिना शर्त प्रत्यायोजन होगा।

औपचारिक और अनौपचारिक प्रत्यायोजन : लिखित नियमों, उपनियमों या आदेशों के अनुसार किया जाने वाला प्रत्यायोजन औपचारिक होता है जबकि रीति–रिवाजों, परम्पराओं और आपसी सद्भाव पर आधारित प्रत्यायोजन अनौपचारिक होता है।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रत्यायोजन : प्रत्यक्ष प्रत्यायोजन में कोई बिचौलिया नहीं होता। अप्रत्यक्ष प्रत्यायोजन में कोई तीसरा व्यक्ति या पक्ष शामिल होता है।

10.6 प्रत्यायोजन के सिद्धान्त

प्रत्यायोजन हमेशा कुछ सिद्धान्तों से संचालित होता है। इन सिद्धान्तों के पालन के बिना प्रत्यायोजन कारगर नहीं हो सकता। सामान्यतः अधिकारों का प्रत्यायोजन करते समय निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन किया जाता है :

1. **प्रत्यायोजन स्पष्ट रुप से होना चाहिएः** प्रत्यायोजन किए जाने वाले अधिकार के बारे में कोई उलझन नहीं होनी चाहिए। ''नीतियां, नियम और क्रियाविधि इतनी स्पष्ट होनी चाहिए कि अधिकारों का उपयेाग करने वाले अधीनस्थों को कोई गलतफहमी न हो।''

2. **प्रत्यायोजित व्यक्ति को मालूम होना चाहिए कि कितने अधिकार प्रत्यायोजित किए गए हैंः** प्रत्यायोजन के आदेश लिखित रुप में जारी किए जाने चाहिए ताकि जिस व्यक्ति को अधिकार सौंपे गए हैं उसे प्रत्यायोजन की सीमाओं की स्पष्ट जानकारी हो।

3. **अधिकारों का प्रत्यायोजन किसी खास गतिविधि के जरिए कुछ लक्ष्य हासिल करने के लिए किया जाता हैः** अधीनस्थ, व्यक्ति को इतने अधिकार सौंपे जाने चाहिए जिससे वह अपना काम सही ढंग से पूरा कर सके। अधिकार ग्रहण करने वाले व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार काम करने का अधिकार होना चाहिए और प्रत्यायोजक को यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि वह उसी इच्छानुसार काम करेगा। अधीनस्थों को उनकी क्षमता के अनुसार सभी अधिकार और दायित्व सौंपे जाने चाहिए।

4. **अधिकार और दायित्व समान होने चाहिएः** अधिकारों के जरिए अधीनस्थ निर्धारित कार्य पूरे करने के लिए फैसले लेते हैं और उनका पालन कराते हैं जबकि दायित्वों के अन्तर्गत उस पर अपने अधिकारों के जरिए इन गतिविधियों को चलाने की जिम्मेदारी आ जाती है। ''दायित्वों के बिना अधिकार और अधिकार के बिना दायित्व निरर्थक है।'' अतः अधिकारों और दायित्वों में समानता और तालमेल होना चाहिए।

5. **वरिष्ठ अधिकारी का पूर्ण दायित्व :** चूंकि पूरे दायित्वों का प्रत्यायोजन नहीं किया जाता अतः सिर्फ अपने अधीनस्थों को अपने अधिकार सौंप देने से ही कोई वरिष्ठ अधिकारी अपनी सभी गतिविधियों की जिम्मेदारी से बच नहीं सकता। प्रत्येक अधीनस्थ अपने को सौंपी गई गतिविधियों के लिए वरिष्ठ अधिकारी के प्रति जवाबदेह होता है। लेकिन कोई भी वरिष्ठ अधिकारी अपनी पूरी जिम्मेदारी से नहीं बच सकता।

6. **प्रत्यायोजन समादेश की एकता के सिद्धान्त पर आधारित है :** अर्थात् एक अधीनस्थ को एक ही वरिष्ठ अधिकारी के प्रति जवाबदेह होना चाहिए और उसी से अधिकार प्राप्त करने चाहिए। वरिष्ठ और अधीनस्थ के बीच सीधे सम्बन्ध से भ्रम और गलतफहमी दूर हो जाती है। एक वरिष्ठ अधिकारी के प्रति जवाबदेह से निर्देशों में भिन्नता की समस्या कम हो जाती है और नतीजों के लिए अधिक जिम्मेदारी की भावना पनपती है। इसके विपरीत जिम्मेदारी पूरी तरह निश्चित नहीं की जा सकती और वरिष्ठ अधिकारी के अधिकारों को चोट पहुंचाती है।

7. **सम्पर्क की सुचारु व्यवस्था :** अर्थात् प्रत्यायोजन के बाद भी अधीनस्थ को आवश्यकता पड़ने पर प्रशासक से मिलने और विचार–विमर्श करने का अधिकार होना चाहिए। प्रशासक को अधीनस्थों के मार्गदर्शन हेतु सदैव तैयार रहना चाहिए। प्रत्यायोजित कार्य में भूल करने पर अधीनस्थ को डांटने–फटकारने के बजाय उसकी मदद करनी चाहिए और जरुरी सलाह देनी चाहिए।

8. **प्रत्यायोजन के बाद समीक्षा होनी चाहिएः** प्रत्यायोजित कार्य पूरा हो जाने के बाद अधीनस्थ के कार्य की समीक्षा की जानी चाहिए, चूंकि अधिकार ऊपर से नीचे जाते हैं। अतः ऊपर के अधिकारियों को नियंत्रण रखना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि परस्पर विरोधी नीतियों से कार्यक्रम का नुकसान न हो। इसके लिए सुचारु सूचना व्यवस्था होनी चाहिए। इससे वरिष्ठ अधिकारियों को अधीनस्थों की प्रगति की समीक्षा का अवसर मिलेगा।

9. **प्रत्यायोजन सुनियोजित और व्यवस्थित होना चाहिए :** किसी भी संगठन के प्रबन्धन में प्रत्येक पद के अधिकारों और दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण होना चाहिए और प्रत्यायोजन किसी व्यक्ति को नहीं, पद को किया जाना चाहिए।

प्रत्यायोजन के उपरोक्त सिद्धान्तों के होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि प्रत्यायोजन एक कठिन प्रक्रिया है जिसका कोई सटीक सिद्धान्त नहीं है। उपरोक्त सिद्धान्त सिर्फ, प्रशासकों के मार्गदर्शन के लिए है और वे हर मर्ज की दवा नहीं है।

10.7 प्रत्यायोजन में अड़चनें

इसमें संदेह नहीं है कि सभी संगठनों में प्रत्यायोजन की अहम् भूमिका है किन्तु अक्सर यह देखा जाता है कि वरिष्ठ अधिकारी अधिकारों को दूसरों को सौंपने में हिचकते हैं। वास्तव में प्रत्यायोजन की विभिन्न अड़चनों को दो समूहों में बांटा जा सकता है। (क) संगठनात्मक और (ख) व्यक्तिगत।

10.7.1 संगठनात्मक अड़चनें :

(1) स्थापित तरीकों और प्रक्रियाओं का अभाव : प्रत्यायोजन की सफलता के लिए आवश्यक है कि अधिकारों के प्रत्यायोजन के लिए निश्चित प्रक्रियाएं हों। सुस्थापित नियमों और प्रक्रियाओं से प्रत्यायोजन करना आसान हो जाता है।

(2) समन्वय और सम्पर्क का अभाव : समन्वय संगठन का बुनियादी सिद्धांत है। उसके बिना कोई संगठन काम नही कर सकता किन्तु समन्वय के लिए संगठन की विभिन्न इकाइयों के बीच निकट सम्पर्क आवश्यक है। उसके बिना न प्रत्यायोजन हो सकता है और न समन्वय।

(3) अस्थिर और अनावर्ती कार्यः प्रत्यायोजन के लिए स्थिरता परम आवश्यक है। स्थिर और पुनरावृत्तियुक्त कार्यो में प्रत्यायोजन अधिक सहज होता है।

(4) संगठन का आकार और स्थितिः कभी–कभी संगठन का आकार और उसकी इकाइयों की स्थिति भी प्रत्यायोजन में बाधक बन जाते है। बड़े ओर फैले हुए संगठनों में प्रत्यायोजन की आवश्यकता बढ़ जाती है।

(5) स्पष्ट पदों के अभाव और कर्तव्यों तथा अधिकारों के प्रत्यायोजन की अनिश्चित शर्तों के कारण भ्रान्ति फैलती है और अधिकारों के प्रत्यायोजन पर गलत असर पड़ता है।

इसके अलावा प्रतिनिधि मण्डल के विस्तार में विफलता के लिए निम्न कारण होते हैं–

1. गल्तियों का डर
2. पर्यवेक्षक द्वारा कार्य तेजी से किया जा सकता है मातहत की तुलना में।
3. पर्यवेक्षक प्रतिनिधि द्वारा प्रतिष्ठा खो देंगे।
4. वास्तव में मातहत अधिक काम नहीं करना चाहता।

10.7.2 व्यक्ति की अड़चनें

व्यक्तिगत कारक भी प्रत्यायोजन में बाधक होते हैं। इनमें सत्ता पर नियंत्रण रखने का अहम्, हर काम का सेहरा अपने सिर बंधवाने की प्रवृति, अधीनस्थों की ओर से वफादारी न मिलने की आशंका, प्रत्यायोजन करने वाले अधिकारी या व्यक्ति में भावनात्मक परिपक्वता की कमी, क्या और कैसे प्रत्यायोजित किया जाए, इस जानकारी का अभाव, अपने से ऊँचे अधिकारियों, विधायिका या जनता के प्रति जवाबदेही का भय आदि कारक शामिल हैं। जे0 एम0 पिफनर के अनुसार निम्नलिखित मानवीय कारणों से अधीनस्थों को अधिकार सौपे जाने की प्रक्रिया में बाधा पड़ती हैः

1. सोपानक्रम से नेतृत्व की स्थिति में पहुँचने वाले व्यक्तियों में अहम् सामान्य से अधिक होता है।

2. उन्हें डर रहता है कि दूसरे सही निर्णय नही कर पाएंगें या उन्हें सही ढंग से लागू नही कर पाएंगें।

3. उन्हें भय रहता है कि प्रभावशाली अधीनस्थों में वफादारी की कमी होगी या वे विरोधी बन जाएंगे।

4. मजबूत, बहुत और तेजी से काम करने वाले व्यक्ति, अधीनस्थों की धीमी गति और अनिश्चितता से धैर्य खो बैठते हैं।

5. लोक प्रशासन में अक्सर राजनीतिक कारणों से भी प्रत्यायोजन मुश्किल हो जाता है।

6. मानव को अधिनायकवादी प्रवृत्ति और पैतृक नेतृत्व का गुण विरासत में मिला है, अतः प्रत्यायोजन की प्रक्रिया कुछ हद तक सांस्कृतिक बदलाव पर निर्भर है।

7. प्रत्यायोजन के लिए भावनात्मक परिपक्वता आवश्यक है जो अक्सर बहुत सफल व्यक्तियों में भी मुश्किल से देखने को मिलती है।

8. नेतृत्व के गुणों (व्यक्ति के वे गुण और विशेषताएं जो दूसरों को आकर्षित करते हैं) और प्रत्यायोजन की संकल्पना में कोई तालमेल नही है। सफलता के लिए प्रयत्नशील लोगों को अपनी उपस्थिति का अहसास करना चाहिए।

9. प्रत्यायोजन के इच्छुक व्यक्ति यह नहीं जानते कि प्रत्यायोजन कैसे करें।

10. वे यह नहीं जानते कि प्रत्यायोजन किस हद तक किया जाना चाहिए। इसके दो कारण हैं– (1) संगठन और प्रबंधन की कला अभी परिपक्व नही हुई है, और

(2) उनके अनुभव ने उन्हें अनदेखी करना नहीं सिखाया है क्योंकि अधिकांश संगठनों में प्रत्यायोजन की प्रक्रिया नही अपनाई जाती।

इन अड़चनों के अलावा एक और प्रमुख अड़चन है अधीनस्थों द्वारा प्रत्यायोजन स्वीकार न करना। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं– (1) आलोचना का भय, (2) अच्छा काम करने के लिए आवश्यक जानकारी और संसाधनों का अभाव, (3) प्रत्यायोजित अधिकारों का उपयोग करने और सही निर्णय लेने के आत्मविश्वास का अभाव, (4) पहल और गतिशीलता का अभाव और (5) क्षमता से अधिक कार्य सौंप दिया जाना।

इसमें संदेह नहीं कि प्रत्यायोजन में उपरोक्त समस्याएं आती हैं किन्तु किसी संगठन में प्रत्यायोजन के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। कोई भी संगठन प्रत्यायोजन और अवक्रमण के बिना काम नही कर सकता, चूंकि प्रत्यायोजन परम आवश्यक है, अतः इन चुनौतियों का मुकाबला करने का एकमात्र रास्ता यही है कि जहां तक हो सके इनमें कमी की जाए। संगठनात्मक समस्याओं को दूर करने के लिए उचित प्रक्रियाएं और तरीके तय किए जाने चाहिए और अधिकारों के प्रत्यायोजन और दायित्वों के निर्वाह के समय सबको इनका पालन करना चाहिए। संगठनों को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिसमें संगठन के सोपानतंत्र में विभिन्न पदों पर तैनात लोगों के कर्तव्यों और दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण हो। संगठन में प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर समन्वय और सम्पर्क की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

पिफनर ने प्रत्यायोजन को कारगर बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाए हैं:

1. दायित्वों का निर्वाह करने में सक्षम अधीनस्थों का चयन करें।
2. प्रत्येक की जिम्मेदारियां स्पष्ट करें।
3. उन्हें इनके लिए प्रशिक्षण दें।
4. सामान्य नीतियां तय करके उन्हें पूरे संगठन में प्रचारित करें।
5. क्रियात्मक और व्यवस्था सम्बन्धी प्रक्रियाओं का अधिक से अधिक मानकीकरण करने की चेष्टा करें।
6. कार्य विश्लेषण, संगठनात्मक अध्ययन, बजट नियोजन, कार्य प्रगति अध्ययन और व्यवस्था तथा प्रक्रियाओं के सरलीकरण जैसा प्रबंधन नियोजन का कार्य निरन्तर करें।
7. निगरानी की ऐसी व्यवस्था करें जो स्वतः ही खतरे का संकेत देने लगें।
8. समूचे सोपानतंत्र में ऊपर, नीचे और हर दिशा में जानकारी के आदान–प्रदान की व्यवस्था करें।

10.8 प्रत्यायोजन की सीमाएं

सभी संगठनों में प्रत्यायोजन की अनिवार्यता के बारे मे कोई संदेह नही है किन्तु किसी भी प्रमुख अधिकारी को अपने सभी अधिकार प्रत्यायोजित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। सभी अधिकारों के प्रत्यायोजन से उस अधिकारी की उपस्थिति निरर्थक

हो जाती है। यद्यपि प्रत्यायोजन की सीमा, परिस्थिति, संगठनात्मक ढांचे और उदाहरण विशेष के अनुसार बदलती रहती है किन्तु कुछ सीमाएं बहुत स्पष्ट हैं। एम0 पी0 शर्मा के अनुसार निम्नलिखित अधिकारों का प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता है :

(i.) प्रथम पंक्ति या तात्कालिक अधीनस्थों के कार्य का निरीक्षण,

(ii.) आम–वित्तीय–निरीक्षण और निश्चित राशि से अधिक खर्च की स्वीकृति का अधिकार,

(iii.) नई नीतियों और योजनाओं को स्वीकृति देने और स्थापित नीतियों या व्यवस्थाओं से हटने की अनुमति का अधिकार,

(iv.) नियम बनाने का अधिकार, जहां इसे प्रत्यायोजित अधिकारी को सौंपा गया हो,

(v.) निर्धारित उच्च स्तर की नियुक्तियों का अधिकार,

(vi.) कम से कम तात्कालिक अधीनस्थों के फैसलों पर अपील की सुनवाई का अधिकार।

इन अधिकारों के बिना प्रमुख अधिकारी संगठन पर कारगर नियंत्रण नहीं रख सकता। इनके बिना वह निष्क्रिय हो जाएगा।

10.9 सारांश

प्रत्यायोजन प्रबन्धन की सबसे महत्वपूर्ण समस्या है। कोई भी संगठन प्रत्यायोजन के बिना काम नहीं कर सकता। सामान्यतः प्रत्यायोजन का अर्थ है उच्च स्तर द्वारा निचले स्तर को कुछ अधिकार सौंपना अर्थात् निश्चित उद्देश्यों के लिए दूसरों के अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित करना। प्रत्यायोजन अपरिवर्तनीय नहीं होता। प्रत्यायोजक अपने अधिकार वापस भी ले सकता है। प्रत्यायोजन कई प्रकार का हो सकता है। स्थाई और अस्थाई, पूर्ण और आंशिक, सशर्त और बिना शर्त, औपचारिक और अनौपचारिक तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष।

सभी संगठनों के लिए प्रत्यायोजन की आवश्यकता किसी से छिपी नहीं है। इससे कार्य के विभाजन और संगठनात्मक प्रक्रियाओं के संचालन में जटिलताओं को कम करने में मदद मिलती है। नीति निर्धारण और नियोजन के लिए अधिक समय मिलता है। इसका शैक्षिक महत्व भी है और अधीनस्थों को साहस और कुशलता के साथ अपने दायित्वों का निर्वाह करने का अवसर मिलता है। संगठन की कार्यप्रणाली में लचीलापन आता है। कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा उठता है और संगठन का प्रशासन सुचारु रुप से चलता है।

प्रत्यायोजनों के कुछ सिद्धान्त जिनके बिना अधिकारों का कुशल और कारगर प्रत्यायोजन होता है। प्रत्यायोजन लिखित रुप में और स्पष्ट रुप में निर्दिष्ट होना चाहिए। प्रत्यायोजन व्यक्ति को नहीं पद को होना चाहिए। प्रत्यायोजन नियोजित और व्यवस्थित होना चाहिए। पूर्ण प्रत्यायोजन सम्भव नहीं है अतः उतने ही अधिकार सौंपे जाने चाहिएँ जितनी अधीनस्थ की क्षमता हो। सूचना और समीक्षा का प्रावधान होना चाहिए। नीतियां,

नियमों और प्रक्रियाओं का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए, ताकि अधीनस्थों को सौंपे गए अधिकारों के बारे में किसी तरह का असमंजस न रहे।

प्रत्यायोजन में संगठनात्मक और व्यक्तिगत दोनों तरह की समस्याएं आती हैं। तरीकों और प्रक्रियाओं का अभाव, समन्वय और सम्पर्क के साधनों का अभाव, संगठन का आकार और स्थिति तथा व्यक्तिगत कारक जैसे अहम, अधिकारों पर कब्जा रखने की प्रवृत्ति, भावनात्मक अपरिपक्वता तथा अधिकारों का प्रत्यायोजन न करने की इच्छा आदि प्रत्यायोजन की मुख्य अड़चनें हैं।

पूर्ण प्रत्यायोजन न आवश्यक है न व्यावहारिक और न ही मुख्य अधिकारी और संगठन के हित में है। इसकी कुछ सीमाएं हैं। वित्त, समीक्षा, नीति निर्धारण और नियोजन, अधिकारों और अनुचित फैसलों के विरुद्ध अपील आदि के अधिकारों का प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता।

10.10. मुख्य शब्दावली

''कार्य विश्लेषण : कार्य के स्वरूप, विशेषताओं और गतिविधियों का निर्धारण करना और उसकी व्यवस्थित जांच करना। यह पता लगाना कि कार्य को करने के लिए कितने ज्ञान, निपुणता और अनुभव की आवश्यकता है।

कार्य–प्रगति अध्ययन : कर्मचारियों के काम करने के कार्य–कलापों और कार्य–विधियों का अध्ययन करना।

वरिष्ठः उच्च

10.11 बोध प्रश्न

1. (1) प्रत्यायोजन की व्याख्या कीजिए।
   (1) प्रत्यायोजन की तीन विशेषताएं बताइए।
   (3) प्रत्यायोजन की आवश्यकता के चार कारण बताइए।

2. (1) प्रत्यायोजन की विभिन्न किस्मों के बीच भेद कीजिए।
   (2) प्रत्यायोजन के तीन सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
   (3) प्रत्यायोजन में क्या अड़चनें हैं?
   (4) प्रत्यायोजन की सीमाओं का वर्णन कीजिए।

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखें भाग 25.2
   (1) देखें भाग 25.3
   (3) देखें भाग 25.4

2. (1) देखें भाग 25.5
   (2) देखें भाग 25.6

(3) देखें भाग 25.7
(4) देखें भाग 25.8

10.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Holzer, Marc and Schwester Richard Public Administration, New Delhi : PHI Learning, 2015.
Pfiffner, John M, and Sherwood, Frank P. 1968, Administrative Organisation; Prentice Hall of India: New Delhi.
White L.D., 1958 Introduction to Public Administration; Eurasia Publishing House (P) Ltd.: New Delhi.

इकाई– 11
निरीक्षण

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 अर्थ और परिभाषा
11.3 निरीक्षण के विभिन्न पहलू
11.3.1 एक और एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा निरीक्षण
11.4 निरीक्षण की तकनीकें
11.5 अच्छे निरीक्षक के गुण
11.6 निरीक्षक के कर्तव्य
11.7 निरीक्षकों का प्रशिक्षण
11.8 सारांश
11.9. मुख्य शब्दावली
11.10 बोध प्रश्न
11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन :

- निरीक्षण के अर्थ और महत्व को बता सकेंगे,
- निरीक्षण के विभिन्न पहलुओं और तकनीकों पर चर्चा कर सकेंगे,
- एक अच्छे निरीक्षक के गुणों को स्पष्ट करने में समर्थ होंगे।

11.1 प्रस्तावना

निरीक्षण प्रबन्ध का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य होता है। चाहे सार्वजनिक हो या निजी, हर संगठन में प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर निरीक्षण की व्यवस्था होती है। स्केलर प्रणाली में यह व्यवस्था है कि सोपानक्रम संगठन में प्रत्येक स्तर अपने तात्कालिक ऊपर के स्तर के निरीक्षण में होगा और प्रत्येक कर्मचारी अपने तात्कालिक वरिष्ठ अधिकारी के अधीन होगा। जॉन एम. पिफनर के अनुसार, ''एक लिहाज से निरीक्षण सोपानक्रम को अपने उच्च स्तर तक पहुंचा देता है। ब्यूरो–प्रमुख, प्रभागीय अध्यक्षों का निरीक्षण करता है, जो स्वयं अनुभाग के प्रधानों का निरीक्षण करते हैं। अनुभाग के प्रधान, कार्यालय के आम कर्मचारियों का निरीक्षण करते हैं।'' इसलिए हर संगठन में निरीक्षण

की व्यवस्था हर स्तर पर होती है और चोटी से नीचे तक का यह सम्बन्ध संगठन में सुसंगति लाता है।

प्रशासनिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण तंत्र पर्यवेक्षण के माध्यम से है। इसलिए सरकार के कार्यों के क्रियान्वयन में पर्यवेक्षण की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

11.2 अर्थ और परिभाषा

निरीक्षण अर्थात् सुपरविजन शब्द, 'सुपर' और 'विजन' से मिलकर बना है। इसका मतलब हुआ ऊपर से, और देखना। सीधे शब्दों में इसका अर्थ है, दूसरों के काम का निरीक्षण करने का उच्च अधिकार। यह वरिष्ठों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की गतिविधियों के निरीक्षण और दिशा–निर्देश देने का कार्य है। नकारात्मक तौर पर इसका मतलब एक संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों की गतिविधियों को निर्देशित करना, जाँच पड़ताल करना और निरीक्षण करना है। रचनात्मक रूप से इसमें निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने अधीनस्थों को दिशा निर्देश और परामर्श देने का भाव निहित है। टेरी और फ्रेंकलिन के शब्दों में, ''निरीक्षण का अर्थ बताए गए कार्य को पूरा करने के लिए कर्मचारियों तथा अन्य साधनों के प्रयासों को दिशा और निर्देश देना होता है।'' निरीक्षण की मानवीय प्रकृति पर जोर देते हुए एम0 विलियमसन ने निरीक्षण को एक ऐसी प्रक्रिया के रुप में परिभाषित किया है, ''जिसमें कार्यालय का एक निर्धारित सदस्य कर्मचारियों को उनकी जरूरतों के मुताबिक सीखने, उनके ज्ञान और कौशल का अच्छा से अच्छा उपयोग करने और उनकी योग्यता को बढ़ाने में मदद करता है ताकि वे अपने कार्य को अधिक कुशलता के साथ और स्वयं तथा एजेंसी की संतुष्टि के साथ पूरा कर सकें।" अतः निरीक्षण एक दोहरी प्रक्रिया है। एक तरफ यह दिशा निर्देश देने वाली प्रक्रिया है, दूसरी और इसका मकसद दूसरों के कार्य का अधीक्षण करना है। वास्तव में इसके कई उपादान है। हेल्से ने ठीक ही कहा है, निरीक्षण का मतलब है, "हर काम के लिए सही व्यक्ति का चयन, प्रत्येक व्यक्ति में उसके कार्य के प्रति रूचि पैदा करना और यह सिखाना कि वह इसे कैसे कर सकता है। सिखाना पूरी तरह कारगर हुआ है या नहीं, इस बारे में आश्वस्त होने के लिए उसके कामकाज और उसके स्तर को मापना, यदि आवश्यक हो तो प्रशासन की गड़बड़ियों को ठीक करना और अधिक उपयुक्त काम पर स्थानांतरित करना या जो अक्षम साबित हों उसे हटाना, प्रशंसा से अगर लाभ हो तो प्रशंसा करना और अच्छे काम के लिए पुरस्कृत करना और अंततः प्रत्येक व्यक्ति को व्यवस्थित रूप से एक कार्यकारी समूह में रखना। यह सभी कुछ निष्पक्षता, धैर्य और चालाकी से किया जाना चाहिए ताकि अपनी कार्य कुशलता, ठीक–ठाक बुद्धिमता, उत्साहपूर्वक और पूरी तरह कर सकें।''

पर्यवेक्षण बेहतर तरीके से इनपुट और आउटपुट नियंत्रण और संसाधनों का उपयोग करने के लिए फीडबैक प्रदान करता है।

11.3 निरीक्षण के विभिन्न पहलू

निरीक्षण एक व्यापक शब्द है और इसकी प्रकृति और दायरा, कार्य की किस्म और निरीक्षण किए जाने वाले लोगों के, निरीक्षण के उत्तरदायित्व की सीमा और स्तर के अनुसार बदलते रहे हैं। उदाहरण के लिए कारखानों में काम करने वाले लोग तथा उनके कार्य का निरीक्षण किसी ऑफिस के कर्मचारियों के कार्य–निरीक्षण से बिल्कुल भिन्न होगा। कुशल या पेशेवर कर्मचारियों के कार्य का निरीक्षण अकुशल कर्मचारियों के निरीक्षण से बिल्कुल भिन्न होगा क्योंकि उनका काम, काम की परिस्थितियां और समस्याएं, सब भिन्न होती हैं। इसी प्रकार उच्च स्तर पर निरीक्षण निचले स्तर की तुलना में कम बारीक और कम है और निरीक्षक से विभिन्न प्रकार के कार्य सम्पन्न करने की उम्मीद की जाती है। मार्क्स के शब्दों मे, ''निरीक्षक एक ऐसा व्यक्ति होता है, जो किए जाने वाले कार्य तथा प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित नीतियों और कार्यविधियों को जानता है और जो इन नीतियों और कार्य विधियों के ढाँचे में कर्मचारियों को काम करने के लिए प्रेरित कर सकता है। इस प्रकार उसके कार्य को इन शब्दों मे, परिभाषित किया जा सकता है– "(1) किए जाने वाले कार्य से संबंधित वास्तविक या तकनीकी कार्य (2) जिन नीतियों और कार्यविधियों के अनुसार कार्य किया जाना चाहिए उससे सम्बन्धित संस्थागत या रचनात्मक कार्य (3) कर्मचारियों की देख–रेख करने सबंधी अधिकारी।''

इस प्रकार निरीक्षक के कामकाज के तीन पहलू हैं– (1) वास्तविक या तकनीक (2) संस्थागत और (3) कार्मिक।

वास्तविक पहलू : एक निरीक्षक को अपने कार्य से संबंधित तकनीक तथा अन्य जानकारी अवश्य होनी चाहिए क्योंकि उसे अपने कार्य की योजना बनानी है, दूसरों को काम सौंपना है तथा कार्य–कलाप का स्तर निर्धारित करना है।

संस्थागत पहलू : किसी निरीक्षक को अपने अधीनस्थ एजेंसी या इकाई को मान्य नियमों और कार्यविधियों तथा नीतिगत ढाँचे के अन्तर्गत चलाना होता है। उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि काम सही ढंग से और समय पर हो सके। कर्मचारी को काम सौंपने की तथा हाजिरी की जिम्मेदारी भी उसकी होगी। अपने अधीन कार्य कर रहे कर्मचारियों के व्यक्तित्व और उनके आचारण के लिए भी निरीक्षक जिम्मेदार होगा। उपकरणों की उचित देख–रेख और उनकी सप्लाई की जिम्मेदारी भी उसकी होगी।

कार्मिक पहलू : निरीक्षक के काम का यह सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। इसमें कोई संदेह नही कि निरीक्षक को कर्मचारियों से काम लेने का अधिकार है लेकिन दूसरों से काम लेने के लिए केवल अधिकार ही पर्याप्त नही होता। काम कराने के लिए निरीक्षक को काम के प्रति कर्मचारियों में रूचि और उत्साह पैदा करना होता है। अधिकार, वास्तव में अपने भीतर से निकलता है। जैसा कि मेरी पार्कर फॉलेट ने टिप्पणी की है, ''अधिकार को एकताबद्ध करने की प्रक्रिया से उत्पन्न होना चाहिए, चूंकि प्रत्येक जीवंत प्रक्रिया अपने अधिकार के विकास की ही देन है, अथवा प्रक्रिया में खुद शामिल है, इसलिए अपने आप प्रक्रिया से ही सामाजिक नियंत्रण उत्पन्न होता है या गतिविधि या सहज उत्पन्न सामंजस्य स्वयं की नियंता है। संगठन के भीतर से ही अधिकार उत्पन्न हो

इसके लिए निरीक्षक को निश्चय ही स्वभाव से मानवीय, दयालु और उदार मन होना चाहिए और उसे मानवीय संबन्धों की कला आनी चाहिए।"

11.3.1 एक और एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा निरीक्षण

किसी संगठन में उन सभी व्यक्तियों को निरीक्षक माना जा सकता है, जो दूसरों के काम का नियंत्रण करते है, सोपानक्रम में उनका पद या दर्जा चाहे जो कुछ हो, लेकिन प्रश्न उठता है कि निरीक्षण के लिए अधिकारी एक होना चाहिए या एक से अधिक।

समावेश की एकता और सोपानक्रम के सिद्धान्तों के अनुसार किसी संगठन में हर सदस्य को किसी एक निरीक्षक के अधिकार क्षेत्र में होना चाहिए। दूसरो शब्दों मे, उसका निरीक्षण किसी एक निरीक्षक द्वारा ही किया जाना चाहिए। इसका मतलब यह है कि निरीक्षण करने वाला अधिकारी एक ही होना चाहिए, लेकिन व्यावहारिक रूप मे ऐसा नही होता क्योंकि एक निरीक्षक अपने अधीन काम करने वाले अनेक कर्मचारियों द्वारा किए जा रहे कार्य के विभिन्न पहलुओं से परिचित नहीं होता। कार्य संबंधी विशेषता की प्रक्रिया ने निरीक्षण के काम को अधिक कठिन बना दिया है। इस बात को ध्यान में रखकर वैज्ञानिक प्रबंधन आन्दोलन के जनक एफ0डब्लू0 टेलर ने उद्योगों में एक से अधिक या बहु–निरीक्षक प्रणाली की दलील दी है। उनके अनुसार कर्मचारियों के कार्य के विभिन्न पहलुओ के निरीक्षण के लिए आठ क्रियाशील या विशेषज्ञ फोरमैन का एक दल होना चाहिए। इसमें कोई संदेह नही कि प्रबंध के आधुनिक सिद्धान्त ने टेलर की एक से अधिक व्यक्तियों के निरीक्षण की अवधारणा को स्वीकार नहीं किया है। इसमें समावेश की एकता के सिद्धान्त का समर्थन किया गया है लेकिन व्यवहार में एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा निरीक्षण अब एक सच्चाई बन गया है। आधुनिक संगठनों में हमारे यहां विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा क्रियाशील निरीक्षण के साथ–साथ संगठनात्मक निरीक्षण भी चल रहा है। इस बाहुल्यता के बारे मे स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया जाता है कि ऐसे लोगों का कार्य प्रकृति में प्रशासनिक न होकर परामर्श और सुझाव वाला होता है। इसलिए कहा जा सकता है कि निरीक्षण दो प्रकार का होता है। उदाहरण के लिए लाइन और स्टाफ। लाइन निरीक्षण समावेश की पद्धति पर अपने अधीनस्थों पर नियंत्रण रखता है जबकि स्टाफ निरीक्षक कार्य के तकनीकी पहलू का नियंत्रण करते हैं। इस प्रकार दोनों साथ–साथ विद्यामान होते है यद्यपि लाइन निरीक्षक स्टाफ की अपेक्षा प्राधिकार वाला होता है।

11.4 निरीक्षण की तकनीकें

जॉन डी0 मिल्लेट के अनुसर निरीक्षण की निम्नलिखित तकनीके हैः

1. किसी कार्य संचालन एंजेंसी द्वारा कार्य शुरू होने से पहले अलग–अलग परियोजनाओं की स्वीकृति
2. सेवा मानकों की अधिघोषणा

3. कार्य के आकर पर बजट संबंधी सीमाएँ
4. मुख्य अधीनस्थ कर्मचारियों की स्वीकृति
5. काम की प्रगति के बारे मे जानकारी प्राप्त करने की प्रणाली।
6. परिणामों का निरीक्षण।

निरीक्षण की दृष्टि से उपर्युक्त सभी तकनीकें आवश्यक हैं। प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार हैः–

1. पूर्व स्वीकृतिः यह निरीक्षण की अत्यंत आम तकनीक है। इसमें कुछ काम शुरू करने या कोई नीति बनाने से पहले अधीनस्थों को वरिष्ठ अधिकारी से स्वीकृति लेनी चाहिए। यह सभी देशों में एक आम रिवाज है, सरकार की विभिन्न गतिविधियों में बड़ी परियोजनाओं में काम शुरु होने से पहले वरिष्ठ अधिकारियों की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक होता है।

इस प्रकार निरीक्षक को संगठन की नीतियों और योजनाओं के बारे में पहले से जानकारी मिल जाती है जिससे, वह परियोजना पर पूरा नियंत्रण रखने में सक्षम हो जाता है। मंजूरी देते समय वह अपने संगठन के उद्देश्यों को ध्यान में रखता है और परियोजना के कार्यक्रम में कुछ सुधार और परिवर्तन का सुझाव दे सकता है। निरीक्षक को यह जानने का मौका मिलता है कि उसकी इकाई को किस प्रकार का कार्य करना है। उसे पहले से यह जानने का अवसर भी मिलता है कि किस प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और वह उन कठिनाइयों का समाधान ढूंढता है। यदि कोई गलतफहमी हो तो उसे हल करके गलतियों को ठीक किया जा सकता है। इस प्रकार मंजूरी के स्तर पर संचालित इकाइयों के उद्देश्यों की पूरी जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार प्रबंधको को यह मालूम हो जाता है कि उसकी आम योजनाओं पर प्रतिक्रिया कैसी है और उन्हें कैसे लागू करने का प्रस्ताव है। यदि कोई गलतफहमी हो तो वास्तविक काम शुरु होने से पहले उसे दूर किया जा सकता है। यदि आम योजनाएं किसी खास स्थिति का मुकाबला करने में अक्षम हैं। तो किसी परियोजना को स्वीकार करके उसमें संशोधन किया जा सकता है।

उन क्षेत्रों में जहां एजेंसी के पास कोई अनुभव या निश्चित नीति नही है, वहां नीतियों और कार्यक्रमों के विकास का भी यह एक कारगर तरीका है। भारत में सभी सार्वजनिक संगठनों में प्रशासन के हर स्तर पर इस प्रणाली का अनुसरण किया जाता है।

''इसमें संदेह नहीं कि उच्च स्तर पर प्रबंधको के लिए संगठन में कारगर निरीक्षण में यह तरीका बहुत ही लाभदायक है लेकिन इसमें कुछ खामियां है। अक्सर इस तकनीक से विशाल परियोजना और नीतियों को लागू करने में विलम्ब होता है, लाल–फीताशाही बढ़ती है कर्मचारियों तथा निरीक्षकों के बीच तनाव पैदा होता है। कभी–कभी अनावश्यक विलम्ब से काम की गति मंद हो जाती है, संगठन अपने उद्देश्यों को सही समय पर पूरा नहीं कर पाता और उसे भारी नुकसान उठाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, तकनीक के कारण कभी–कभी प्रबंधको और कर्मचारियों के बीच झड़प हो

जाती है, एक दूसरे पर भरोसा नहीं रहता, इसलिए ऐसे मामलों मे स्वीकृति प्रदान करने वाले अधिकारियों को विवेक औक्र उदारतापूर्वक कार्य करना चाहिए। उन्हें प्रस्तावों को अनावश्यक रूप से रोक कर समय नहीं बर्बाद करना चाहिए। अगर संभव हो तो प्रशासनिक सोपानक्रम के संभावित स्तर पर स्वीकृति देने के अधिकार का विकेन्द्रीकरण करने की कोशिश करनी चाहिए।''

2. सेवा के मानक : निरीक्षण की दूसरी तकनीक है चोटी के प्रबन्धकों द्वारा परिचालन एजेंसियों के लिए कुछ मानक निश्चित करना। परिचालन इकाइयां सौंपे गए अपने काम को किस कार्यकुशलता से सम्पन्न कर रही हैं, इसका निश्चय सेवा के मानदंडों से होता है। निरीक्षक को इससे एक पैमाना मिल जाता है जिसके जरिए वह अपने अधीनस्थों के कार्य को मापता है और जो निर्धारित मानदंड तक नहीं पहुंचते उनके खिलाफ अनुशासन की कार्रवाई करता है। यह तकनीक सभी देशों में उपयोग में लाई जाती है। मिलेट के अनुसार, ''कार्य को तुरंत और सही ढंग से सम्पन्न कराने के लिए सरकार में सेवा के मानदंड आवश्यक होते हैं। किसी भी बड़े संगठन में दिनचर्या तय करना की एक निश्चित प्रवृति होती है जो सेवा करने से भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। कामकाज के बारे में यदि लगातार एक मानदंड़ स्थापित रहे तभी काम टालने की प्रवृति और विलम्ब पर काबू पाया जा सकता है।" यद्यपि मानदंडों से कार्य कुशलता में वृद्धि होती है और निरीक्षण कारगर बनता है लेकिन जो मानदंड निश्चित किया जाए वह निष्पक्ष, ठोस और रचनात्मक हों, लेकिन प्रशासनिक गतिविधियों में, जहाँ मानदंड परिमाणमूलक की अपेक्षा गुणात्मक होने चाहिए, सेवा के मानदंड स्थापित करना एक कठिन प्रक्रिया है।

3. कार्य का बजटः निरीक्षण की तकनीक का एक और महत्वपूर्ण पहलू है–बजट के प्रावधान। बजट प्रशासन पर नियंत्रण करने का एक कारगर हथियार है। काम के लिए बजट के निर्धारण से काम करने वाली एजेंसी के लिए यह निश्चित कर दिया जाता है कि उसे कितने समय में कितना काम करना है। इससे उच्च स्तर पर प्रबन्धकों का नियंत्रण प्रभावकारी बन जाता है क्योंकि काम करने वाली एजेंसियों के धन खर्च करने पर अंकुश लग जाता है और वे जब चाहे तब मुक्त होकर जितना चाहे उतना धन खर्च कर सकती है। इस तकनीक का लाभ यह है कि उच्च स्तर के प्रबंधकों को कार्य की सीमा निर्धारित करने का अवसर मिलता है और वे वास्तविक कार्य संचालन के बारे में फैसला परिचालन इकाई छोड़ देते हैं। इस प्रकार कार्य के अनुसार बजट–आबंटन एक ऐसा तरीका है, जिसमें समूचे कार्य की मात्रा पर केंन्द्रीय नियंत्रण बनाए रखते हुए अधिकार सौंपने और स्थानीय स्तर पर पहल को प्रोत्साहन के अवसर दिये जाते हैं।

यह एक अच्छा तरीका है क्योंकि इसमें केन्द्रीय नियंत्रण की व्यवस्था पर कोई विपरीत असर डाले बगैर स्थानीय स्तर पर पहल को प्रोत्साहन मिलता है। यह तरीका आमतौर पर बड़े उद्योगों और व्यावसायिक इकाईयो में स्तेमाल होता है। यहाँ तक कि

सार्वजनिक प्रतिष्ठानों और प्रशासनिक विभागों ने परिचालन एजेंसियों पर नियंत्रण के लिए इस तकनीक का स्तेमाल करना शुरू कर दिया है।

4. कर्मचारियों की स्वीकृतिः सरकारी एजेंसियों में निरीक्षण की एक अन्य प्रचलित तकनीक है, कर्मचारियों के चयन और नियुक्ति को स्वीकृति देने का अधिकार। इससे उच्च स्तर के प्रबंधकों के लिए संगठन पर कारगर ढंग से नियंत्रण करना असान बन जाता है। वास्तविक रूप से किसी भी सरकारी एजेंसी को कर्मचारियों की भर्ती के मामले में पूर्ण स्वतंत्रता नहीं होती। परिचालन एजेंसियों के ऐसे अधीनस्थ कर्मचारियों की भर्ती की अनुमति होती है, जिनका कोई महत्व नहीं होता है। आमतौर पर किन्हीं सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के लिए भर्ती लोकसेवा आयोग जैसी एक केंन्द्रीय कार्मिक एजेंसी के जरिए की जाती है। अधीनस्थ परिचालन एजेंसियों द्वारा दी गई नियुक्तियों को स्वीकृति देने का अधिकार केन्द्रीय कार्मिक एजेंसी को होता है।

5. रिपोर्टिगः निरीक्षण की यह एक महत्वपूर्ण तकनीक है। उच्च स्तर के प्रबंधकों को विभिन्न संचालन इकाईयों की रिपोर्ट मिलती है। इन रिपोर्टों के आधार पर उच्च स्तर के प्रबंधक या निरीक्षक परिचालन इकाइयों के वास्तविक कामकाज का मूल्यांकन कर सकते हैं। ये रिपोर्ट जरूरत के अनुसार दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, तिमाही, छमाही या वार्षिक आधार पर भेजी जाती है। ये रिपोर्ट विस्तृत या आकंड़ो में हो सकती है। इनमें सभी प्रमुख गतिविधियों का सारांश हो सकता है या इनमें कुछ जरूरी बातें हो सकती हैं इनमें कार्य की उपलब्धियों या खामियों पर बल दिया जा सकता है। इकाई से मिली रिपोर्ट के विश्लेषण के बाद निरीक्षक या नियंत्रण करने वाली एजेंसी संबद्ध व्यक्तियों को खामियां बताकर भविष्य में उन्हें दूर करने के लिए प्रेरित कर सकती है। कुछ मामलों में निरीक्षक अपने अधीनस्थों को चेतावनी दे सकता है और उन्हें नए निर्देश दे सकता है।

6. जांच पड़ताल : यह भी निरीक्षण की एक महत्वपूर्ण तकनीक है। जांच–पड़ताल का मुख्य उद्देश्य यह देखना है कि क्षेत्र एजेंसियां निर्धारित मानकों, नियमों और कार्य विधियों के अनुसार काम कर रही हैं या नहीं। उनका काम क्या केन्द्रीय कार्यालय या मुख्यालय की आशाओं के अनुरूप है? जॉच पड़ताल से निरीक्षक जरूरी सूचना प्राप्त कर सकता है और उसे उच्च अधिकारियों के पास भेज सकता है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि जांच पड़ताल महज गलती ढूंढने की प्रक्रिया है। वास्तव में इसका मकसद जानकारी प्राप्त करना है। प्रबंधकों के उद्देश्यों और इरादों को स्पष्ट करने में इससे मदद मिलती है। यह उच्च स्तर पर प्रबंधकों को अधीनस्थ स्तर पर प्रबंधकों के सम्मुख उपस्थित परिचालन संबन्धी समस्याओं की जानकारी देने में मदद करता है। यह परस्पर जान–पहचान और विश्वास के व्यक्तिगत संबंधों को बढ़ाने में सहायक होता है। लियोनार्ड डी0 व्हाइट ने निरीक्षण शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि इसमें निम्नलिखित बातें शामिल हैंः 1– कानून या प्रशासनिक नियम या आदेश द्वारा निर्धारित मानक 2– व्यक्तियों द्वारा इन मानकों का पालन करना अनिवार्य है। पालन न करने पर दंड की व्यवस्था है 3– निरीक्षण कराना आवश्क है

4– आदेशों का परिपालन हो रहा है या नही, यह कार्य–स्थल पर जाकर देखना चाहिए
5– परिपाालन के सुनिश्चत करने के लिए आदेश में आवश्यकतानुसार फेर–बदल करना
6– इससे आमतौर पर दूसरों के विरूद्ध प्रशासनिक अपील करने का अवसर मिलता है
7– और अदालती मामले की समीक्षा का अवसर मिलता है।

11.5 अच्छे निरीक्षक के गुण

निरीक्षण के लिए अच्छे निरीक्षकों की जरूरत होती है। कुछ लोगों की धारणा यह है कि निरीक्षक जन्मजात होते हैं, उन्हें बनाया नहीं जाता, लेकिन ये गुण आकर्षक व्यक्तित्व, अच्छा स्वास्थ्य, अच्छी समझ, विश्वसनीय और संगठन के प्रति निष्ठा जैसे व्यक्तिगत गुणों तक सीमित होते हैं। लेकिन इन व्यक्तिगत गुणों के अलावा कुछ ऐसे गुण भी होते हैं जिन्हें अच्छा निरीक्षक बनने के लिए हासिल करना चाहिए। इसलिए एक अच्छे निरीक्षक में व्यक्तिगत और अर्जित दोनों ही प्रकार के गुण होने चाहिए। प्रोफेसर पिफनरू ने एक अच्छे निरीक्षक के निम्नलिखित गुणों का उल्लेख किया हैः

1. कार्य पर पूरा नियंत्रण अर्थात् जिस कार्य का निरीक्षण करना है, उसका विशिष्ठ ज्ञान होना चाहिए।

2. न्याय, निष्ठा, ईमानदारी, दूसरों के साथ सहयोग करने, उन्हें कार्य के लिए आकर्षित करने, प्रेरित करने, उत्साहित करने और कार्य के लिए एक जुट करने जैसी व्यक्तिगत योग्यताएँ।

3. सिखाने की क्षमता अर्थात कर्मचारियों से बातचीत करने और उन्हे प्रबंधकों का दृष्टिकोण समझाने की योग्यता।

4. आम दृष्टिकोण, अर्थात निरीक्षक को अपना कार्य पसंद हो और वह उसमें रमा हो तथा अधीन काम करने वालों को प्रेरित करें।

5. साहस और सहनशीलता अर्थात् फैसला लेने एवं जिम्मेदारी संभालने की योग्यता।

6. नीतिपरक और नैतिक सोच अर्थात् उन दुर्गुणों से मुक्त, जिन्हें समाज स्वीकृति नहीं देता,

7. प्रशासनिक टैक्नोलॉजी अर्थात् प्रबंध, संगठन और तालमेल बनाने की क्षमता, और

8. उत्सुकता एवं बौद्धिक क्षमता अर्थात् सजगता और नए विचारों और व्यवहारों को ग्रहण करने की क्षमता।

हेल्से के अनुसार एक अच्छे निरीक्षक को निम्नलिखित गुणों का विकास अवश्य करना चाहिए।

1. पक्कापन : एक निरीक्षक को चाहिए कि वह मसले से संबद्ध सारी जानकारी एकत्र करे और ऐसा करते समय प्रत्येक आवश्यक ब्यौरे का ध्यान रखे।

2. निष्पक्षता : इसमें कर्मचारियों के प्रति न्याय, उदारता और सच्चाई–की भावना होनी चाहिए।

3. पहल : यह साहस, आत्मविश्वास और निश्चयात्मकता का मिला–जुला रूप है।

4. कार्य कौशल : यह दूसरों की निष्ठा और समर्थन प्राप्त करने की योग्यता है जिसमें व्यक्ति अपने कथन और कार्यों के जरिए दूसरों को यह अहसास कराता है कि जो कुछ भी हो रहा है, उसमें वे महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

5. उत्साह : यह किसी उद्देश्य के प्रति तीव्र और उत्कट रूचि और निष्ठा का प्रयत्न या एक आदर्श है।

6. भावात्मक नियंत्रण : इसका मतलब भावना रहित होना नहीं बल्कि उन्हें सही दिशा में मोड़ने के लिए नियमित और नियोजित करना है।

लेकिन एक निरीक्षक की सबसे आवश्यक योग्यता निरीक्षक के मानवीय संबन्धों का पहलू है। आज समावेश का स्थान अनुनय ने ले लिया है और एक निरीक्षक की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके अपने अधीनस्थों के साथ व्यक्तिगत संबन्ध कैसे हैं। यह मानना सही है कि निरीक्षक के पद के लिए वांछनीय नेतृत्व पद्धति ऐसे व्यवहार पर आधारित है, जिसमें आम कर्मचारियों के अहम् की तुष्टि के लिए सहयोग, साझीदारी और परामर्श पर बल दिया गया है। लेकिन एक सक्षम नेता को अपनी बात मनवाने और आत्म प्रदर्शन की अपनी स्वाभाविक इच्छा को दबाना होगा। अतः निरीक्षक को मानवीय तत्व का हमेशा ध्यान रखना चाहिए और सद्भाव तथा समझाने–बुझाने वाले व्यवहार के जरिए अपने अधीनस्थों का विश्वास जीतने की कोशिश करनी चाहिए। उसका प्रबंध की साझीदारी में विश्वास होना चाहिए और अपने अधीनस्थों के प्रति मददगार तथा प्रोत्साहन वाला रवैया अपनाना चाहिए।

11.6 निरीक्षक के कर्तव्य

एक निरीक्षक से निम्नलिखित कार्यो की उम्मीद की जाती हैः

1. अपने पद के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को समझना।
2. कार्य के क्रियान्वयन की योजना बनाना।
3. अधीनस्थों में कार्य का वितरण करना।
4. अधीनस्थों को उनके कार्य के क्षेत्र में प्रशिक्षित करना।
5. कर्मचारियों के काम का मूल्याँकन करना और उन पर नजर रखना।
6. गलतियों को ठीक करना और कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान करना।
7. नीतियों और उनमें परिवर्तनों के बारे में अधीनस्थों को जानकारी देते रहना।
8. सहकर्मियों से सहयोग करना और जब भी जरूरत पड़े उनसे सलाह और सहायता लेना।
9. अधीनस्थों की शिकायतों और सुझावों पर ध्यान देना।

11.7 निरीक्षकों का प्रशिक्षण

आमतौर पर यह महसूस किया जाता है कि अच्छा निरीक्षक वह है जिसमें कुछ अंतर्निहित गुण होते हैं। यह कुछ हद तक सही है लेकिन बिना उचित प्रशिक्षण के, अंतर्निहित गुणों का कोई फायदा नही होता। हेस्ले के अनुसार, ''कई बार यह सिद्ध हो चुका है कि समान्य बुद्धि और ईमानदारी से लोगों की सेवा के लिए इच्छुक लगभग सभी व्यक्ति निरीक्षण करने के क्षेत्र में पर्याप्त कौशल प्राप्त कर सकते हैं, मगर उन्हें इसके सिद्धातों और तरीकों को सीखना होगा और उन्हें सोच समझकर ईमानदारी और दृढ़ता से पूरी तरह लागू करना होगा।" निरीक्षकों को प्रशिक्षित करने का कोई निश्चित तरीका नही है। अलग–अलग संगठनों में अलग तरीके इस्तेमाल किए जाते है। फिर भी निरीक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए निम्नलिखित तरीके इस्तेमाल किए जा सकते हैः

(क) सम्मेलन विधिः निरीक्षकों को उनके काम में प्रशिक्षित करने के लिए सम्मेलन विधि का उपयोग किया जा सकता है। सम्मेलन के लिए सावधानीपूर्वक योजना बनाने और कुशलतापूर्वक निर्देशन की जरूरत होती है। सम्मेलन का नेता उच्च स्तर के प्रबंधन का सदस्य हो सकता है। आम तौर पर इन सम्मेलनों में निम्नलिखित बातों पर विचार–विमर्श किया जाता हैः

(i.) कर्मचारी का मनोबल और कर्मचारी–नियोक्ता संबन्ध;
(ii.) कर्मचारियों या अधीनस्थों की समस्या का समाधान कैसे हो;
(iii.) काम का मूल्याँकन;
(iv.) योग्यता का निर्धारण;
(v.) काम का सरलीकरण;
(vi.) कार्यालय की नीतियाँ और नियम।

(ख) कार्य के दौरान प्रशिक्षणः जहाँ निरीक्षक के प्रशिक्षण की कोई नियोजित व्यवस्था नहीं है, वहाँ कार्य के दौरान प्रशिक्षण पर्याप्त माना जाता है। यह बहुत ही धीमी विधि है। नियोजित दृष्टिकोण निश्चित रूप से कार्य के दौरान प्रशिक्षण से बेहतर होता है।

(ग) अध्ययनरत या निरीक्षक के सहायक का प्रशिक्षण : यह भी कार्य के दौरान प्रशिक्षण का ही रुप है, लेकिन इसमें फर्क यह है कि निरीक्षक के अधीन एक सहायक नियुक्त किया जाता है, जिसे निरीक्षक के कार्य के साथ परिचित होने के लिए नियमित काम और दायित्व सौंपा जाता है। निरीक्षक सहायक की गलती बताता है। इस प्रणाली का आम तौर पर निरीक्षक समर्थन नहीं करते क्योंकि उनके अधीन नियुक्त किये जाने वाले सहायक उनके रहस्य जान लेते हैं।

11.8 सारांश

निरीक्षण प्रबन्ध का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर निरीक्षण की व्यवस्था के बगैर कोई संगठन काम नहीं कर सकता। निरीक्षण में निर्धारित

लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अधीनस्थ कर्मचारियों को दिशा–निर्देश देने की व्यवस्था होती है। यह दिशा–निर्देशक तथा अधीक्षक दोनों ही से सम्बद्ध प्रक्रिया है।

चूंकि निरीक्षण एक व्यापक शब्द है– इसकी प्रकृति और दायरे में अन्तर होता है। निरीक्षण के तीन मुख्य पहलू होते हैं। (क) वास्तविक पहलू (ख) संस्थागत पहलू तथा (ग) कार्मिक पहलू। निरीक्षण अधिकारी एक या कई हो सकते हैं।

चूंकि निरीक्षण, दिशा–निर्देश और अधीक्षण दोनों की प्रक्रिया है। अतः यह कई तरीके से लागू की जा सकती है– उदाहरण के लिए (1) पूर्व स्वीकृति (2) सेवा के मानदण्ड (3) कार्य का बजट (4) कर्मचारियों की स्वीकृति (5) रिर्पोटिंग और (6) जांच–पड़ताल।

निरीक्षण के लिए एक अच्छे निरीक्षक की जरुरत होती है। उसे प्रशिक्षित होना चाहिए और अपने काम का ज्ञान होना चाहिए।

11.9. मुख्य शब्दावली

परियोजनाएः किसी कार्य, व्यक्ति या विषय–विशेष के सम्बन्ध में बनाई गई विशेष योजनाएं।

मानदंड : किसी वस्तु के मूल्यांकन का निर्धारित मानक।

विकेन्द्रीकरण : किन्हीं कार्यों या अधिकारों को एक स्थान पर केन्द्रित न करके विभिन्न व्यक्तियों या स्थानों में विभाजित कर देना।

लालफीताशाहीः सरकारी कागज–पत्रों या फाइलों को बांधने वाला लाल फीता; तथा सरकारी कार्यों के पूर्ण होने में लगने वाली देरी।

11.10 बोध प्रश्न

1. (1) निरीक्षण की व्याख्या करें।
   (2) निरीक्षण के वास्तविक और संस्थागत पहलुओं को स्पष्ट करें।
   (3) एक और एक से अधिक निरीक्षण के बीच अंतर स्पष्ट करें।
   (4) निरीक्षण की तकनीक के रूप में सेवा के मानदंडों की व्याख्या करें।
   (5) निरीक्षण की एक तकनीक के रूप में जांच–पड़ताल के महत्व पर प्रकाश डालें।

2. (1) अच्छे निरीक्षण के गुण क्या हैं? कोई चार गुण बताइए।
   (2) एक निरीक्षक के पांच कर्त्तव्यों का उल्लेख करें।
   (3) निरीक्षक के प्रशिक्षण के विभिन्न तरीकों को स्पष्ट करें।

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखें भाग 26.2
   (2) देखें भाग 26.3
   (3) देखें भाग 26.3.1

(4) देखें भाग 26.4
(5) देखें भाग 26.5

2. (1) देखें भाग 26.5
(2) देखें भाग 26.6
(3) देखें भाग 26.7

11.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Halsey, G.D.., 1953, Supervising people, Harper & Brothers: New York.
Henry, Nicholas, Public Administration and Public Affairs, New Delhi : PHI Learning, 2015
Millet John D., 1954 Management of Public Service. McGraw Hills, New York.
Terry R. George etc., 1987, Principles of Management, All India Traveller Book-Sellter; New Delhi
White, L.D., 1964, Introduction to the Study of Public Administration. Eurasia Publishing Home Pvt. Ltd., New Delhi.

इकाई– 12
संचार

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 अर्थ और परिभाषाएं
12.3 संचार व्यवस्था के तत्व
12.4 संचार की आवश्यकताएं
12.5 संचार के प्रकार
12.6 संचार के माध्यम
12.7 संचार प्रक्रिया में बाधक तत्व
12.8 सारांश
12.9. मुख्य शब्दावली
12.10 बोध प्रश्न
12.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य :

- प्रशासन में संचार के अर्थ और महत्व को समझ सकेंगे,
- संचार व्यवस्था के मुख्य और आवश्यक तत्वों को पहचान सकेंगे,
- संचार की विभिन्न किस्मों में भेद कर सकेंगे,
- संचार के विभिन्न माध्यमों की चर्चा कर सकेंगें; और
- कारगर संचार व्यवस्था में बाधक तत्वों का विश्लेषण कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

प्रशासनिक सिद्धान्त और संगठन में संचार सबसे चर्चित विषय है लेकिन इसका विश्लेषण पर्याप्त नहीं हुआ है। फ्रेड लूथन्स का कहना है, ''कुछ अनुमानों के अनुसार मानव जीवन के तीन चौथाई सक्रिय हिस्से में इसका इस्तेमाल होता है और किसी प्रबन्धक के जीवन में तो यह अनुपात और भी अधिक है।" दुनिया में कई समस्याओं का मूल कारण और कम से कम व्यक्ति–व्यक्ति के बीच की समस्याओं का मूल कारण तो यह है ही, कि व्यक्ति उतनी अच्छी तरह से अपनी बात दूसरों तक नहीं पहुंचा पाता जितनी अच्छी तरह वह समझता है। संचार की संकल्पना अन्य संकल्पनाओं जैसे–

अभिप्रेरण, समन्वय, नेतृत्व, संरचना आदि तथा संगठनों में निर्णय लेने की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है।

12.2 अर्थ और परिभाषाएं

संचार संगठन का एक प्रमुख सिद्धान्त है। संगठन के लक्ष्यों को हासिल करने का यह एक कारगर साधन है। छोटे हों या बड़े, सहज हों या जटिल, सामान्य हों या तकनीकी, सभी संगठनों में संचार व्यवस्था आवश्यक है। इसकी भूमिका निर्णायक है, क्योंकि संगठन के सभी अन्य सिद्धान्तों के कार्यकलाप उसकी उपलब्धता और प्रभावशीलता पर ही निर्भर करते हैं। यही नहीं संचार, व्यक्ति के उत्साही और सहयोग–सम्पर्कों को प्रेरित करने का एकमात्र साधन है।

पिफनरु संचार को ''प्रबन्ध का मूल आधार'' मानते हैं। मिलेट के अनुसार, ''यह प्रशासनिक संगठन की जान है।'' ओर्डवे टेड ने संचार के बारे में लिखा है कि संचार मूलतः ''वह प्रक्रिया है, जिससे एक व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को दूसरों तक पहुंचाता है।'' पीटर ड्रकर ने संचार की परिभाषा देते हुए कहा है कि ''यह एक उद्यम के भीतर विभिन्न क्रियात्मक समूहों की वह क्षमता है जिसके जरिए वे एक–दूसरे को तथा एक–दूसरे के कार्यों और चिन्ताओं को समझते हैं।'' यदि प्रबन्धन में उच्च अधिकारियों में निचले स्तर पर कार्यरत् व्यक्तियों के व्यवहार को समझने का ज्ञान और कल्पनाशक्ति नहीं है तो संचार सम्पर्क कायम कर पाना कठिन है। संचार की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं :

''दो या दो से अधिक लोगों के बीच आपसी सूझबूझ के आदान–प्रदान की प्रक्रिया का नाम ही संचार है।''

''संचार किसी भी कारगर तरीके से विचारों का परस्पर आदान–प्रदान है।''

''मौखिक, लिखित या सांकेतिक रुप से विचार, राय या सूचनाओं का आदान–प्रदान ही संचार है।''

''जीवन में कुछ वांछित व्यवहार उत्पन्न कराने के लिए वातावरण को प्रोत्साहित कराने की व्यवस्था ही संचार है।''

सामान्यतः संचार शब्द का उपयोग जानकारी प्रदान करने या सूचना के सम्प्रेषण के लिए किया जाता है किन्तु, व्यापक सन्दर्भों में, इसमें विचारों का आदान–प्रदान, विचारों में साझेदारी और सहयोग की भावना शामिल है। अतः संचार का मूल तत्व, सूचना नहीं समझना है। कुछ संगठनों में संचार व्यवस्था आन्तरिक, बाहरी और पारस्परिक भी हो सकती है। आन्तरिक संचार व्यवस्था संगठन को अपने कर्मचारियों से जोड़ती है। बाहरी व्यवस्था संगठन और आम जनता के बीच सम्पर्क स्थापित करती है जिसे ''जनसम्पर्क'' कहते हैं। पारस्परिक संचार व्यवस्था संगठन के कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों से सम्बद्ध है। संक्षेप में संचार का अर्थ है ''सांझे उद्देश्य की सांझी समझ।''

12.3 संचार व्यवस्था के तत्व

संचार व्यवस्था के पाँच मुख्य तत्व हैं।

इनमें सबसे पहला संप्रेषण यानी सूचना भेजने वाला। उसे वक्ता, प्रेषण या सुझाव देने वाला, कुछ भी कहा जा सकता है। कुछ सरकारी एजेंसियों में प्रबन्धन प्रेषक का काम करता है, जिसमें प्रशासक और अधीनस्थ शामिल होते हैं। सभी आदेश और निर्देश मुख्य अधिकारी के नाम से जारी किए जाते हैं। वह इन्हें खुद तैयार नहीं करता किन्तु उसके सहायक कर्मचारी इन्हें तैयार करके जारी करते हैं। इससे उद्देश्य और दिशा में एकरुपता रहती है और निर्देशों में विरोधाभास नहीं होता।

सम्प्रेषण–प्रक्रिया इसका दूसरा तत्व है। संदेशों के आदान–प्रदान के लिए संगठन में कुछ माध्यम होने चाहिए। जैसे, टेलीटाइप, तार, रेडियो और डाक आदि। संगठन में संदेशों का प्रसार ढंग से हो और सही संदेश सही व्यक्ति तक पहुंचे, यह जिम्मेदारी सम्प्रेषण केन्द्र की है।

तीसरा तत्व है– संचार का रुप। यह आदेश, नियम, पुस्तिका, पत्र, रिपोर्ट, व्यवस्था, प्रपत्र आदि किसी भी रुप में हो सकता है। सामान्यतः इसके तीन रुप हैं : ग्राहकों के साथ संगठन के सम्बन्धों का संचालन करने वाले नियम और व्यवस्थाएं जिनकी जानकारी संगठन के सभी कर्मचारियों को होना आवश्यक है ताकि इनका सही ढंग से पालन किया जा सके; प्रशासन के सक्रिय निर्देश जिनमें विभिन्न आदेश, प्रपत्र, नियम पुस्तिकाएं और अनौपचारिक पत्र शामिल हैं, इनमें आन्तरिक संगठन और प्रक्रियाओं का निर्धारण किया जाता है और कुछ सूचनात्मक माध्यम जैसे संगठन की अपनी कोई पत्रिका, प्रशिक्षण पुस्तिका, सामयिक रिपोर्ट और प्रबन्धकों के सामान्य निर्देशों का प्रसार करने के अन्य तरीके।

संग्राहक या सन्देश प्राप्त करने वाला संचार का चौथा तत्व है। इसके लिए संगठन को सुनिश्चित करना चाहिए कि व्यक्तियों को मिलने वाली सूचनाएं और निर्देश संगठन द्वारा निर्धारित हों। प्रत्येक संदेश व्यवहार को प्रभावित करने की प्रक्रिया में शामिल प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचना चाहिए।

वांछित प्रतिक्रिया इसका पांचवां और अंतिम तत्व है। इसके अन्तर्गत उच्च अधिकारी चाहते हैं कि औपचारिक जवाबों और रिपोर्टों के जरिए उन्हें बताया जाए कि निर्देशों का पालन हो रहा है या नहीं। इससे उन्हें मालूम होता है कि सूचना या निर्देशों ने संग्राहकों के प्रशासनिक व्यवहार को प्रभावित किया है या नहीं। संगठन में नीचे से ऊपर को सूचना के पर्याप्त प्रवाह से ऐसा करना सम्भव है।

12.4 संचार की आवश्यकताएं

टैरी के अनुसार संचार व्यवस्था को कारगर बनाने वाली आठ मूलभूत आवश्यकताएं इस प्रकार हैं: (1) अपने आप पूरी जानकारी रखिए; (2) एक दूसरे में आपसी विश्वास पैदा कीजिए; (3) अनुभव के समान आधारों का पता लगाइए; (4) एक दूसरे को ज्ञात शब्दों का इस्तेमाल कीजिए; (5) सन्दर्भ का पूरा ध्यान रखिए; (6) संग्राहक

का ध्यान आकर्षित करके उसकी दिलचस्पी बनाए रखिए; (7) उदाहरणों और दृश्य साधनों का उपयोग कीजिए; और (8) देर से प्रतिक्रिया देने की आदत डालिए। किन्तु रिचर्ड्स और नीलेन्डर की राय में इससे प्रबन्धक वर्ग की नीतियों, कार्यक्रमों और रीति–रिवाजों की झलक मिलनी चाहिए। मिलेट ने सात कारक बताए हैं संदेश– स्पष्ट, संग्राहक की अपेक्षाओं के अनुरुप, सामयिक, एकरुप, लचीला और स्वीकार्य होना चाहिए।

प्रबन्धकों के लिए जरुरी है कि वे सम्प्रेषण से पहले अपने विचार स्पष्ट कर दें। संग्राहकों को सही और सटीक सूचना प्रदान करने के लिए जरुरी है कि उन्हें स्पष्ट रुप से बताया जाए कि निर्णय प्रक्रिया क्या है, किस प्रकार कार्रवाई करनी है और कितना समय है। इससे कारगर संचार सम्पर्क कायम करने में मदद मिलेगी।

दूसरा कारक यह है कि प्रेषक को खुद यह सोच लेना चाहिए कि वह संदेश क्यों भेज रहा है और इस संदेश का मुख्य उद्देश्य क्या है।

तीसरी बात यह है कि संदेशों से पर्याप्त सूचना मिलनी चाहिए ताकि उसे ग्रहण करने वाले वांछित प्रतिक्रिया दे सकें। पहले से यह अंदाज लगा लेना चाहिए कि इसमें कुल कितने साधन और जनशक्ति शामिल होगी। संदेश न तो बहुत बड़ा होना चाहिए न उन्हें बार–बार दोहराया जाना चाहिए।

चौथा कारक यह है कि सभी संदेश समय पर मिलने चाहिएं ताकि प्राप्त करने वाले के पास उस पर अमल करने के लिए पर्याप्त समय रहे।

पांचवा कारक है एकरुपता। ऐसे मामलों में संदेशों में एकरुपता रहनी चाहिए, जहां प्राप्त करने वालों से एक ही प्रकार के व्यवहार या कार्रवाई की अपेक्षा की जाती हो।

छठा कारक है लचीलापन, यानी संदेशों में लचीनेपन की गुंजाइश होनी चाहिए। ''उच्च स्तर के प्रबन्धक धीरे–धीरे सीख जाते हैं कि अधीनस्थों को मोटे तौर पर उद्देश्य और सामान्य आशय की जानकारी देना ही काफी है। उस पर सही निर्णय और अमल का काम व्यक्ति पर छोड़ दिया जाना चाहिए। अतः वे प्रेषण ज्यादा कारगर प्रतीत होते हैं जो हर बात का विवरण बहुत अधिक निश्चित करने के बजाय परिस्थिति विशेष के अनुसार फेरबदल की छूट देते हैं।''

अन्त में संदेशों से स्वीकार्यता को बढ़ावा मिलना चाहिए। इसके लिए पिछले समझौतों या सहमतियों का हवाला दिया जा सकता है या कार्रवाई के लिए नई परिस्थितियों की तरफ ध्यान आकर्षित किया जा सकता है।

अमेरिकन मैनेजमेंट एसोसिएशन ने अच्छी संचार व्यवस्था के लिए निम्नलिखित दस सूत्र बताए हैं :

1. संप्रेषण से पहले अपने विचारों को स्पष्ट कर लीजिए।

2. खुद यह जांच लीजिए कि आप संदेश क्यों भेज रहे हैं और उसका वास्तविक उद्देश्य क्या है।

3. संदेश को संप्रेषित करने से पहले यह अंदाज लगा लीजिए कि आप जो प्रक्रिया शुरु करना चाहते हैं, उसमें कुल कितनी जन–शक्ति और साधन खर्च होंगे।

4. योजना बनाने से पहले दूसरों से सलाह–मशविरा कर लें, क्योंकि हमारी आत्मपरकता/स्वयं–निर्मित संचार व्यवस्था को विपरीत रुप से प्रभावित करती है।

5. इस बात का पूरा ध्यान रखिए कि संदेश में क्या बात कही गई है क्योंकि उलझी हुई भाषा से संदेश ही निरर्थक हो जाएगा।

6. मूल संदेश के साथ–साथ अन्य बातें भी बताइये क्योंकि संदेश ग्रहण करने वाला सिर्फ आपके आदेश का ही इंतजार नहीं कर रहा है, बल्कि वह मार्गदर्शन, सहायता और अपने काम के लिए अधिक सराहना पाने को उत्सुक रहता है। यदि संदेश से यह आभास नहीं मिलता कि उसके लिए दूसरे रास्ते भी उपलब्ध हैं तो शायद वह ऐसी निराशा में भटक सकता है जहां खास तौर पर आदेश मिलने पर भी वह जाने से इनकार कर सकता है।

7. अपना संदेश भेजने के बाद उस पर आगे की कार्रवाई भी कीजिए। संचार एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो पत्र या संदेश के प्रसाारण तक ही समाप्त नहीं हो जाती। उसे हर मोड़ पर निरन्तर मजबूत करना और निगरानी रखना आवश्यक है। इससे संदेश की प्रभावशीलता बनी रहती है और लक्ष्य प्राप्ति तक वह चलता रहता है।

8. आपका संदेश आज के साथ–साथ कल के लिए भी उपयोगी होना चाहिए। अर्थात् संप्रेषक को अपनी ऐसी छवि बनानी चाहिए कि वह एक जानकार, समझदार और विवेकशील व्यक्ति है। इससे वह भविष्य में बढ़िया संप्रेषक बन सकता है जो लोग आज उसकी बात को गंभीरता से नहीं लेते वे भी धीरे–धीरे उसका लोहा मानने लगेंगे।

9. संचार का अर्थ सिर्फ पत्र लिखने तक ही सीमित नहीं है। उसके साथ कार्रवाई भी जरुरी है। संदेश प्राप्त करने वाले को भेजने वाले के व्यवहार का भी अंदाजा रहना चाहिए।

10. अपनी बात दूसरों को समझाने से पहले उन्हें समझिए। आमतौर पर परिस्थितियों को सही ढंग से समझने के लिए, असहाय अधीनस्थों पर अपने विचार थोपने, से ज्यादा अकलमंदी की जरुरत होती है। यदि कोई उदासीन है तो दूसरों को समझना आसान नहीं है। इससे साझे उद्देश्य की साझी समझ विकसित करने में मदद मिलती है। इन आवश्यक सूत्रों का पालन न होने पर संचार की प्रक्रिया छिन्न–भिन्न हो सकती है।

चेस्टर बर्नार्ड उन प्रमुख विद्वानों में से एक थे जिन्होंने सबसे पहले यह माना कि संगठनों पर अधिकार और नियंत्रण रखने के लिए संचार बहुत महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार किसी भी संगठन में अधिकार और नियंत्रण रखने के लिए निम्नलिखित सात तत्व महत्वपूर्ण हैं :

1. संचार के माध्यम निश्चित और सबको ज्ञात होने चाहिए;
2. संगठन के प्रत्येक सदस्य से सम्पर्क का एक निश्चित औपचारिक माध्यम होना चाहिए,
3. जहां तक हो सके संचार तंत्र सीधा और छोटा होना चाहिए,
4. सामान्यतः संचार के लिए पूर्ण औपचारिक तंत्र का उपयोग किया जाना चाहिए,
5. संचार केन्द्रों के रुप में कार्यरत व्यक्तियों का योग्य होना आवश्यक है,

6. संगठन जब कार्यरत हो तो संचार तंत्र में बाधा नहीं पड़नी चाहिए, और
7. प्रत्येक संदेश प्रामाणिक होना चाहिए।

12.5 संचार के प्रकार

संचार के प्रवाह की दिशा के आधार पर उसके तीन प्रकार माने जाते हैं– अधोमुखी, उर्ध्वमुखी और पार्श्विक। इन तीनों प्रकारों की संक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक है। इन औपचारिक प्रकारों के साथ संचार के कुछ अनौपचारिक प्रकार भी होते हैं।

अधोमुखी संचार : इसका अर्थ है संगठन के वरिष्ठ अधिकारियों से निर्देशों और अन्य औपचारिक संदेशों का अधीनस्थ कर्मचारियों की ओर प्रवाह। यह निर्देश सोपानतंत्र में ऊपर से नीचे की ओर चलते हैं और सबसे निचले अधिकारी तक पहुंच जाते हैं। उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ संचार सम्पर्क कायम करने के लिए अनेक तरीके अपनाते हैं जैसे– अनुदेश, लिखित या मौखिक आदेश या निर्देश, निर्देश पुस्तिकाएं, कर्मचारी सम्मेलन, बजट स्वीकृति और अन्य अधिकृत तरीके। इनसे निचले स्तर के कर्मचारियों को उनके दृष्टिकोण और विचारों का पता लगता है और वे निर्देश, मार्गदर्शन तथा सलाह प्राप्त करते हैं। ''बड़े संगठनों में शुरु से ही अधोमुखी संचार सम्पर्क स्थापित करना काफी कठिन है, क्योंकि आदेशों को क्रियान्वयन के स्तर तक पहुंचने से पहले बीच के अनेक स्तरों से गुजरना पड़ता है। इतने सारे लोगों से गुजरने के कारण निर्देशों से गलतफहमियां आसानी से फैल सकती हैं। यदि उर्ध्वमुख संचार सम्पर्क बहुत कम है तो परेशानियां और बढ़ जाती हैं क्योंकि आदेश स्वयं ही अव्यावहारिक हो जाते हैं और कर्मचारी उनका विरोध करते हैं।''

उर्ध्वमुखी : इसके अन्तर्गत सोपानतंत्र में निचले स्तरों से संदेश उच्च स्तर के अधिकारियों को भेजे जाते हैं। इसके लिए कई तरीके अपनाए जाते हैं जैसे– कुशलता और प्रगति के बारे में लिखित और मौखिक रिपोर्ट, काम के बारे में आंकड़े और खाते, मार्गदर्शन, सुझाव और विचार–विमर्श के लिए लिखित या मौखिक रिपोर्ट, अनुरोध आदि। संगठन के संचालन में दोष ढूंढने के काम में अक्सर उर्ध्वमुखी सम्पर्क व्यवस्था की भूमिका बहुत सीमित होती है, क्योंकि कभी–कभी संगठन का प्रमुख वहां की वास्तविक स्थिति से इतनी कसकर आंखें मूंदे रहता है कि विश्वास नहीं होता। उसका यह रवैया उन रिपोर्टों पर आधारित होता है जिनके अनुसार सब कुछ ठीक–ठीक चलता है। ऐसी रिपोर्टों से उसके सामने वास्तविक स्थिति प्रकट ही नहीं होती।

पार्श्विक संचारः इस प्रकार का संचार सम्पर्क सोपानतंत्र में एक ही स्तर के अधिकारियों के बीच या फिर उन अधिकारियों के बीच होता है जो वरिष्ठ–अधीनस्थ के सम्बन्धों के दायरे से बाहर है। इसे हम आमने–सामने सम्पर्क भी कह सकते हैं। इसमें लिखित या मौखिक सूचना तथा रिपोर्टों, औपचारिक और अनौपचारिक तथा व्यक्तिगत सम्पर्कों, कर्मचारियों की बैठकों और समन्वय समितियों जैसे विभिन्न साधन अपनाए जाते हैं। इस प्रकार का संचार–सम्पर्क संगठन के भिन्न–भिन्न किन्तु परस्पर जुड़े अंगों को निकट लाने में सहायक होता है। संगठन के उद्देश्यों में तालमेल रखने के लिए

अधिकारियों को अपनी योजनाओं और क्रियाओं को एक दूसरे तक स्पष्ट रुप से पहुंचाना चाहिए।

अनौपचारिक संचारः संचार के औपचारिक साधनों की कठोरता के कारण अनौपचारिक साधन विकसित होते हैं जो उनके पूरक होते हैं। संगठन के संचालन में इन्हें अक्सर खतरनाक और अहितकारी माना जाता है। ये अफवाहें और गलत सूचनाएं फैलाकर संगठन के हितों को नुकसान पहुंचाते हैं लेकिन अक्सर उनकी भूमिका बहुत रचनात्मक होती है। यदि हम एक संगठन में कार्यरत ऐसे व्यक्ति का उदाहरण लें जो किसी कारण से परेशान है किन्तु ऐसी सूचना तक उसकी कोई पहुंच नहीं है जो उसे तनाव से मुक्ति दिला सके। ऐसी स्थिति में उस सूचना तक पहुंच रखने वाले अनौपचारिक साधन उस कर्मचारी को, आवश्यक सूचना दे देंगे या फिर उच्च अधिकारी को उसकी वास्तविक परेशानी से अवगत करा देगें।

अनौपचारिक सूचना का आदान–प्रदान मित्रों के बीच और अन्य छोटे–छोटे समूहों के जरिए होता है। इनमें जासूसी जैसे नए साधन भी हो सकते है। इसका एक रचनात्मक पहलू यह है कि इससे उर्ध्वमुखी संचार की कुछ समस्याएँ दूर हो जाती हैं। इससे उर्ध्वमुखी और पार्श्विक संचार में भी मदद मिलती है। अनौपचारिक साधनों से सबसे बड़ा खतरा यह है कि यह सूचना का स्वरूप बिगाड़ सकते हैं, उसे तोड़–मरोड़ सकते हैं। यदि प्रशासकों को यह मालूम हो कि उनके संगठन में कौन से अनौपचारिक साधन काम कर रहे है और कैसी सूचनाओं का आदान–प्रदान हो रहा है तो उन्हें समन्वय में मदद मिलती है। अनौपचारिक साधनों पर कर्मचारियों की बहुत अधिक निर्भरता संगठन में समन्वयक कमजोरी का संकेत है। कभी–कभी अनौपचारिक साधन संगठन के उद्देश्य को भी हानि पहुँचाते हैं। इस खतरे का मुकाबला करने के लिए संगठन में सूचनाओं के मुक्त प्रवाह और सदस्यों के बीच परस्पर सम्पर्क बढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

12.6 संचार के माध्यम

संचार माध्यमों को तीन मुख्य समूहों में बाँटा जा सकता है, श्रव्य, दृश्य तथा दृश्य–श्रव्य।

श्रव्य माघ्यमों में सम्मेलन, भेंटवार्ताएँ, निरीक्षण यात्राएँ, प्रसारण, टेलीफोन वार्ता आदि शामिल हैं।

दृश्य माध्यमों में सर्कुलर, निर्देश पुस्तिकाएँ, रिपोर्ट, बुलेटिन और पुस्तिकाएँ आदि लिखित और चित्र, फोटो, पोस्टर, कार्टून, स्लाइड, झण्डे, निशान आदि शामिल हैं।

दृश्य–श्रव्य माध्यमों में चलचित्र, टेलिविजन और व्यक्तिगत प्रदर्शन शामिल है।

इनमें से प्रत्येक माध्यम के फायदे भी हैं और नुकसान भी। यह फैसला प्रबंधकों को करना होता है कि किस काम के लिए कौन सा माध्यम अपनाया जाएगा।

लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए इन दिनों सम्मेलनों पर अधिक जोर दिया जा रहा है। इससे काम में देरी नहीं होती, पत्र–व्यवहार कम से कम होता है और

लालफीताशाही में कमी आती है। मिलेट के अनुसार सम्मेलन के मुख्य उपयोग हैंः (1) समस्या की जानकारी प्राप्त करना, (2) समस्या के समाधान में सहायता, (3) फैसलों को स्वीकृत कराके उन पर अमल कराना, (4) संगठन के अधिकारियों में एकता की भावना को बढ़ावा देना, (5) कर्मचारियों के मूल्याँकन में सहायता करना, और (6) प्रशासनिक अधिकारियों के बीच सूचना के आदान–प्रदान तथा औपचारिक संबंधों को बढ़ावा देना। सम्मेलनों से व्यक्तियों को अपनी वर्तमान जिम्मेदारी कारगर रूप से निभाने, कार्य संबंधों में समन्वय रखने, दूसरों के अनुभव से लाभ उठाने, अपने दृष्टिकोण का विस्तार करने और संगठनात्मक संचार को औपचारिक रूप देने में मदद मिलती है।

सम्मेलनों से लोगों की दिलचस्पी बढ़ती है, समूह के सदस्यों की पूर्णरूपेण बराबर भागीदारी होती है, पारस्परिक उपलब्धियों से संतुष्टि मिलती है, परिणामों को सबकी स्वीकृति मिलती है, विश्लेषण की आदत पड़ती है, विचारों में एकरूपता आती है, समूहों का मनोबल ऊँचा उठता है और अनौपचारिक संबन्ध पनपते हैं।

भारत सरकार की आकलन समिति की राय में सम्मेलनों की अपने तरीके की कुछ सीमाएँ हैं। अपनी नौंवी रिपोर्ट में समिति ने कहा है, ''सम्मेलन इतने ज्यादा होने लगे हैं और कभी–कभी इतने बेतरतीब हो जाते है कि उनमें भाग लेने वाले अधिकारियों के लिए विषय के साथ न्याय कर पाना असम्भव हो जाता है। व्यवहारिक रूप में बैठकों, कम अवधि के विचार–विमर्श और टिप्पणियों आदि के बजाए– इनके कारण कभी–कभी विस्तृत पत्र–व्यवहार करना पड़ता है। सम्मेलनों में व्यक्त किए गए भिन्न–भिन्न विचारों को दर्ज करना, सुधारना और तालमेल बैठाना पड़ता है। जिससे सर्वसम्मत कार्रवाई वितरण तैयार करने में देरी होती है और कभी–कभी विचार–विमर्श पूरा न हो पाने के कारण और सम्मेलन भी बुलाने पड़ते हैं। कभी–कभी एक ही अधिकारी को एक ही दिन में कई–कई सम्मेलनों में जाना पड़ता है जिसके कारण वह प्रत्येक सम्मेलन के लिए पूरा तैयार नहीं हो पाता और विचार–विमर्श में पूरा योगदान नहीं दे पाता। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सम्मेलनों की व्यवस्था फाइलों पर टिप्पणी करने की मूल प्रक्रिया से अधिक विस्तारित सिद्ध हो रही है।''

सम्मेलनों की व्यवस्था सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए ताकि वे लाभदायक बन सकें। सम्मेलन के पहले से सही योजना बनानी चाहिए, विशेषज्ञों की सेवाएँ ली जानी चाहिए, नियमों का पालन होना चाहिए और प्रभावशाली ढंग से काम करने के लिए पर्याप्त आयोजन होना चाहिए। प्रारम्भिक आयोजन के लिए जिम्मेदार लोगों को पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए और योग्य व्यक्तियों को काफी पहले से काम सौंप दिए जाने चाहिए। सम्मेलन कक्ष में ब्लैक बोर्ड, स्लाइड ओर प्रोजेक्टर, रिकार्डिग, और घड़ियों आदि उपकरणों की तथा बैठने आदि की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। अध्यक्ष का व्यक्तित्व और संचालन की प्रक्रिया भी सम्मेलन को सफल बनाने में मदद कर सकते हैं।

12.7 संचार प्रक्रिया में बाधक तत्व

कुछ ऐसे तत्व भी हैं जो संचार प्रक्रिया के सुचारू संचालन में बाधक होते हैं। इनके कारण संचार प्रभावहीन हो जाता है। इनका वर्णन नीचे किया गया है :

कठोरता : वार्तालाप के दौरान इस्तेमाल किए गए विभिन्न शब्दों और वाक्यों का अलग–अलग व्यक्ति के लिए भिन्न–भिन्न अर्थ होता है। विभिन्न मामलों पर, कुछ लोगों के विचार बिल्कुल भिन्न होते हैं। कुछ मामलों पर अपने अड़ियल रवैये के कारण वे दूसरों की बात तक नहीं सुनना चाहते। इससे संचार निष्प्रभावी हो जाता है। लोगों को दूसरों की बात सुनने का गुण विकसित करना चाहिए। उनमें दूसरों के विचारों को जानने–समझने का धीरज होना चाहिए तभी कारगर संचार–संपर्क स्थापित हो सकता है।

सामान्यीकरणः संचार सम्पर्क को निष्प्रभावी बनाने वाला एक ओर तत्व है सामान्यीकरण। यदि किसी वृद्ध का किसी युवक से मतभेद हो जाए तो वह सभी युवकों को उच्छृंखल मान लेता है। इसी तरह यदि कोई व्यक्ति किसी कवि की एक कविता से प्रभावित नहीं होता तो वह समझता है कि उस कवि की सारी रचनाएं बेकार हैं। दैनिक जीवन में व्यक्तियों और वस्तुओं के बारे में ऐसी मान्यताएं पनपने से व्यक्ति के विचार एक ही सांचे में ढल जाते हैं। इससे संचार सम्पर्क निप्प्रभावी हो जाता है।

अतिवादी राय : कुछ लोग दुनिया में हर चीज को या तो अच्छा ही मानते हैं या फिर बुरा। अपने दैनिक जीवन में वे इसी हिसाब से आचरण करते हैं। लेकिन वास्तविक जीवन में चीजों और घटनाओं का इतना आसान वर्गीकरण करना कठिन है। इनके बीच की भी अनेक स्थितियां हैं। अतिवादी दृष्टिकोण वाले लोग ऐसा व्यवहार करते हैं कि अगर एक व्यक्ति एक काम में अच्छा है तो वे उसे जीवन के हर क्षेत्र में अच्छा मान लेते हैं। बुराई के मामलों में भी ऐसा ही होता है। इससे संचार–सम्पर्क निप्प्रभावी हो जाता है।

इन बाधाओं पर काबू पाकर संचार–सम्पर्क को प्रभावी बनाना आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं :

क. संचार व्यवस्था से संगठन की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की झलक मिलनी चाहिए।

ख. संचार व्यवस्था आपसी विश्वास और भरोसे के वातावरण में ही कारगर हो सकती है।

ग. संचार एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है उसे एक संक्षिप्त अभियान नहीं समझा जाना चाहिए।

घ. संचार सम्पर्क के उद्देश्य के साथ–साथ यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि संदेश किस व्यक्ति को भेजा जा रहा है।

छ. संदेश की भाषा और दिशा बहुत स्पष्ट होनी चाहिए।

ज. संचार–सम्पर्क से प्रबन्धकों की नीतियां, कार्यक्रमों और नियमों की झलक मिलनी चाहिए।

इन सबसे अधिक जरुरी बात यह है कि सम्प्रेषण के बीच आपसी सद्भाव, एक दूसरे के प्रति सम्मान और विश्वास तथा भरोसा होना चाहिए। तभी व्यक्तिगत भावनाओं और वास्तविक समस्याओं का आदान–प्रदान सम्भव होगा।

12.8 सारांश

संचार संगठन का एक मुख्य सिद्धान्त है। वास्तव में यह प्रशासनिक संगठन की जान है। इसका अर्थ है साझे उद्देश्य की साझी समझ। संप्रेक्षक, संप्रेषण प्रक्रिया, रुप, संग्राहक और वांछित प्रतिक्रिया इसके मुख्य तत्व हैं। संचार के माध्यम हैं– श्रव्य, दृश्य और श्रव्य दृश्य। सम्मेलनों का तरीका बहुत उपयोगी साबित हुआ है लेकिन इसकी कुछ सीमाएं भी हैं। संचार के तीन प्रकार हैं– अधोमुखी, उर्ध्वमुखी और पार्श्विक। संचार संदेशों से प्रबन्धकों की नीतियों, कार्यक्रमों और नियमों की झलक मिलनी चाहिए। संचार के अनौपचारिक साधनों से भी कुछ हद तक लाभकारी परिणाम होते हैं। किन्तु संचार के अनौपचारिक साधनों के संचालन के लिए बहुत कुशलता की जरुरत होती है। यदि संचार तंत्र में शामिल लोगों का रवैया अड़ियल हो, विचार एक ही लीक पर चलते हों और व्यक्तियों तथा घटनाओं के बारे में उनका दृष्टिकोण अतिवादी हो तो संचार की प्रक्रिया निष्प्रभावी हो जाती है। लोगों में आपसी विश्वास और भरोसे से संचार सम्पर्क प्रभावकारी होता है।

12.9. मुख्य शब्दावली

अभिप्रेरण : इच्छा, वृत्ति या यचि को प्रेरणा देने वाला।
संग्राहक : संग्रह करने वाला।
सामयिक : समय–विशेष से सम्बन्धित।
अतिवादी : किसी भी दिशा में दुराग्रह रखने वाला।
निष्प्रभावी : जिसका कोई प्रभाव न हो।

12.10 बोध प्रश्न

1. (1) संगठन में संचार का महत्व समझाइए।
   (2) संचार के मुख्य तत्व क्या हैं?
   (3) संचार को कारगर बनाने वाले तत्व क्या–क्या हैं?

2. (1) संगठनों में अनौपचारिक संचार की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
   (2) सम्मेलनों से संचार प्रक्रिया में किस प्रकार सहायता मिलती है?
   (3) संचार में बाधक तत्व क्या हैं?
   (4) संचार व्यवस्था को कारगर बनाने के बारे में अपने सुझाव दीजिए।

12.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (1) देखें भाग 27.2
   (2) देखें भाग 27.3
   (3) देखें भाग 27.4

2. (1) देखें भाग 27.5
   (2) देखें भाग 27.6
   (3) देखें भाग 27.7
   (4) देखें भाग 27.7

12.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Avasthi, A. and Maheshwari, S.R. 2017, Public Administration; 30th Lakshmi Narayan Aggarwal: Agra

Barnard, Chester I, 1938, The Functions of the Executive; Harvard University Press: Cambridge.

Hicks, Herbert G. and Ray Gullet C, 1975, Organisations; Theory and Behaviour; McGraw-Hill Book Company: New York.

Luthans, Fred, 1977, Organisational Behaviour; McGraw-Hill Book Company: New York.

Millet, John D., 1954, Management in Public Services; McGraw-Hill Book Company: New York.

Nigro, Felix A. and Nigro, Lloyed G. 1973, Modern Public Administration; Harper & Row Publishers: New York.

Tead, Ordway, 1951, The Art of Administration; McGraw-Hill book Company : New York

इकाई– 13
अधिकार और उत्तरदायित्व

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 अधिकार : अर्थ और परिभाषा
13.3 अधिकार और शक्ति
13.4 अधिकार के अध्ययन के तरीके
13.5 अधिकार के स्रोत
13.6 अधिकार की पूर्व अपेक्षाएं और पर्याप्तता
13.7 अधिकार की सीमाएं
13.8 उत्तरदायित्व
13.9 उत्तरदायित्व के प्रकार
    13.9.1 राजनीतिक उत्तरदायित्व
    13.9.2 संस्थागत उत्तरदायित्व
    13.9.3 व्यावसायिक उत्तरदायित्व
13.10 अधिकार और उत्तरदायित्व
13.11 सारांश
13.12 मुख्य शब्दावली
13.13 बोध प्रश्न
13.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन :

- अधिकार और उत्तरदायित्व की अवधारणाओं के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शक्ति और अधिकार के बीच अंतर कर सकेंगे,
- संगठनों में अधिकार की स्वीकृति की पूर्व अपेक्षाओं को स्पष्ट कर सकेंगे,
- अधिकार के स्रोत बता सकेंगे,
- अधिकार की सीमाओं पर विचार–विमर्श कर सकेंगे,
- उत्तरदायित्व के विभिन्न रूपों की चर्चा कर सकेंगे, और
- अधिकार और उत्तरदायित्व के बीच संबंधों को रेखांकित कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

प्रशासन, संगठनों में लोगों के कार्य को समन्वित करने और सुगम बनाने की प्रक्रिया है। लोग किसी शासन व्यवस्था में अपने आप को औपचारिक एवं अनौपचारिक रुप से विभिन्न संगठनों के सदस्य के रुप में संगठित करते हैं। समाज में प्रत्येक संगठन विभिन्न स्वार्थ समूहों के लिए रणभूमि जैसा है। ऐसा मुख्यतः इसलिए है कि साधनों की कमी है और आसपास उपलब्ध विकल्प सीमित हैं। इससे एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है, जिसमें लोगों को संगठन के उद्देश्यों की बजाए इस बात की चिंता अधिक सताती है कि किस व्यक्ति को किसी संगठन में क्या, कब और कितना मिला। जैसा कि **पिफनर** और **शेरवुड** ने कहा है : ''इस जगह संगठन के बुनियादी मूल्य जुड़े हुए हैं और यही वह जगह है, जहां नियंत्रण, सत्ता और अधिकार के लिए संघर्ष सबसे कम है।" इसलिए प्रशासनिक गतिशीलता और संगठनों की प्रक्रिया को समझने के लिए अधिकार और उत्तरदायित्व का अध्ययन करना सबसे महत्व की बात है। सरकारी अधिकारियों के बारे में आधुनिक चिंतन यह है कि सम्पूर्ण नियंत्रण आंतरिक होता है। यह किसी व्यक्ति द्वारा अपने अन्तःकरण में उत्तरदायित्व को महसूस करने की भावना का नाम है। इस तरह के पहलुओं के अध्ययन से प्रशासन के छात्रों को लोकतांत्रिक राज्य में सरकारी नौकरशाही और उसकी भूमिका को समझने में मदद मिलती है।

13.2 अधिकार : अर्थ और परिभाषा

सार्वजनिक जीवन में अधिकार प्रशासन का आधार है। सामान्य तौर पर इसका उपयोग किसी संगठन में सोपानक्रम के एक निश्चित ढांचे में किया जाता है। यह एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूहों के व्यवहार को प्रभावित करने की एक वैध शक्ति है। मैक्स वैबर के अनुसार, अधिकार व्यक्तियों द्वारा अपनी इच्छा से और बिना शर्त आदेशों का पालन है। इसमें वे यह मान कर चलते हैं कि वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा अपनी इच्छा उन पर लादना वैध है और उसके पालन से इनकार करना अवैध है। हेनरी फैयोल के अनुसार, आदेश देने का हक और उसका सही–सही पालन कराने की शक्ति ही अधिकार है। इसलिए अधिकार एक प्रशासनिक प्रणाली के विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में प्रेरित करने के लिए दूसरों को समावेश देने या प्रभावित करने का वैध तरीका है। प्रशासनिक प्रणाली में प्रत्येक पद के निश्चित अधिकार होते हैं जिसे पदधारी अपने पद की हैसियत से प्राप्त करता है। जैसा कि एलेन ने कहा है, ''अधिकार, उन शक्तियों और हकों का मिला–जुला रुप है, जो सौंपे गए कार्य को संभव बनाने के लिए प्रदान किए जाते हैं।" लेकिन संगठनों में अधिकार वरिष्ठों के समादेशों, हकों और निर्देशों तक ही सीमित नहीं है। अधिकार का उतना ही महत्वपूर्ण पक्ष आज्ञा पालन और स्वीकृति भी है। चेस्टर बरनार्ड उन

लेखकों में से एक हैं, जिन्होंने संगठनात्मक प्रक्रिया में आज्ञापालन और स्वीकृति के महत्व को मान्यता प्रदान की है। उनके अनुसार अधिकार किसी औपचारिक संगठन में संवाद का लक्षण है, जिसकी वजह से यह किसी सहयोगी को या संगठन के सदस्य को संचालक के रुप में मान्य होता है या वह यह निश्चय करता है कि इस संगठन में क्या करना है या क्या नहीं करना है। दूसरे शब्दों में अधिकार किसी संगठन में किसी व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने का वैध हक है– लेकिन शर्त यह है कि व्यक्ति उस अधिकार के प्रति आज्ञाकारिता का भाव दिखा कर उसे स्वीकार करता हो।

13.3 अधिकार और शक्ति

अधिकार किसी पद में निहित हकों का आविभाज्य अंग है। पद पर आसीन व्यक्ति चाहे जो कोई भी हो, ये हक अटल होते हैं। दूसरे शब्दों में अधिकार वैध और स्थितीय होता है। एक अधिकार प्राप्त व्यक्ति के फैसलों को प्रभावित करने की क्षमता का नाम शक्ति है। शक्ति को एक ऐसे प्रभाव के रुप में परिभाषित किया जा सकता है जो सत्ताधारी के उद्देश्यों की पूर्ति और लाभ के लिए किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहार को बदल देता है। अधिकार शक्ति की अवधारणा से, बहुत ही निकट से जुड़ा हुआ है। प्रशासनिक प्रणाली और विभिन्न प्रशासनिक संगठन और कार्यालय सरकार में अपनी शक्तियों के उपयोग में लगे हुए हैं। इसलिए अधिकार को प्रशासनिक संगठनों में पदाधिकारियों की वैध शक्ति के रुप में परिभाषित किया जा सकता है। कानून, संविधान और नियमों के समर्थन के बिना शक्ति अवैध होती है। अवैध शक्ति समाज के लिए खतरनाक होती है जबकि वैध शक्ति या अधिकार लोगों की सेवक है और एक लोकतांत्रिक समाज में इसे लोगों का भाग्य विधाता नहीं बनना चाहिए। वैध शक्ति या अधिकार का उपयोग सार्वजनिक हित में किया जाना चाहिए। अवैध शक्ति से आम तौर पर लोगों की रक्षा के लिये इसे सीमित करने और इस पर नियंत्रण करने के हमारे पास अनेक उपाय हैं।

13.4 अधिकार के अध्ययन के तरीके

किसी प्रशासनिक संगठन में अधिकार की संकल्पना का तीन महत्वपूर्ण बिन्दुओं से अध्ययन किया जा सकता है। ये हैं :

1. **अधिकार का कानूनी पहलू:** इसमें उत्पत्ति, स्रोत, नियम और आचार शामिल हैं जो कि अधिकार के कार्यक्षेत्र और सीमाओं को परिभाषित करते हैं।

2. **अधिकार के स्थितीय पहलू:** इसमें संगठनों में विभिन्न पदों पर आसीन व्यक्तियों के अधिकारों, कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों तथा संगठन में उनके स्तर को शामिल किया गया है।

3. **अधिकार के मानवीय पहलू:** इसमें परस्पर व्यक्तिगत सम्बन्ध, सहयोग, संचार और संगठन में अधिकार के स्वीकृत पहलू आते हैं।

यदि आप इन तीनों आयामों के साथ इसे समझ लें तो आपके सम्मुख अधिकार की सही तस्वीर स्पष्ट हो जाएगी, चूंकि इन आयामों में से प्रत्येक, अधिकार की संकल्पना की केवल आंशिक, तस्बीर, प्रस्तुत करता है इसलिए इन तीनों आयामों के आधार पर अधिकार की संकल्पना के अध्ययन की जरुरत है। इसके अलावा लोक प्रशासन, कानून और संविधान पर आधारित है। कानूनी और संवैधानिक व्यवस्थाओं को समाज में सबसे महत्वूपर्ण स्थान दिया गया है और राष्ट्र के मामलों को चलाने के लिए अधिकार का कानूनी आधार बहुत ही महत्वपूर्ण है। संगठनों में अन्य बातों की अपेक्षा अधिकार की वैधता अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इसका अन्य महत्वपूर्ण पहलू लोगों द्वारा इसकी स्वीकृति है। ये दो कारण ही किसी समाज में प्रशासनिक प्रक्रिया के समूचे अर्थ और सत्व को संघटित करते है।

प्रशासनिक प्रक्रिया में जिन अन्य पहलुओं का महत्व होता है उनमें एक है व्यक्तित्व पर जोर। प्रशासकों में ऐसी बुद्धिमत्ता और सूझबूझ होनी चाहिए ताकि बिना किसी प्रश्न या टिप्पणी के सम्बन्ध व्यक्तियों द्वारा उनके अधिकार को स्वीकार कर लिया जाए। प्रशासकों के लक्ष्य और फैसले ऐसे होने चाहिए जो सबको स्वीकार्य हों, व्यावहारिक हों और लोगों के हित में हों। प्रशासकों में नेतृत्व का गुण होना चाहिए ताकि वे अपने अधिकार का कारगर ढंग से उपयोग कर सकें। यही वजह है कि सामान्यतः कुशल नेतृत्व की योग्यता वाले लोग दूसरों से अपने आदेश मनवाने में सफल रहते हैं। नेतृत्व की कुशलता में कमी वाले लोग संगठन में पद और अधिकार के बावजूद लोगों से अपने आदेश को मनाने में सफल नहीं हो पाते। इसलिए अधिकार का अध्ययन करते समय हमें इसके तीन महत्वपूर्ण आयामों को ध्यान में रखना होगा।

अधिकार का अध्ययन करने का एक और तरीका है। हमें पता है कि प्रशासनिक प्रक्रिया में तीन महत्वपूर्ण चरण होते हैं– (1) किसी व्यक्ति, या समूह या समूहों से सम्बन्धित मामलों पर निर्णय लेना। (2) उस निर्णय की सम्बद्ध व्यक्तियों को जानकारी देना तथा (3) निर्णय का सहीं ढंग से परिपालन। इन सभी चरणों में अधिकार प्राप्त लोगों द्वारा अधिकार के इस्तेमाल और जिन पर अधिकार का इस्तेमाल किया जा रहा है, उनके द्वारा इस आदेश का पालन करन शामिल है।

13.5 अधिकार के स्रोत

सार्वजनिक मामलों के संचालन, सरकार के लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति और समाज में निहित स्वार्थी तत्वों के कार्यों से जनता के हितों की सुरक्षा में प्रशासनिक एजेंसियां महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। प्रशासनिक ऐजेंसी में अधिकार के तीन स्रोत इस प्रकार हैंः

कानून
परम्परा
प्रत्यायोजन
अधिकार के इन तीन स्रोतों की चर्चा निम्न प्रकार है :

कानून

अधिकार के कई पहलुओं की उत्पत्ति संविधान से हुई है। अन्य पहलू विभिन्न कानूनों और विधायी अधिनियमों की देन हैं। न्यायिक व्याख्याएं, पूर्व उदाहरण तथा निर्णय विधि से भी प्रशासनिक कर्मचारियों को अधिकार मिलता है। संगठनों में वरिष्ठ–अधीनस्थ सम्बन्ध, सोपानक्रम और श्रम विभाजन से अधिकारियों के सम्बन्धों का पता चलता है। इनसे किसी संगठन में समादेश के अधिकार और आदेश मानने के कर्त्तव्य की भी जानकारी मिलती है।

परम्परा

कानून द्वारा प्रदत्त अधिकार ही आदेश मनवाने के लिए काफी नहीं होते। अधिकार के एक स्रोत के रुप में परम्परा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सामान्यतः संगठन समय के अनुसार अपने नियम संहिता और कार्य का ढंग विकसित कर लेता है इन नियमों और संहिताओं से यह भी पता चलता है कि विभिन्न स्थितियों में भिन्न–भिन्न अधिकारियों की आज्ञा का किस तरह से पालन हुआ। उदाहरण के लिए, जब कोई अधिकार अनुपस्थित हो तो उसके स्थान पर उसका पद कौन संभालेगा इस बारे में फैसला संगठन के नियमों और संहिताओं के आधार पर किया जाएगा। नियमों और संहिताओं का विकास कुछ हद तक प्रचलन और परम्पराओं से और कुछ हद तक कार्य के स्थान पर खुद सीखने और प्रशिक्षण से होता है। प्रशासनिक कर्मचारी अधिकार को उचित सम्मान देते हैं और प्रशासन के व्यवसाय में इसे एक महत्वपूर्ण मूल्य मानते हैं। संगठनों में कार्य कर रहे विभिन्न व्यक्ति इस अधिकार को एक ऐसे महत्वपूर्ण तत्व के रुप में मान्यता देते हैं, जो कि तालमेल के जरिए संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में मदद करता है।

प्रत्यायोजन

वरिष्ठ प्रशासक या विभागों और इकाइयों के प्रमुख, प्रत्यायोजन के जरिए अपने अधीनस्थों को कुछ अधिकार सौंप देते हैं। अतः प्रत्यायोजन संगठनों में अधिकार के स्रोत के रुप में काम करता है। यह लिखित अथवा मौखिक हो सकता लेकिन इसमें हमेशा एक उद्देश्य निहित होता है। वास्तव में प्रशासक का एक कार्य यह भी है कि वह अपने अधीनस्थों को उच्च उत्तरदायित्व संभालने के लिए तैयार करे। इसके लिए संगठन के एक मकसद को हासिल करने के लिए कुछ अधिकारों का प्रत्यायोजन किया जाता है। अधिकार का प्रत्यायोजन करते समय इस बात की पूरी सावधानी बरतनी होगी कि जन–हित के लिए अधिकार के न्याय–सम्मत उपयोग की भी उतनी ही जिम्मेदारी है।

इसलिए प्रशासनिक कर्मचारियों को अधिकार प्रदान करने में कानून, परम्परा और प्रत्यायोजन की महत्वपूर्ण भूमिका है। सरकारी आदेशों में अधिकार का प्रत्यायोजन की महत्वपूर्ण भूमिका है। सरकारी आदेशों में अधिकार का प्रमाण, स्रोत के उद्धरण से समझा जाता है। उदाहरण के लिए कभी–कभी अधिकार प्राप्त व्यक्ति अपनी सरकारी मुहर लगाता है। कई मामलों में 'सरकार के आदेश से जैसे वाक्यों का इस्तेमाल करके अधिकार को स्पष्ट किया जाता है। उपाधि, दर्जा और पद, अधिकार के स्रोत के बारे में संकेत देते हैं। आमतौर पर समाज और खासतौर से संबद्ध लोगों की स्वीकृति के लिए अधिकार के स्रोत का कुछ न कुछ प्रमाण देना आवश्यक होता है। इससे प्रशासनिक संदेश और आदेश कारगर बनते हैं।

13.6 अधिकार की पूर्व अपेक्षाएं और पर्याप्तता

सामान्यतः ऐसी धारणा है कि अधिकार एक प्रशासनिक प्रणाली है। जिसका प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है। चोटी पर समाज या सरकार या संसद कोई भी हो सकती है, परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि यह मंत्री या एक प्रशासनिक अधिकारी की तरह निर्णय भी करे। एक अन्य विचार चेस्टर बर्नार्ड जैसे लोगों का है, जिनके अनुसार अधिकार नीचे से आता है। उनके तर्क के अनुसार किसी पद पर आसीन व्यक्ति के अधिकार इस बात पर निर्भर करते हैं कि उसके अधीनस्थ अधिकार को स्वीकार करते हैं या नहीं। यदि उसे स्वीकार नहीं किया जाता तो इसकी झलक उसके अधीनस्थों के व्यवहार में दिखाई देती है। इससे अधिकार को संभालने में पद पर आसीन व्यक्ति की क्षमता का भी पता चल जाता है। बर्नार्ड के अनुसार किसी प्रशासन में अधिकार की स्वीकृति को सरल बनाने के लिए चार शर्तों की जरुरत होती है। वे हैं:

1. अधीनस्थों को अधिकार प्राप्त व्यक्ति के संदशों को समझने के योग्य होना चाहिए;
2. अधीनस्थों को महसूस करना चाहिए कि संदेश प्रशासनिक प्रणाली के उद्देश्य के अनुकूल हैं;
3. संदेश का कथ्य अधीनस्थ व्यक्ति की रुचि के अनुकूल होना चाहिए; और
4. संदेश में दिए गए निर्देशों को लागू करने के लिए अधीनस्थ को मानसिक और शारीरिक रुप से उपयुक्त होना चाहिए।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि अगर अधीनस्थ अधिकार को स्वीकार नहीं करता तो वरिष्ठ के अधिकार का कोई अर्थ नहीं होता। इसलिए अधीनस्थ यदि चाहे तो वैध आदेश को भी मानने से इनकार कर सकता है। दूसरे शब्दों में बर्नार्ड का कथन है कि वैध अधिकार की भी एक सीमा होती है। सीमा से बाहर अधिकार की स्वीकृति के लिए अधिकार प्राप्त व्यक्ति को ऐसे कौशल का इस्तेमाल करना होता है जो उसके पद के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता। बर्नार्ड ने सीमा से बाहर की स्वीकृति को तटस्थ क्षेत्र कहा है। बर्नार्ड का तर्क यह है कि अधिकार से सम्बद्ध यह

परम्परागत धारणा कि इसे बिना किसी आना–कानी के लागू किया जा सकता है, आज के प्रशासनिक संगठनों के लिए सही नहीं है। इससे यह बात उजागर होती है कि संगठन के उद्देश्यों को हासिल करने के लिए प्रशासनिक कर्मचारियों में नेतृत्व कौशल का विकास करने की जरुरत है ताकि वे अपने अधिकार का कारगर ढंग से इस्तेमाल कर सकें।

एक अन्य प्रश्न यह है कि प्रशासनिक कर्मचारियों को भी अधिकार प्राप्त हैं क्या वे उनके कर्त्तव्यों के कारगर ढंग से परिपालन के लिए पर्याप्त है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए सबसे पहले हमें उन करणों पर ध्यान देना होगा जो समाज में प्रशासनिक कर्मचारियों के अधिकार के लिए जिम्मेदार हैं। मैकियावली और मैक्स वेबर सहित कई विद्वानों ने उन तीन कारणों को स्पष्ट किया है जो प्रशासनिक कर्मचारी के अधिकार में योगदान करते हैं। इसकी चर्चा निम्न प्रकार है :

1. **जीविका के लिए काम :** प्रशासकों को जीविका के लिए रोजगार का लाभ रहता है। इससे स्थायित्व की गारंटी मिलती है, जो कि समाज में रहने वाले अन्य लोगों को सुलभ नहीं होती। सरकार के प्रमुख कार्यकारी बदल सकते हैं। यही स्थिति सांसदों, विधायकों और सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित व्यक्तियों की है, लेकिन सरकारी अधिकारियों की नौकरी का कार्यकाल निश्चित होता है और उनके फैसलों का आम लोगों के जीवन पर स्थाई असर होता है।

2. **विशेषज्ञता :** प्रशासनिक कर्मचारी में, अपनी शिक्षा और रोजगार में अनुभव का कारण ज्ञान और कौशल होता है। इसके परिणामस्वरुप वे किसी विषय में समाज के किसी अन्य वर्ग की तुलना में अधिक कुशल एवं निपुण होते हैं जैसा कि रौरके ने कहा है कि आधुनिक समाज में विशेषज्ञता की मौजूदगी का स्पष्ट प्रमाण यह है कि विभिन्न प्रकार के उच्च प्रशिक्षित प्रशासक सार्वजनिक संगठनों में अपने–अपने क्षेत्र में काम करते हैं। इन कर्मचारियों में ऐसी कुशलता और जानकारी होती है, जिसकी लोक–नीति को तैयार करने और लागू करने में जरुरत होती है। इसलिए कौशल और जानकारी के इस्तेमाल की योग्यता से प्रशासनिक कर्मचारियों के अधिकार में मदद मिलती है।

3. **बाहरी समर्थन :** अपनी नौकरी और विशेषज्ञता की वजह से लोक प्रशासकों की पहुंच समाज के अनेक स्वार्थपरक समूहों तक होती है। ये समूह लोक प्रशासकों को उनकी सेवा के बदले में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही तरीकों से अपना समर्थन देते हैं। अधिकार को लागू करने की प्रक्रिया को सुगम बनाने में उपरोक्त तीन कारणों के बावजूद हम अक्सर प्रशासकों की यह शिकायतें सुनते रहते हैं कि मौजूदा अधिकार सार्वजनकि मामलों को निपटाने के लिए पर्याप्त नहीं है। अतः उन्हें और अधिकारों की जरुरत है। हम यह भी जानते हैं कि वित्त, कानून और व्यवस्था या व्यापार और वाणिज्य जैसे विषयों पर सरकारें अधिक से अधिक कानून बनाती हैं ताकि प्रशासकों को और ज्यादा अधिकार दिए जा सकें। इससे ऐसी स्थिति पैदा हो

सकती है कि कानूनों और अधिनियमों द्वारा अधिकार की पर्याप्तता के बारे में निर्णय करना कठिन है। प्रशासकों को अधिक से अधिक अधिकार मांगते रहने की बजाए स्थिति के कारगर ढंग से निपटने के लिए, परम्पराओं पर निर्भर रहना चाहिए और नेतृत्व के गुण विकसित करने चाहिए। मिल्लेट ने अधिकार के कारगर ढंग से परिपालन के लिए चार क्षेत्रों में पर्याप्त अधिकार की जरुरत पर बल दिया है। वे हैं

1. **कार्यक्रम संबंधी अधिकार** : प्रशासकों को कानूनी सीमाओं के भीतर प्रशासनिक गतिविधियों के लक्ष्य और उद्देश्य निर्धारित करन के लिए पर्याप्त अधिकार होने चाहिए।

2. **संगठनात्मक अधिकार** : प्रशासकों को कार्यक्रमों और नीतियों के कारगर क्रियान्वयन के लिए उपयुक्त ढांचा तैयार करने के पर्याप्त अधिकार होने चाहिए।

3. **बजट संबंधी अधिकार** : प्रशासकों को कार्यक्रम के उद्देश्यों और प्राथमिकताओं के अनुसार बजट संबंधी जरूरतों का पता लगाने के अधिकार होने चाहिए।

4. **कार्मिक संबंधी अधिकार** : प्रशासकों को कार्मिकों को नियुक्त करने, उन्हें काम सौंपने और समय–समय पर उनकी कार्यकुशलता की समीक्षा करने के लिए समुचित अधिकार होने चाहिए। उन्हें पुरस्कृत करने और अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का अधिकार भी होना चाहिए। प्रशासकों को संगठन के रोजमर्रा के कामकाज में विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों को प्रेरित करने, अनुशासित करने और उनके कार्य की समीक्षा करने के लिए अधिकारों की आवश्यकता होती है। सबसे बड़ा दंड कानून और कार्यविधि की उचित प्रक्रिया अपनाने के बाद, किसी व्यक्ति को संगठन से बर्खास्त करने का है। हल्के दंड में विभिन्न प्रकार का निलंबन, पदोन्नति रोकना, वेतन वृद्धि रोकना, काम बदलना, दूसरे स्थान पर स्थानांतरण और अधिकारिक भर्त्सना शामिल है। यह सब तरीके संगठनों के विभिन्न कर्मचारियों में अनुशासन लागू करने और उनकी कार्यकुशलता सुधारने के लिए अपनाए जाते हैं। सभी मामलों में संगठन के कर्मचारियों का मनोबल बढ़ाने के लिए पदोन्नति, वेतनवृद्धि, सम्मान–पत्र प्रदान करने आदि के तरीके अपनाए जाते है।

उपरोक्त क्षेत्रों में जब तक प्रशासकों के पास पर्याप्त अधिकार नहीं होंगे तब तक संगठन के लक्ष्य हासिल करना उनके लिए कठिन होगा। किसी भी क्षेत्र में कमी होने पर प्रशासन सुचारू रूप से नहीं चल सकेगा। किसी एक क्षेत्र में अधिक अधिकार होना भी सफल प्रशासन के लिए हानिकारक है। राज्य विधान मंडलों और संसद को कानून बनाते समय इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

13.7 अधिकार की सीमाएं

अधिकार का एक स्रोत होता है अर्थात् अधिकार के उपयोग पर अंकुश रखने वाला एक स्रोत होता है। गैर–कानूनी उद्देश्यों के लिए अधिकारों का दुरूपयोग या

गलत इस्तेमाल रोकने के लिए यह नियंत्रण आवश्यक है। इन नियंत्रणों की चर्चा निम्नांकित है–

विधायी नियंत्रण

संसद और राज्य विधान मंडल प्रशासकों को उनके कार्यों के लिए जवाबदेह बनाकर उनके अधिकार पर नियंत्रण रखते है। वे विभिन्न मंत्रालयों और सलाहकार समितियों के जरिए प्रशासनिक संगठनों को दिशा निर्देश देते हैं। वे सार्वजनिक उद्यमों तथा अन्य सरकारी एजेंसियों के कामकाज की भी जांच करते हैं। बजट पर बहस के दौरान विभिन्न विभागों के कार्यकलापों की समीक्षा होती है। कुछ खास मामलों में संसद सदस्य या राज्य विधानमंडल के सदस्य किसी विभाग या किसी खास पदधारी अथवा पदधारियों के काम काज पर बहस कर सकते हैं। इससे प्रशासनिक एजेंसियों द्वारा अधिकारों के इस्तेमाल पर नियंत्रण रहता है।

अदालतें

कानूनी अदालतें और प्रशासनिक ट्राइब्यूनल, प्रशासनिक एजेंसियों और उनके कर्मचारियों से सम्बद्ध मामलों की जांच करते समय उनके कार्यों की समीक्षा करते हैं। न्यायिक फैसले प्रशासनिक एजेंसियों के कामकाज पर कारगर नियंत्रण रखते हैं। नागरिक, व्यक्तिगत रूप से और संगठित समूहों में मुकदमों के जरिए सरकारी एजेंसियों और उनके कर्मचारियों के कामकाज और कार्रवाईयों को चुनौती देते हैं। इसके अलावा सरकारी एजेंसियों के कामकाज के बारे में गठित जांच आयोग सरकार को अपनी रिपोर्ट देते हैं जिस पर आगे कार्रवाई की जाती है। इन सब मामलों में प्रशासनिक कार्रवाईयों की जांच–पड़ताल और समीक्षा की जाती है। इससे अधिकारों के दुरुपयोग या गलत इस्तेमाल पर नियंत्रण रखने में मदद मिलती है।

संवैधानिक नियंत्रण

यदि देश के नागरिकों की शिकायतों पर अन्य एजेंसियां ध्यान न दें तो वे गणतंत्र के राष्ट्रपति या राज्यपाल से अपील कर सकते हैं। इसके साथ कुछ राज्यों में लोकायुक्त भी होते हैं जो सरकार में किसी पदधारी के विरुद्ध निश्चित शिकायत मिलने पर जांच कर सकता है। यह प्रक्रिया भी प्रशासनिक कर्मचारियों द्वारा अधिकारियों के दुरुपयोग पर नियंत्रण रखती है।

समाचार पत्र और प्रचार माध्यम

समाचार पत्र और प्रचार माध्यम प्रशासन में सत्ताधारियों पर नियंत्रक की भूमिका निभाते हैं। वे समय–समय पर समाचारों के जरिए, सरकार और उसकी एजेंसियों के विभिन्न कार्यों को जनता के सामने पेश करते हैं। समाचार पत्र, सरकारी एजेंसियों या अधिकारियों के दुष्कृत्यों के विरुद्ध जनमत तैयार कर सकते हैं। वे अदालत में भी जनहित के मामले उठा सकते हैं। संगठित हित आधारित समूह जैसे सामाजिक कार्रवाई समूह, पर्यावरण संरक्षण के हिमायती, और सुधारक आदि सरकारी

एजेंसियों द्वारा अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने के लिए समाचार पत्रों का उपयोग कर सकते हैं।

सोपानक्रम

प्रशासनिक संगठन में अधिकारियों और कर्मचारियों के भिन्न–भिन्न स्तर होते हैं उनके अधिकार और दायित्व भी अलग–अलग होते हैं। संगठन के सोपानक्रम में प्रशासक के कार्यों पर उसके तात्कालिक वरिष्ठ अधिकारी का नियंत्रण और निरीक्षण रहता है। अतः यह प्रशासनिक कर्मचारियों पर आंतरिक निंयत्रक का काम करता है।

लोकतांत्रिक समाज में, प्रशासनिक एजेंसियों पर नियंत्रण की ये कुछ महत्वपूर्ण प्रक्रियाएं हैं।

अधिकारों का दुरुपयोग रोकने में, प्रशासनिक उत्तरदायित्व की संकल्पना इन सबसे अधिक कारगर है।

13.8 उत्तरदायित्व

उत्तरदायित्व, निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करने की जिम्मेदारी है। अधिकार और उत्तरदायित्व का सम्बन्ध अटूट है। अधिकार के बिना उत्तरदायित्व उठाना सम्भव नहीं है। प्रशासक को अपने अधीनस्थ को अधिकार देने के साथ–साथ उस अधिकार को न्यायोचित और उद्देश्यपूर्ण ढंग से इस्तेमाल करने का उत्तरदायित्व भी सौंपना चाहिए। उत्तरदायित्व दो प्रकार का होता है– क्रियात्मक उत्तरदायित्व और संपूर्ण उत्तरदायित्व। प्रशासक अपने अधीनस्थ को क्रियात्मक उत्तरदायित्व तो सौंप सकता है, संपूर्ण उत्तरदायित्व नहीं। संपूर्ण उत्तरदायित्व कभी प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता। अधिकार, उत्तरदायित्व और जवाबदेही ही संकल्पनाएं प्रशासन प्रक्रिया के अभिन्न अंग हैं। अधिकार का अर्थ है आदेश देने की शक्ति, उत्तरदायित्व का अर्थ है आदेश पालन का कर्त्तव्य और जवाबदेही है कर्त्तव्यों के शब्दशः पूरा करना। व्यक्ति का उत्तरदायित्व तभी पूर्ण होता है जब कर्त्तव्यों का निर्वाह आदेश की मूल भावना के अनुरुप शब्दशः किया जाता है। परम्परागत प्रशासनिक तभी पूर्ण होता है जब कर्त्तव्यों का निर्वाह आदेश की मूल भावना के अनुरुप शब्दशः किया जाता है। परम्परागत प्रशासनिक सिद्धान्त के अनुसार अधिकार सम्बन्ध के दो रुपों क्रमिक (लाइन) अधिकार और कर्मचारी (स्टाफ) अधिकार के बीच स्पष्ट अन्तर है। क्रमिक अधिकार का अर्थ है लक्ष्य अधिकार की तुलना वरिष्ठ अधिकारियों से और कर्मचारियों से और कर्मचारी अधिकार की तुलना अधीनस्थों से की जा सकती है। कर्मचारी अधिकार की भूमिका सलाहकार की होती है इनके बीच अन्तर का एक तरीका यह है कि लक्ष्य प्राप्ति के सम्पूर्ण उत्तरदायित्व में प्रत्येक की भूमिका स्पष्ट कर दी जाए।

13.9 उत्तरदायित्व के प्रकार

उत्तरदायित्व का अर्थ है, प्रशासनिक प्रक्रिया में लक्ष्य प्राप्ति के लिए अधिकारधारी की जवाबदेही। उत्तरदायित्व की संकल्पना अधिकार के दुरूपयोग पर नजर रखने का काम करती है। प्रशासनिक प्रक्रिया में उत्तरदायित्व तीन प्रकार का होता है– राजनीतिक, संस्थागत, और व्यावसायिक।

13.9.1 राजनीतिक उत्तरदायित्व

संसदीय शासन व्यवस्था में प्रशासन पर सबसे महत्वपूर्ण नियंत्रण राजनीतिक उत्तरदायित्व का होता है। प्रत्येक मंत्री अपने मंत्रालय और उसके अन्तर्गत आने वाले विभागों के कार्यकलापों और कामकाज के लिए उत्तरदायी होता है। सफलता या विफलता का समपूर्ण उत्तरदायित्व सम्बद्ध मंत्री पर होता है। इससे मंत्रालय में एक विभाग के अन्तर्गत प्रशासनिक एजेंसियों और कार्यालयों के कामकाज पर नियंत्रण रखा जा सकता है। मंत्री एक राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में नीतिगत मामलों में दिशा निर्देश देता है जिनके क्रियान्वयन की जिम्मेदारी सार्वजनिक उद्यमों सहित विभिन्न प्रशासनिक एजेंसियों को सौंपी जाती है। राजनीतिक मुखिया ही अपनी प्रशासनिक वयवस्था के कामकाज के लिए मुख्य कार्यकारी और विधायिका के प्रति सम्पूर्णतः उत्तरदायी होता है। यह उत्तरदायित्व तभी सफल होगा जब प्रशासनिक व्यवस्था से सहयोग मिलेगा। इस व्यवस्था में बड़ी संख्या में विभिन्न स्तरों के अधिकारी शामिल हैं। यदि अधिकारी सहयोग नहीं करते तो सम्बद्ध मंत्री को मुख्य कार्यकारी और विधायिका की आलोचना झेलनी पडती है। कार्यकुशलता के लिए राजनीतिक उत्तरदायित्व के कारण कभी–कभी मंत्री को अपने पद से भी हटना पड़ सकता है। मंत्री के राजनीतिक उत्तरदायित्व को सफल और सार्थक बनाने के लिए अधिकारियों को उसकी नीतियों और कार्यक्रमों के साथ सहयोग करना चाहिए। वास्तव में ये उस सरकार के कार्यक्रम और नीतियां हैं, अकेले मंत्री की नहीं।

13.9.2 संस्थागत उत्तरदायित्व

एक प्रशासनिक एजेंसी या संस्था को जन कल्याण के प्रति उत्तरदायी और संवेदनशील होना चाहिए। अन्यथा उसके लिए लम्बे समय तक टिके रहना मुश्किल होगा। अर्थात्, जनहित में कार्य करना और उसके प्रति उत्तरदायी रहना उसके अपने हित में है। हमने जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विलय और समन्वय के जरिए सरकारी एजेंसियों के पुनर्गठन के अनेक उदाहरण देखे हैं। कुछ संगठन और संस्थाएं समय के साथ–साथ आत्म–केन्द्रित हो जाती हैं और अपने हित के लिए काम करने लग जाती हैं, और ये भूल जाती हैं कि वे जनता की सेवा के लिए हैं। ऐसी संस्थाओं के सामने आगे चलकर अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो जाएगा। इससे राजनीतिक नेतृत्व और समाज के सामने यह चुनौती आ खड़ी होती है कि वे

सार्वजनिक संगठनों का कामकाज सुव्यवस्थित करने के लिए संगठनात्मक परिवर्तनों के जरिए कार्रवाई शुरू करें।

13.9.3 व्यावसायिक उत्तरदायित्व

अतीत की अपेक्षा, आज अनेक विशेषज्ञ जैसे, डाक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, अकाउंटैण्ट, कम्पनी सेक्रेटरी और वकील आदि, पेशेवर लोग प्रशासनिक सेवाओं और सार्वजनिक उद्यमों में आ रहे हैं। अपने पेश मे उनकी कुछ मान्यताएं होती हैं, आचरण के नियम होते हैं, अपने कर्तव्य पालन के दौरान जिनका निर्वाह करना उनके लिए अवश्यक होता है। यही नहीं व्यावसायिक संस्थाएं अपने सदस्यों पर अनुशासन और उत्तरदायित्व भी लागू करती हैं। कभी–कभी व्यावसायिक संस्थाएं गलत काम का दोषी पाए जाने पर उस व्यक्ति की सदस्यता भी समाप्त कर देती हैं। ऐसे भी उदाहरण मिले हैं जब सार्वजनिक सेवाओं में कार्यरत व्यावसायिक विशेषज्ञों ने अपने पेशे के मानकों और ईमानदारी के सवाल पर नौकरी तक छोड़ दी। नियमानुकूल आचरण का ये उत्तरदायित्व सिर्फ तकनीकी विशेषज्ञों तक ही सीमित नहीं है। आज प्रशासनिक अधिकारियों और सरकारी कर्मचारियों ने भी व्यावसायिक स्तर विकसित कर लिया है और उनके अपने नियम तथा मानक हैं। प्रशासनिक सेवाओं में यह स्वागतयोग्य कदम है। व्यावसायिक उत्तरदायित्व का कारगर रूप से निर्वाह तब होता है जब प्रशासनिक कर्मचारी इस बात के प्रति जागरूक हो कि नियमानुकूल व्यवहार और आचरण क्या है।

13.10 अधिकार और उत्तरदायित्व

यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि अधिकार और उत्तरदायित्व में समानता होनी चाहिए। अर्थात् किसी निर्धारित कार्य को पूरा करने के लिए उत्तरदायी अधिकारी या कर्मचारी को उस कार्य के अनुरूप पर्याप्त अधिकार भी मिलने चाहिए किसी भी संगठन में यदि प्रमुख अधिकारी कार्य संचालन के लिए उत्तरदायी है तो उसे कर्मचारियों की भर्ती, खर्च और अधीनस्थों पर नियंत्रण का अधिकार भी होना चाहिए। यदि उन्हें कार्मिक और वित्तीय मामलों मे अधिकार नहीं दिए जाते तो उन्हें उत्तरदायित्व से भी मुक्त कर देना चाहिए। इस संदर्भ में उर्विक की टिप्पणी उल्लेखनीय है। उनके अनुसार ''किसी समूह या व्यक्ति को उत्तरदायित्व के निर्वाह हेतु आवश्यक अधिकार दिए बिना उन्हें या उसे किसी गतिविधि के लिए जिम्मेदार ठहराना स्पष्ट रूप से अनुचित और असंतोषजनक है। संगठन के सुचारू संचालन के लिए यह जरूरी है कि सभी स्तरों पर अधिकार और उत्तरदायित्व एक साथ उत्पन्न हों और एक समान हों।'' किन्तु दोहरे नियंत्रण, समितियों के जरिए प्रबंध तथा क्रियात्मक अधिकारों के उपयोग के कारण इस संकल्पना पर अमल कठिन हो गया है। अधिकार और उत्तरदायित्व प्रशासन की प्रक्रिया के अभिन्न अंग हैं। अनेक विद्वानों ने इस परम्परागत

मान्यता पर आपत्ति की है कि संगठन में अधिकारों का प्रवाह ऊपर से नीचे होता है। बर्नार्ड की राय में अधिकार और उत्तरदायित्व की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण बात यह है कि अधीनस्थ उसे स्वीकार करें और अधिकार के प्रति आज्ञाकारी रहें। अधिकार के मुख्य स्रोत हैं– कानून, परम्परा और प्रत्यायोजन। प्रशासकों को नौकरियों, और समाज में संगठित समूहों से विशेषज्ञता समर्थन का लाभ मिलता है। अक्सर उनकी शिकायत रहती है कि उनके अधिकार पर्याप्त नहीं है। उन्हें नेतृत्व के गुण विकसित करने चाहिए, उनके अभाव में वे सभी स्थितियों में प्रभावकारी नहीं रहते। विधायिका, कानूनी अदालतों, सवैधानिक सुरक्षा, समाचार पत्रों और संगठन में सोपानक्रम के रूप में कुछ ऐसी व्यवस्थाएं है जो अधिकारों के दुरुपयोग और गलत इस्तेमाल पर नियंत्रण रखती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उत्तरदायित्व अधिकारों के दुरूपयोग पर नियंत्रण रखता है। उत्तरदायित्व तीन प्रकार के होते हैं– राजनीतिक, संस्थागत और व्यावसायिक। व्यावसायिक उत्तरदायित्व का विकास प्रशासनिक सेवाओं में एक स्वस्थ संकेत है। कानूनों और नियमों के बजाय व्यक्ति की चेतना से इन्हें अधिक कारगर रूप में लागू किया जा सकता है।

13.11 सारांश

अधिकार किसी औपचारिक संगठन में संवाद का लक्षण है, जिसकी वजह से यह किसी सहयोगी को या संगठन के सदस्य को संचालक के रुप में मान्य होता है या वह यह निश्चय करता है कि इस संगठन में क्या करना है या क्या नहीं करना है। उत्तरदायित्व, निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करने की जिम्मेदारी है। अधिकार और उत्तरदायित्व का सम्बन्ध अटूट है। अधिकार के बिना उत्तरदायित्व उठाना सम्भव नहीं है। पारस्परिक मान्यता यह है कि अधिकारों और उत्तरदायित्वों के बीच समानता होनी चाहिए। किन्तु आधुनिक जटिल संगठनों में इस सिद्धान्त को कड़ी परीक्षा से गुजरना पड़ सकता है।

13.11 मुख्य शब्दावली

अवैध : गैर–कानूनी
आयाम : फैलाव या विस्तार
आंशिक : अंश–भर अथवा बहुत कम
स्थानांतरण : एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तन
समादेश : आज्ञा, आदेश या निर्देश
संहिता : अधिनियम या नियमावली

13.12 बोध प्रश्न

1. (1) अधिकार क्या है?
   (2) अधिकार और शक्ति में भेद कीजिए।
   (3) अधिकार के स्रोत कौन–कौन से है?

(4) अधिकार की पूर्व अपेक्षाएं क्या हैं?

(5) क्या अधिकार की कोई सीमाएं?

2. (1) उत्तरदायित्व क्या है?

(2) उत्तरदायित्व के तीन प्रकारों में क्या अंतर है?

(3) अधिकार और उत्तरदायित्व समान होने चाहिए। इस कथन की व्याख्या कीजिए।

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

11. (1) देखें भाग 28.2

(2) देखें भाग 28.3

(3) देखें भाग 28.5

(4) देखें भाग 28.6

(5) देखें भाग 28.7

2. (1) देखें भाग 28.8

(2) देखें भाग 28.9

(3) देखें भाग 28.10

13.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Barnard Chester, 1938, The Functions of the Executive; Harvard University Press: Cambridge.

Fayol Henry, 1949, General and Industrial Management; Sir Issac Pitman, London.

McFarland Dalton E, 1964, Management: Principles and Practice; Macmillan: New York.

Millet, John D, 1954, Management in the Public Service; McGraw Hill : New York.

Pfiffner John M. & Sherwood 1968, Frank P, Administrative Organisation: New Delhi.

Robbins, Stephen P, 1978, The Administrative Process; Prentice Hall of India: New Delhi.

Roorkee, Francis E, 1969, Bureaucracy, Politics and Public Policy; Little Brown: Boston.

Urwick Lyndall, 1948, The Elements of Administration; Harper and Brothers: New York.

Weber Max, 1947, The Theory of Social and Ecoomic Organisations; (Translation by Talcot Parsons and A.M. Henderson); Free Press: New York.

इकाई– 14
नेतृत्व

इकाई का उद्देश्य

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 परिभाषाएं
14.3 नेतृत्व के सिद्धान्त
14.4 नेतृत्व के गुण
14.5 नेताओं का प्रकार्य
    14.5.1 नेता : एक अधिशासी के रुप में
    14.5.2 नेता : एक शिक्षक के रुप में
14.6 नेतृत्व की प्रविधियां
14.7 नेतृत्व की शैलियां
14.8 नेतृत्व की बाधाएं
14.9 सारांश
14.10 मुख्य शब्दावली
14.11 बोध प्रश्न
14.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य :

- नेतृत्व को परिभाषित कर सकेंगे,
- नेतृत्व के सिद्धांतों और नेतृत्व की शैलियों की व्याख्या कर सकेंगे,
- नेतृत्व की प्रविधियां बता सकेंगे, और
- नेतृत्व की समस्याओं तथा बाधाओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

लोकसेवा के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कार्य किसी समूह, संगठन या संस्था के समूचे काम को वांछित उद्देश्यों की ओर संचालित और निर्देशित करने के लिए, नेतृत्व प्रदान करना है। आधुनिक सरकार तंत्र के अंतर्गत संगठनों के फैलाव और उनकी दिनों–दिन बढ़ती संख्या के कारण नेतृत्व और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। आज सैकड़ों हजारों की संख्या में लोग विभिन्न संस्थाओं में शामिल होते है।

लेकिन प्रायः इन लोगों को इस बात की पूर्व जानकारी नहीं होती कि उनकी संस्था किस खास काम को अंजाम दे रही है। उन्हें अपने निजी कर्त्तव्य के रूप में तमाम जटिल प्रकार्यों से गुजरना होता है। इसलिए यह देखना आवश्यक हो जाता है कि संस्था के काम में उन सबकी प्रभावी भूमिका हो।

ऐसे बहुत से कारण हैं जो मिलकर एक संस्था के सदस्यों को उस संस्था के साथ निजी सम्बन्ध बनाने से रोकते हैं या इन निजी सम्बन्ध से उन्हें निरन्तर दूर हटाते हैं। उनका और संस्था का सम्बन्ध अवैयक्तिक, ठंडा और निर्जीव हो जाता है। आमतौर पर बहुत सी सरकारी संस्थाओं में काम का विभागीय स्तर पर विभाजन होता है। प्रत्येक विभाग की अपने काम की स्वतंत्र जिम्मेदारी होती है। सभी विभागों के काम को सूत्रबद्ध करने के लिए एक नेता की आवश्यकता होती है। फिर, काम का यह विभाजन संस्था में काम करने वालों को संस्था के केन्द्रीय लक्ष्य से दूर हटाता है। यह प्रवृत्ति, प्रत्येक संस्था, विभागों के प्रमुखों और आम सदस्यों, दोनों के ही बीच दिखाई देती है। दोनों ही संस्था की समस्याओं को प्राथमिक रुप से अपने प्रकार्यात्मक प्रयास के नजरिए से देखते हैं। प्रकार्यात्मकता और काम के विभाजन से उत्पन्न प्रवृत्तियों को केवल सक्षम नेता ही सुधार सकते हैं। सक्षम नेता ही संस्था के सभी सदस्यों के निश्चित लक्ष्यों से जोड़े रख सकता है ताकि श्रेष्ठतम परिणाम प्राप्त किए जा सकें।

इस तरह, संस्थाओं, उनके प्रकार्यों, विभागों और भौगोलिक रुप से दूर–दूर तक स्थापित होती उनकी सहयोगी इकाइयों में, दिन–दूनी हो रही बढ़ोत्तरी ने नेतृत्व के महत्व को बढ़ाया है। इस सम्बन्ध में यहां यह उल्लेख आवश्यक है कि पहले समझा जाता था कि जन्म जात नेता स्थिति पर काबू पाने के लिए काफी है। मगर अब यह परिदृश्य बदल गया है। प्रभावी नेतृत्व देने वालों की मांग आज कई क्षेत्रों में, कई मोर्चों पर, और अधिकारी वर्ग के क्रमिक स्तरों पर है। इसी मांग को केवल जन्मजात नेता पूरा नहीं कर सकते, इसलिए नेताओं को तैयार करना आवश्यक है।

नेतृत्व देने वालों की बढ़ती जरुरत के तहत, नेतृत्व की अवधारणा में भी बदलाव आया है। अब हम सामान्य लोगों से बिल्कुल अलग असाधारण क्षमताओं वाले किसी विलक्षण व्यक्ति की तलाश नहीं करते। संस्थाएं अब उन व्यक्तियों को चाहती हैं जो उनका प्रशासन ठीक से संभाल सकें।

इस सम्बन्ध में कुछ शंकाओं का निवारण करना आवश्यक है। सामान्यतः नेतृत्व की व्याख्या समादेश (आदेशाधीन काम कराने) की शक्ति या प्रभुत्व बनाए रखने की क्षमता के रुप में की जाती है। लेकिन किसी काम को पूरा करा ले जाने के लिए समादेशन अपने आप में पर्याप्त आधार नहीं है। वास्तव में लोगों पर अधिकार के प्रयोग का नाम समादेश है। परन्तु नेतृत्व की रुचि इस बात में होती है कि एक समान उद्देश्य के लिए प्रभावी ढंग से और प्रसन्नतापूर्वक साथ–साथ काम करने के लिए लोगों को कैसे तैयार किया जाए। इसमें लोगों के साथ मिलकर अधिकार के

प्रयोग और सर्जन का भाव निहित है। यह उस प्रक्रिया से सम्बन्धित रहता है जिसके द्वारा परिणाम प्राप्त होते हैं। इस तरह सारांश में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक संस्था में प्रत्येक व्यक्ति को काम के लिए तैयार किया जाता है और काम में उसे सहयोगी बनाया जाता है। जरुरत यह है कि व्यक्ति का संस्था के साथ गहरा जुड़ाव रहे। यह काम एक अच्छे नायक द्वारा किया जा सकता है।

14.2 परिभाषाएं

अब हम नेतृत्व को परिभाषित करने का प्रयास करेंगे। प्रत्येक अधिशासी चाहे लोगों के साथ उसका सम्पर्क हो अथवा अप्रत्यक्ष, वह संभव रुप से इस स्थिति में होता है कि लोगों का नेतृत्व करे। उसका काम होता है कि वह लोगों को एक प्रभावी सामंजस्य पूर्ण कार्य स्थिति में ले आए। इस काम को पूरा करने में जो तत्व कारगर होता है, वह है नेतृत्व। नेतृत्व को एक ऐसी गतिविधि के रुप में परिभाषित किया गया है जिससे लोगों को किसी ऐसे लक्ष्य के लिए सहयोग करने के लिए प्रभावित किया जाता है जिसे वे लोग वांछित समझते हैं। पहला, उस तरीके या प्रविधि की व्याख्या करना लाभदायक है जिसके द्वारा लोग नेतृत्व ग्रहण करते हैं। दूसरा, प्रभावित करने की प्रक्रिया के अध्ययन की जरुरत है। तीसरा, ऐसे लक्ष्यों की प्रकृति का विश्लेषण होना चाहिए जिन्हें लोग वांछित पाएं, और चौथा, काम के दौरान नेताओं द्वारा प्रदर्शित गुणों पर विचार होना चाहिए।

उपरोक्त तत्वों की व्याख्या के लिए कुछ विवरणों, की आवश्यकता होगी। यहां ये विवरण संक्षेप में प्रस्तुत हैं। अधिशासी जो कि नेता भी होता है, कभी–कभी नेतृत्व करने का अवसर एक विशेष स्थिति में पाता है। यह स्थिति वह होती है जो नेता को प्रकार्य का अवसर देती है। इसलिए प्रत्येक नेता जितना अधिकार प्राप्त करने के अपने संकल्प से तैयार होता है, उतना ही वह अपने जीवन और समय की परिस्थितियों से भी तैयार होता है। कभी–कभी हम स्व–निर्मित नेताओं को भी देखते हैं जो अपना रास्ता प्रबल, आग्रही अहम् वाले अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व और कुछ निश्चित परिणाम प्राप्त करने के अपने मजबूत इरादे के संयोग से स्वयं गढ़ते हैं।

दूसरी प्रक्रिया एक लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया से गुजरती है जहां एक नेता और उसके अनुयाइयों के बीच एक आपसी समझ रहती है। इस स्थिति में समूह द्वारा चुना गया नेता सफलता की दृष्टि से बहुत ही लाभदायक स्थिति में रहता है, लेकिन दूसरी ओर, तुलनात्मक रुप में वह बड़ी कठिनाई में भी होता है क्योंकि हर समय उसकी परीक्षा होती रहती है, फिर भी एक समूह द्वारा चुने गये नेता के पास अपने अनुयाइयों का मन जीतने और उन पर अपना प्रभाव बनाए रखने का श्रेष्ठतम अवसर रहता है।

अन्ततः, लोगों को नेतृत्व करने का अवसर उस विशेष विधि के माध्यम से मिलता है जो आमतौर पर बहुत सी संस्थाओं में प्रचलित है। इन संस्थाओं में निदेशक

या न्यायी मंडल द्वारा सर्वोच्च अधिशासियों की नियुक्ति की जाती है। ये सर्वोच्च या प्रवर अधिशासी बाद में अवसर अधिशासियों की नियुक्ति करते हैं। यहां इस अधिशासी वर्ग का अपना निहित स्वार्थ होता है जो उन्हें एक उभय मंच पर ले आता है। यहां नेता की समस्या यह होती है कि वह इन अधिशासियों को बताए कि संस्था की सेवा करके वस्तुतः वे अपनी सेवा कर रहे हैं, इस तरह समूचे रुप में संस्था के प्रति वफादार रहकर, वे स्वयं अपने प्रति वफादार होते हैं।

14.3 नेतृत्व के सिद्धान्त

नेतृत्व एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है, जिस पर व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा व्यापक शोध किया गया है। आयोवा विश्वविद्यालय में किए गए रोनाल्ड लिपिट और राल्फ के0 व्हाइट का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। ओहियो स्टेट यूनविर्सिटी के ब्यूरो ऑफ बिजनेस रिसर्च तथा मिशीगन यूनिवर्सिटी ने नेतृत्व पर अध्ययन कार्य में उल्लेखनीय योगदान दिया है। इन अध्ययनों से प्राप्त नेतृत्व के महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं, विशेषक (विशिष्ट गुण) सिद्धान्त, पारिस्थितिक सिद्धान्त तथा समूह सिद्धान्त आदि। नेतृत्व की स्पष्ट समझ हासिल करने के लिए इनमें से कुछ सिद्धान्तों पर चर्चा निम्न प्रकार है :

विशेषक सिद्धान्त

प्रारम्भ में नेतृत्व सम्बन्धी अध्ययन नेताओं के गुणों पर ही केन्द्रित रहे जो प्रमुख सवाल हमेशा ही पूछा जाता था, वह था कि एक व्यक्ति को कौन से गुण या विशेषक नेता बनाते हैं। कुछ का मत था कि नेता जन्मजात होता है, बनाया नहीं जाता। यही वह सिद्धान्त है जिसे आमतौर पर नेतृत्व का महान व्यक्ति सिद्धान्त (द ग्रेटमैन थ्योरी) कहा जाता है। इन जन्मजात नेताओं के पास कुछ विशेष आनुवंशिक गुण, चारित्रिक विशेषताएं, और कुछ प्राकृतिक योग्यताएं होती हैं जिनके कारण वे नेता बन पाते हैं। विशेषक दृष्टिकोण प्रमुख रुप से नेताओं के वैयक्तिक गुणों की पहचान से सम्बन्धित है। बाद में, व्यवहार सम्बन्धी अध्ययनों से प्रकट हुआ कि नेतृत्व के गुण पूरी तरह जन्मजात नहीं होते बल्कि उन्हें अध्ययन, प्रशिक्षण और अनुभव द्वारा अर्जित भी किया जा सकता है। कई अध्ययनों में महत्वपूर्ण विशेषकों की पहचान करने की कोशिश की गई और विभिन्न विद्वानों द्वारा पहचाने गए विशेषकों में व्यापक भिन्नता पाई गई। उदाहरण के लिए कीथ डेविस ने एक सफल नेता के चार प्रमुख विशेषक बताए यथा– बुद्धिमत्ता या प्रतिभा, सामाजिक परिपक्वता और उदारता, आंतरिक अभिप्रेरणा और उपलब्धि की तीव्र इच्छा और मानव सम्पर्क की प्रवृत्ति।

समूह सिद्धान्त

समूह सिद्धान्त का विकास भी सामाजिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया। यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि एक नेता अपने अनुयायियों को लाभ पहुंचाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार अनुयाई उन नेताओं पर निर्भर करते हैं जो

उनकी जरुरतों को पूरा कर पाते हैं वे अपना समर्थन और सहयोग, नेताओं को उस समय तक देते रहते हैं, जब तक ये नेता उनकी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और संस्था के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए उन्हें प्रेरणा देते रहते हैं। हालान्देर और जूलियन ने अपने निम्न कथन में इसी बिन्दु पर जोर दिया है।

''नेता की भूमिका में जो व्यक्ति अपेक्षाओं को पूरा करता है, समूह लक्ष्यों को उपलब्ध कराता है, दूसरों को लाभ पहुंचाता है, इनके बदले में पद, प्रतिष्ठा तथा स्वयं को और अधिक प्रभावशाली पाता है क्योंकि नेतृत्व में एक दुतरफा प्रभाव सम्बन्ध निहित है, नेता के प्रभाव को स्वीकार करने वाले, बदले में स्वयं अपने प्रभाव की स्वीकृति चाह सकते हैं इस सम्बन्ध का बने रहना इस पर निर्भर करता है कि दोनों ही पक्ष एक दूसरे के प्रभाव के आगे थोड़ा–थोड़ा झुकें।''

पारिस्थितिक सिद्धान्त

नेतृत्व की समग्र व्याख्या के लिए विशेषक और समूह सिद्धान्त दोनों ही अपर्याप्त पाए गए। इसलिए विद्वानों ने अपना ध्यान नेतृत्व के पारिस्थितिक पक्ष की ओर मोड़ा। उन्होंने उन परिस्थितिगतों की खोज शुरु की जो नेतृत्व की भूमिकाओं, कुशलताओं और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इस सिद्धान्त का मानना है कि नेतृत्व परिस्थिति में से उभरता है और परिस्थिति से प्रभावित होता है। एफ.ई. फील्डर, जो इस सिद्धान्त के एक महत्वपूर्ण प्रतिपादक हैं, मानते हैं कि परिस्थिगत कारकों की वजह से लोग नेताओं का स्वागत करते हैं। वे जोर देकर कहते हैं कि एक प्रभावशाली नेता या एक प्रभावहीन नेता की बात करना अर्थपूर्ण नहीं है। हम केवल उस नेता की बात कर सकते हैं जो एक परिस्थिति में सफल होता दिखता है, और दूसरी परिस्थिति में असफल।

14.4 नेतृत्व के गुण

किसी भी नेता में कुछ विशेष गुण आवश्यक होते हैं क्योंकि वे किसी भी व्यक्ति की सफलता के लिए अनिवार्य हैं। गुण सम्बन्धी न्यूनताओं को सचेतन प्रयास द्वारा दूर किया जा सकता है। अच्छे गुणों को और अधिक समृद्ध किया जा सकता है, लेकिन सभी गुणों को अभ्यास से पैदा नहीं किया जा सकता क्योंकि कुछ गुण अन्य की तुलना में अधिक जन्मजात होते हैं। इनकी ठीक–ठीक सूची बनाना संभव नहीं है। फिर भी, कुछ विशिष्ट और सहजता से पहचाने जाने वाले विशेषकों को यहां व्यावहारिक अनुभव के आधार पर सूचीबद्ध किया गया है। हालांकि इनमें से बहुत से विशेषक मनोवैज्ञानिक शब्दावली के अन्तर्गत आते हैं, लेकिन ये सारे के सारे गुण नेतृत्व की हर परिस्थिति में अनिवार्यतः प्रकट नहीं होते और न प्रत्येक नेता में इन गुणों का होना समान रुप से जरुरी होता है। यहां सभी अपेक्षित गुणों का एक सकल खाका प्रस्तुत करना ही उद्देश्य है।

1. इस पर आम सहमति है कि सर्वाधिक सफल नेताओं की सफलता का रहस्य उनकी नैसर्गिक असाधारण शारीरिक और स्नायविक ताकत है जो किसी

विशिष्ट तरीके से आम लोगों से ऊपर उठते दिखाई देते हैं वे एक औसत व्यक्ति की तुलना में अधिक अंतः ऊर्जा, अधिक सहन शक्ति और अधिक शारीरिक–मानसिक बल के स्वमी होते हैं। अच्छा स्वास्थ्य और आधारभूत क्षमता नेता की सामर्थ्य को बढ़ाने वाले गुण हैं। हममें से हरेक इस बात को जानता है कि क्रियाशीलता के लिए शारीरिक और स्नायविक दशा कितनी महत्वपूर्ण है। सुस्ती, थकान, उदासीनता एक अच्छे नेता के बाधक तत्व माने जाते हैं। नेता को यह भी समझना चाहिए कि एक सामान्य कार्यकर्ता की तुलना में उसका काम कहीं अधिक कठिन होता है इसलिए नेता को अपने स्वास्थ्य और शक्ति के बारे में सावधान रहना चाहिए।

2. दूसरा गुण जो प्रत्येक अच्छे नेता में प्रमुखता से होता है स्पष्ट लक्ष्य और दिशा की तीव्र समझ। नेता वह होता है जो अच्छी तरह जानता है कि वह क्या कराना चाहता है और कहां पहुंचना चाहता है। इसका मतलब है कि एक नेता उन लक्ष्यों या उद्देश्यों को लेकर जिन्हें वह पूरा करना चाहता है, बहुत ही साफ और स्पष्ट होता है।

3. अगला गुण उत्साह से सम्बन्ध रखता है। मात्र एक ठोस उद्देश्य का होना ही पर्याप्त नहीं होता। यह उद्देश्य सभी लोगों को सही भी प्रतीत होना चाहिए। इस सही उद्देश्य के साथ–साथ गतिशील भावना, आशा, विजय की इच्छा, और कार्य के प्रति गहरे लगाव का भाव भी होना चाहिए। इस प्रकार उत्साह आवश्यक है। यह इसलिए महत्वपूर्ण कि यह स्वस्फूर्त होता है। अगर नेता शारीरिक रुप से वास्तव में क्षमतावान है, और साथ ही उसके आगे स्पष्ट लक्ष्य है, तो उत्साह अपने आप ही पैदा हो जाता है। प्रयास से उत्साह में वृद्धि की जा सकती है, परन्तु इसके लिए अत्यधिक ताकत और दृढ़ बौद्धिक धारणाओं की जरुरत होती है। एक अच्छा नेता इस तथ्य के प्रति हमेशा जागरुक रहता है। उसे ज्ञात रुप से उत्साही होना चाहिए।

4. एक अच्छे नेता में स्नेह और मैत्रीभाव का होना आवश्यक है। वास्तव में, स्नेह और मित्रता भाव, जिनके प्रति ये प्रदर्शित किये जाते हैं उनके व्यवहार को प्रेरित करने के लिए सकारात्मक शक्ति का काम करते हैं, जो दूसरों के प्रति स्नेह और मैत्रीभाव प्रकट करता है, स्वभावतः दूसरों के मन में भी उसके प्रति ऐसे ही भाव जागते हैं लेकिन एक नेता को स्नेह और मैत्रीभाव जताने के नाम पर खुशामद या चाटुकारिता जैसी बुराइयों से बचना चाहिए।

5. अनुयायियों को अपने नेता पर भरोसा होना चाहिए। अनुयाई अपने नेता के प्रति एकात्मकता, ईमानदारी, ओर विश्वसनीयता का भाव रखना चाहते हैं। नेता के प्रति उनके भरोसे को बल मिलना चाहिए। संक्षेप में, वे अपने नेता में ईमानदारी देखना चाहते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि वह नैतिकता की प्रतिमूर्ति हो, क्योंकि यह संभव नहीं है, लेकिन जरुरत इस बात की होती है कि नेता का आचरण अनुयायियों की अपेक्षाओं के अनुकूल हो। हम यहां यह बात जोड़ सकते हैं कि जहां

संस्था के प्रमुख लक्ष्यों को लेकर विचारों की भिन्नता हो वहां नेता को अपने विश्वसनीयता और ईमानदारी का प्रयेाग करना चाहिए और अनुयायियों के संदेह दूर कर उनमें अपने प्रति सहमति पैदा करनी चाहिए। अगर इस काम में वह असफल हो जाए तो एक उचित समय देकर उसे अपने पद से हट जाना चाहिए। मगर अपने अनुयायियों के सामने उसे वह पृष्ठभूमि खोल देनी चाहिए जिसके आधार पर उसने यह कदम उठाया मगर ये असाधारण स्थितियां हैं।

ईमानदारी की अपेक्षा एक और वजह से भी की जाती है। हमारे जटिल समाज में तमाम परस्पर विरोधी मांगें होती हैं। ऐसी स्थिति में बहुत से मसलों पर एक उचित राय कायम करना असंभव हो जाता है। फिर भी राय मांगी जाती है और एक निर्णय की उम्मीद की जाती है। इस स्थिति में लोग नेता से पूर्ण ईमानदारी बरते जाने की अपेक्षा करते हैं। वह एक व्यक्ति के समूचे जीवन दर्शन की एक प्रमुख समस्या है।

इन गुणों के अलावा चेस्टर बर्नार्ड ने नेता के चार अन्य गुण भी बताए हैं। क्रमिक महत्व की दृष्टि से वे हैं– 1. जीवन शक्ति और सहनशीलता, 2. निर्णयात्मकता, 3. विश्वासोत्पादकता, 4. जिम्मेदारी और बौद्धिक क्षमता। मिलेट ने ऐसे आठ गुणों की पहचान की है जो नेतृत्व में होने चाहिए। वे हैं– 1. अच्छा स्वास्थ्य, 2. काम करने की भावना, 3. दूसरे लोगों में रुचि, 4. बुद्धिमत्ता, 5. ईमानदारी, 6. विश्वासोत्पादकता, 7. निर्णय शक्ति और 8. निष्ठा।

14.5 नेताओं का प्रकार्य

संस्थात्मक जीवन में नेता की महत्वपूर्ण भूमिका है। संस्थाओं की सफलता या विफलता बहुत कुछ इस पर निर्भर करती है कि सम्बद्ध नेता अपना कार्य किस प्रकार करते हैं। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि एक नेता किन प्रकार्यों को पूरा करता है। हिक्स और गलेट ने नेता के आठ महत्वपूर्ण प्रकार्य बताए हैं। वे हैं– 1. विमोचन करना या फैसला देना, 2. सुझाव देना, 2. उद्देश्य सामने रखना, 4. उत्प्रेरक का कार्य करना, 5. सुरक्षा प्रदान करना, 6. प्रतिनिधित्व करना, 7. प्रेरणा देना, 8. प्रशंसा करना।

चेस्टर बर्नार्ड ने अधिशासियों के तीन प्रमुख प्रकार्य बताए हैं, संस्था के अन्तर्गत सम्पर्क सम्बन्ध बनाए रखना, अलग–अलग व्यक्तियों से आवश्यक सेवाएं प्राप्त करना और प्रयोजन तथा उद्देश्य निर्मित करना, लेकिन एक नेता का काम न तो हिक्स और गलेट द्वारा बताए गए आठ प्रकार्यों तक सीमित है और न बर्नार्ड द्वारा बताए गए तीन प्रकार्यों तक। मोटे तौर पर एक अधिशासी के रुप में कार्य करने वाले नेता के प्रकार्यों में निम्न बातें शामिल हैं–

1. नीतियों और प्रक्रियाओं को नियोजित करना और उन्हें परिभाषित करना।
2. सभी अलग–अलग व्यक्तियों की गतिविधियों को संगठित करना।

3. अधिकार एवं उत्तरदायित्वों का प्रतिनिधित्व करना।
4. उन्हें वांछित लक्ष्यों तक पहुंचाने के लिए नियंत्रित करना।
5. समूह के कार्यों का पर्यवेक्षण करना।
6. सामान्य आदेश और दिशा–निर्देश देना।
7. नीतियों की व्याख्या करना और उन्हें लोगों तक पहुंचाना।
8. अधिशासी कर्त्तव्यों को बांटने के लिए प्रमुख सहायकों को प्रशिक्षित करना।
9. समन्वयन करना, और
10. अपनी मेहनत का योगदान करने वाले सभी कर्मियों को प्रेरित करना और उनमें उत्साह का संचार करना।

एक नेता को अपनी संस्था में निश्चित लक्ष्यों का समर्थन करना चाहिए ताकि लोगों को संस्था के उद्देश्यों को समझने में आसानी हो। अगर काम के लक्ष्य ठोस और सही हों तो नेता की स्थिति भी मजबूत होने की संभावना रहती है। अनुयायियों का मन जीतने से पहले नेता को इस मामले में निश्चित होना चाहिए कि उसके सामने एक ठोस, तथा लोगों को आकर्षित करने वाला लक्ष्य है। इस काम के दौरान नेता को अपने अनुयायियों के अनुभवों का विश्लेषण भी करना चाहिए ताकि इन अनुभवों की अच्छाइयों को उनके सामने स्पष्ट किया जा सके। यह काम विश्वासोत्पादक ढंग से होना चाहिए क्योंकि ये अच्छाइयां अनुयाइयों को लाभ पहुंचाने वाली होंगी। सारांशतः इसका अर्थ यह है कि संस्था के लक्ष्यों का समर्थन करते समय नेता को अनुयायियों को अपने विश्वास में ले लेना चाहिए।

किसी लक्ष्य के लिए अनुयायियों का समर्थन प्राप्त करने की प्रक्रिया नेता के लिए प्रायः बहुत सी चुनौती भरी होती है। अनुयाई तभी समर्थन देते हैं जब उन्हें विश्वास हो जाए कि उनके हितों और उनकी इच्छाओं का भी समुचित ध्यान रखा जा रहा है। नेतृत्व वशीकरण या विक्रय कला का मसला नहीं है। यह तो स्वयं लोगों के अन्दर से आवेग, प्रेरणा और प्रयासों को जमाने का मसला है। वास्तव में नेतृत्व की पहचान उन व्यक्तियों से होती है जिन्हें यह समृद्ध बनाता है, उनसे नहीं जिन पर यह प्रभुत्व स्थापित करता है।

14.5.1 नेता : एक अधिशासी के रुप में

नेता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष जिसमें हमारी वास्तविक रुचि है, अधिशासी का है। एक अधिशासी का प्राथमिक कर्त्तव्य कुछ विभागों या उनकी इकाइयों या कुछ उद्यमों को निर्देशित करना होता है। इस सम्बन्ध में नेता को सबसे पहले अधिशासी का कर्त्तव्य पूरा करने में सक्षम होना चाहिए। नेता को यह देखना चाहिए कि वह अधिशासी की भूमिका भली प्रकार निभा पा रहा है।

प्रत्येक संस्था में किए जाने के लिए बहुत से काम और गतिविधियां होती हैं। इसलिए कर्त्तव्यों को उप–विभाजन और प्रकार्यात्मक–विवरण की सदैव ही

आवश्यकता बनी रहती है। फिर इनमें समन्वयन की जरुरत होती है। इसके अलावा, शीर्षस्थ अधिशासी संभवतः सारे विवरणों की जानकारी नहीं रख सकता। इस स्थिति का सामना प्रायः सभी शीर्षस्थ अधिशासियों को करना पड़ता है वे चाहे निगमों में हों या सरकारी विभाग आदि में। जैसे–जैसे संस्था के आकार में वृद्धि होती है वैसे–वैसे संस्था के शीर्ष अधिशासी का तकनीकी या प्राविधिक नियंत्रण कम होता प्रतीत होता है। यह सच है कि प्रत्येक नेतृत्वकारी परिस्थिति में नेता को कर्मचारी वर्ग को समग्र रुप में उचित निर्देश देने के तौर–तरीकों और साधनों पर पर्याप्त पकड़ बनाए रखनी होती है। जटिलताओं के कारण नेतृत्व के काम की अपनी तकनीक या प्रविधियां विकसित हुई हैं और ये प्रविधियां किसी व्यवसाय या कर्मचारी विभागों के संचालन या निर्देशन में काम आने वाली विशेष प्रविधियों से भिन्न हैं। एक विशाल संस्था में एक शीर्ष पदस्थ अधिशासी को प्राथमिक रुप से समन्वयकारी जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। ऐसी स्थिति में एक अधिशासी नेता को एक अच्छे तकनीशियन से कहीं कुछ अधिक ही होना चाहिए। एक आर्केस्ट्रा का संचालक एक अच्छे समन्वयकर्ता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इस तरह समन्वय प्रविधि का अर्थ है ऊपर से लेकर नीचे तक के सभी लोगों के काम को सूत्रबद्ध करने, और उसका पर्यवेक्षण करने की योग्यता। दूसरे शब्दों में संस्था के सभी पक्षों के बीच सही तालमेल बिठा सकने की क्षमता एक समन्वयकर्ता में होनी चाहिए संस्थाओं के बीच कुछ भिन्नताएं हो सकती हैं। लेकिन कुछ मोटे–मोटे निश्चित पक्ष हैं जो बहुत सी नेतृत्व स्थितियों में समान होती हैं।

संस्था के उद्देश्य की पूर्ति कितने प्रभाव के साथ होती है। यह अधिकतर उस संस्था के नेता की तकनीकी या प्राविधिक पकड़ के ऊपर निर्भर करता है। तात्पर्य यह है कि नेता को स्तरीय कार्य निष्पादन और प्राविधिक महत्व के अन्य सम्बन्धित मसलों की भली–भांति जानकारी होनी चाहिए। नेता को इस स्थिति में होना चाहिए कि वह उपलब्ध विशेषज्ञता का कुशलता से इस्तेमाल कर सकें। सिद्धान्त यह होना चाहिए कि विशेषज्ञ शिखर पर न हो बल्कि समय पर तत्काल उपलब्ध हो। अब यह नेता का कौशल है कि वह इसका किस सीमा तक लाभ उठा पाता है। इसके अतिरिक्त भी नेतृत्व के अन्य पक्ष हैं। अलग–अलग कर्मचारियों के समूह में से एक टीम बनाना, उनमें टीम भावना भरना, उनके प्रयासों को एकीकृत सकल परिणामों तक पहुंचाना भी नेतृत्व का एक पक्ष है। कुल मिलाकर इन्हीं व्यापक संदर्भों में नेताओं के कौशल को अधिकाधिक परखा जा रहा है। इस कौशल की अन्तिम स्थिति है, वांछित परिणाम प्राप्त करना। इसके लिए सक्रियता होनी चाहिए और दक्षता भी। इन्हीं गुणों की मदद से समूह–लक्ष्यों की पूर्ति होनी चाहिए। यह आवश्यक है और अनिवार्य भी। यह भी आवश्यक है कि नेता को अपने क्षेत्र में अर्जित किए गए मानव अनुभव का ज्ञान हो, जिसका वह इस तरह उपयेाग करे जो उसकी समझ से वांछित परणिाम देने वाला हो।

अब रहा किसी परिस्थिति में निर्णय लेने का सवाल। मनोवैज्ञानिक अर्थों में निर्णय लेने का अर्थ है उपलब्ध या साक्ष्यों को तौलना, विकल्पों को छांटना, और फिर ऐसा चुनाव करना जिस पर टिका रहा जाए। यहां सही निर्णय क्षमता का इस्तेमाल आवश्यक है इस सम्बन्ध में नेता को कुछ बहुत ही जाने–माने तत्वों को समझ लेना चाहिए। अगर इन्हें अच्छी तरह ध्यान में रखा जाए तो बिना सचेतन प्रयास किये निर्णय लेने की तुलना में इन तंत्रों के आधार पर निर्णय लेने के परिणाम निश्चित रुप से बेहतर होंगे। अब हम इन तत्वों को सूचीबद्ध करेंगे।

सबसे पहले नेता को सामने आने वाली समस्या को पहचानना चाहिए। दूसरे, उसे इस समस्या से सम्बन्धित सभी तथ्यों और आंकड़ों को इकट्ठा करना चाहिए। इसके बाद इसका वर्गीकरण होना चाहिए। चौथा कदम है, संभावित हल का विचार। पांचवा कदम होगा इस सम्भावित हल को परखना और पता लगाना कि क्या यह वास्तव में अच्छा हल है। अच्छे परिणामों के लिए यह परख आवश्यक है। और अंत में, परखे गए हल को, लाभदायक और वैद्य हल के रुप में स्वीकारना या अपनाना। इन बिन्दुओं के आधार पर सतर्कता से लिया गया निर्णय अचानक लिए गए निर्णय से बहुत अधिक सही होगा। इन प्रक्रिया में कुछ कठिनाइयां हैं परन्तु मौजूदा परिस्थितियों में यही सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

नेता को केवल निर्णय लेने के सम्बन्ध में ही सावधान नहीं रहना चाहिए बल्कि उसे अपने अनुयाईयों को इस तथ्य से प्रभावित भी करना चाहिए कि निर्णय लिया जा चुका है और अब इसमें मत वैभिन्य, झिझक या विलम्ब आदि की कोई गुंजाइश नहीं है। नेता को अपने निर्णय पर अमल करना चाहिए और उस पर डटे रहना चाहिए। यह उसका उत्तरदायित्व है जिससे वह बच नहीं सकता। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो इस बिन्दु पर अक्षम साबित होते हैं। यह अक्षमता उन्हें नेता के रुप में उनकी वास्तविक शक्ति से वंचित कर देती है।

निर्णय लेने की क्षमता और इच्छा का विकास किया जा सकता है। बहुत से निर्णयों में पूर्व योजना और मानक विधि का प्रयोग कारगर सिद्ध होगा। यह भी आवश्यक होता है कि निर्णय के मामले में अनुयाइयों से सलाह ली जाए और उनकी शंकाओं को दूर किया जाए। यहां यह बताना जरुरी है कि नेता के काम में हठ या अड़ियलपन का कोई स्थान नहीं है। इसके अलावा, एक वास्तविक नेता अपनी गलतियों का आरोप दूसरों पर लगाए बिना अपने निर्णयों को लागू करने की कीमत साहस के साथ चुकाता है।

नेता का एक महत्वपूर्ण प्रकार्य, प्रमुख रुप से सार्वजनिक संस्थाओं में, अपने मातहतों को अपने अधिकार का प्रतिनिधित्व देने की क्षमता है, ताकि वे अपने आवश्यक कर्त्तव्यों का निर्वाह कर सकें। नेतृत्व उसी समय प्रभावी होता है जब दूसरों को उन्हें दिए गए कार्यभार को स्वीकार करने और इस काम को क्रियान्वित करने के लिए

विश्वास में ले लिया जाए। प्रभाव में, नेतृत्व एक नेता के सहयोगियों और उसके मातहतों द्वारा निष्ठापूर्वक कार्य निष्पादन पर निर्भर है।

कुछ लोग सारे प्रकार्य खुद ही करना चाहते हैं। उन्हें दूसरों पर भरोसा नहीं होता। वे पारस्परिक निर्भरता को नापसंद करते हैं, लेकिन बड़े समूहों या प्रतिष्ठानों में प्रत्येक नियोजित प्रयाय में नेता और अनुयायियों की एक दूसरे पर पारस्परिक निर्भरता आवश्यक हो जाती है। नेता के पास सिवाय इसके कि वह दूसरों को अधिकार का प्रतिनिधित्व दे, कोई दूसरा रास्ता नहीं होता। प्रतिनिधित्व देने का सार है, दूसरों को अपने विवेक का इस्तेमाल करने का अधिकार सौंपना ताकि वे समाधान करने के लिए अपने फैसलों का प्रयोग कर सकें। इस स्थिति में नेतृत्व देने वाले प्रबन्धक वर्ग को यह देखने की जिम्मेदारी लेनी चाहिए कि इस विवेकाधिकार का इस्तेमाल किस तरह किया जाए।

अन्य गुणों की तुलना में किसी व्यक्ति में प्रतिभा का होना पूरी तरह आंतरिक गुण है। संस्था के संदर्भ में एक व्यक्ति की प्रतिभा किसी बिन्दु को ठीक से पकड़ लेने की उसकी क्षमता के रुप में परखी जाती है। किसी परिस्थिति को तत्काल समझ लेने और उसे संभाल लेने की योग्यता भी प्रतिभा ही होती है। यह क्षमता व्यक्ति से व्यक्ति, भिन्न होती है। प्रयास करके प्रतिभा का विकास करना कठिन है, लेकिन यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि ऐसे बहुत से नेताओं के उदाहरण हैं जिन्होंने अपनी दृढ़ता, विश्वसनीयता और मैत्रीभाव से प्रतिभा की अपनी कमी को पूरा किया है। इस सम्बन्ध में प्रतिभा के साक्ष्य के रुप में दो अन्य गुणों का भी उल्लेख किया जा सकता है, नामतः– कल्पना शक्ति और विनोदशीलता या हास–परिहास की भावना। कल्पनाशक्ति में प्रयास द्वारा सुधार किया जा सकता है। विनोदशीलता स्नेहक का काम करती है। इससे किसी को भी ठेस पहुंचाए बिना सहज संवाद का वातावरण बनाया जा सकता है।

14.5.2 नेता : एक शिक्षक के रुप में

नेतृत्व का अगला महत्वपूर्ण पक्ष उस भूमिका का है जो आगे विकास के लिए उसे निभानी होती है। इस सम्बन्ध में यह कथन उल्लेखनीय है कि एक अच्छा नेता अच्छा शिक्षक होता है। एक अच्छा अध्यापक कभी भी ''बॉस'' नहीं होता। वह एक मार्गदर्शक होता है जो लक्ष्य तय करता है, उसके सम्बन्ध में कुछ समस्याएं बताता है, गतिविधि को निर्देशित करता है, और एक व्यक्ति को समझ और व्यवहार के नए रास्ते पर खड़ा कर देता है। यही बात संस्था के प्रत्येक अधिशासी पर भी लागू होती है। हम अब एक अच्छे अध्यापक के उन गुणों की चर्चा करेंगे जो समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं और एक अच्छे नेता के लिए अत्यधिक उपयोगी होगी।

सबसे पहली बात यह कि एक अच्छा शिक्षक, शिक्षार्थी में यह भावना भरने की कोशिश करता है कि वह एक ऐसी गतिविधि में लगा हुआ है जो उसके लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसी तरह एक अच्छे शिक्षक की भांति अच्छा नेता भी सीखने

वालों के मन में सीखने की इच्छा पैदा करता है। दूसरी बात यह है कि शिक्षण की शुरुआत शिक्षार्थी के मौजूदा समग्र दृष्टिकोण और समझ के आधार पर होनी चाहिए। उसके आगे जो नए लक्ष्य रखे जाएं वे उससे जुड़े होने चाहिए। जिसे वह आज जानता है और महसूस करता है। तीसरा पक्ष यह है कि शिक्षण में एक पूरी प्रक्रिया शामिल है। इस प्रक्रिया के सफल संचालन के लिए उचित ढंग से सोचने, महसूस करने और फिर काम करने की जरुरत होती है। संक्षेप में एक नेता को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसके अनुयायियों को कमोवेश उसी अनुभव से गुजरने का अवसर मिले जिससे गुजरकर स्वयं उसके मन में अपने लक्ष्यों के प्रति विश्वास पैदा हुआ है। इस सम्बन्ध में चौथा पक्ष यह है कि अधिशासी यानी नेता अपने अनुयाई का मार्ग दर्शन करे, उसे सोचने का अवसर प्रदान करे, और उसे वह जानकारी उपलब्ध कराए जिससे सीखने की तात्कालिक विषय–वस्तु निर्मित होती हो। नेता को समूह के लक्ष्य में अनुयाई की रुचि जगाने में उसका मददगार होना चाहिए। एक नेता किसी लक्ष्य के लिए मात्र मौखिक वकालत करके अपने लक्ष्यों के लिए समर्थन प्राप्त कर सकता है, लेकिन वास्तविक समर्थन अनुयाई के अपने अनुभव से पैदा होता है जो कहीं अधिक गहरा होता। इस समर्थन में विश्वास की भावना होती है और यह भावनात्मक होता है।

शिक्षण प्रक्रिया के एक अन्तिम पक्ष का उल्लेख भी यहां आवश्यक है। सीखने में समय लगता है। एक विशेष सीमा के बाद जल्दी नहीं की जा सकती। शिक्षक और नेता को समान रुप से सीखने वालों की क्षमता और योग्यता की जानकारी होनी चाहिए। उसे उनके अनुभवों को निर्देशित करना चाहिए, और इस प्रकार उन्हें अपने दृष्टिकोण में वांछित परिवर्तन करने के लिए तैयार करना चाहिए।

सार रुप में यह स्पष्ट है कि अपेक्षित परिणामों के लिए सीखने वालों की, सीखने की प्रक्रिया में भागीदारी का सक्रिय अनुभव होना चाहिए। एक नेता के लिए जल्दबाजी की कोई गुंजाइश नहीं है। सीखना एक धीमी प्रक्रिया है लेकिन यह आवश्यक है।

14.6 नेतृत्व की प्रविधियां

किसी भी कला की कुछ निश्चित प्रविधियां होती हैं। यह बात नेतृत्व पर भी लागू होती है। इस संदर्भ में कुछ विशिष्ट प्रविधियां उल्लेखनीय हैं। सचेतन प्रयास से इन प्रविधियों को विकसित करने से आमतौर पर सुधार होता है, नेतृत्व क्षमता में खास तौर पर सुधार होता है। इस मामले में पहला स्थान है आदेश देने का। आदेश एक प्रकार्यात्मक तथ्य है। यह किए जाने वाले काम या कर्त्तव्य का ही अंग है। प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे प्रशिक्षण के परिणामस्वरुप यह जानकारी होनी चाहिए कि उससे किस काम की अपेक्षा की जा रही है और अच्छे कार्य निष्पादन के मानदण्ड क्या हैं। वैज्ञानिक प्रबन्ध हमें यही सिखाता है, और प्रत्येक अधिशासी से उम्मीद भी

यही की जाती है कि उन्हें अपनाए। इस प्रकार इस निश्चित और ठोस विधि से आदेश देने को कम से कम किया जा सकता है। परन्तु इसे पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता।

इसके कुछ अपवाद भी हैं एक नेता को आपात और अन्य आकस्मिक समस्याओं से अवश्य ही निपटना चाहिए क्योंकि अनुयाई सदैव ही अनुसरण के लिए नेता की ओर देखता है। ऐसी सूरत में नेता को आगे आना चाहिए और समस्या से निपटने के लिए नेतृत्व स्वयं संभालना चाहिए। काम करने की विधि की समस्याएं खड़ी होंगी। कर्मचारियों के बीच आपसी सम्बन्धों, या समूह अथवा विभागों के बीच विशेष समझौते की जरुरत होगी जिसमें आदेश देना आवश्यक होगा। इस तरह आदेश देना अपेक्षित और अनिवार्य हो जाता है।

आदेश देते समय नेता को स्पष्ट होना चाहिए और उसे सभी संभव संदेहों और भ्रमों को दूर करना चाहिए। आदेश देने के लिए चुने गए शब्दों का सावधानीपूर्वक चयन किया जाना चाहिए और उनमें से वक्ता और श्रोता के लिए समान अर्थ निकलना चाहिए। आदेश एकदम स्पष्ट होना चाहिए अगर ओदश मौखिक है तो नेता को यह आदेश स्वाभाविक उत्साहपूर्ण और दृढ़ स्वर में देना चाहिए। इसमें से क्रोध या झुंझलाहट नहीं झलकनी चाहिए। अगर आवश्यकता हो तो आदेश को दुहराया जा सकता है। किसी भी तरह का सतही व्यवहार एक अच्छे नेता का स्वस्थ गुण नहीं है। नेता को अपने आदेश जैसी भाषा के इस्तेमाल से बचना चाहिए। विनम्रता भरे वाक्य अप्रभावी प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु सबसे अधिक प्रभावकारी यही विधि है। सारांशतः अच्छे नेतृत्व में, नीचे से ऊपर तक, अच्छा व्यवहार निहित होता है और प्रत्येक लोकतांत्रिक समाज में यह अनिवार्य भी होता है। नेता को एक ही समय में कई आदेश देने से बचना चाहिए। इससे भ्रम पैदा होता है, ओदशों के समझ में आने में देरी होती है तथा हड़बड़ाहट पैदा होती है। आदेश संक्षिप्त होने चाहिए, उनमें समयबद्धता होनी चाहिए और वे प्राथमिकताओं के हिसाब से गठित किए जाने चाहिए, आदेश सकारात्मक होने चाहिए यानि एक नेता को नकारात्मक स्वर वाले आदेशों से बचना चाहिए। दूसरे शब्दों में ''यह मत करो'' की शब्दावली का प्रयोग नहीं होना चाहिए। और अन्त में, नेता को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उसके आदेशों में विरोधाभास न हो।

अब हम उन अनुयायियों से निपटने की समस्या पर सोचें जो अपने कर्त्तव्य पालन में गंभीर नहीं होते। ऐसे मामलों में प्रताड़ित करने, दंड देने या आलोचना करने की प्रक्रिया स्पष्ट तथ्यों और आंकड़ों पर आधारित होनी चाहिए, दंड सुनिश्चित होना चाहिए और दंडित करने के काम में पक्षपात या शत्रुता की भावना नहीं होनी चाहिए। व्यक्तियों से चूक होने या आज्ञा पालन में उनके असफल होने को सावधानीपूर्वक देखा–परखा जाना चाहिए, क्योंकि इसके ऐसे कारण हो सकते हैं, जो

पकड़ में न आ पाए हों। अतः विभिन्न तथ्यों पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

अत्यधिक महत्व का एक और कारक यह आश्वासन है कि अच्छे कार्य निष्पादन को नेता द्वारा पसन्द किया जा रहा है। मतलब यह कि नेता को अनुयायियों के अच्छे काम की सराहना करनी चाहिए। अच्छे काम की सराहना में नेता को किसी प्रकार का संकोच नहीं दिखाना चाहिए। लेकिन इसके लिए भी किसी मानक प्रक्रिया को अपनाया जाना चाहिए। जब कभी भी एक मानक प्रक्रिया या विधि का इस्तेमाल किया जाए तो निष्कर्ष के लिए अधिशासी या नेता के पास ठोस जानकारी होनी चाहिए। सराहना सार्वजनिक तौर पर की जा सकती है जहां लोगों को मालूम हो कि योग्यता को मान्यता दी गई है।

नेता की सम्पूर्ण छवी भी एक महत्वपूर्ण कारक है। निजी व्यवहार में उसे साफ, सुथरा और स्पष्ट बात करने वाला होना चाहिए, उसे मैत्री भाव, विनम्रता और अनावश्यक मेल जोल के बीच सन्तुलन बनाए रखना चाहिए।

एक अच्छा नेता नए–नए विचारों के लिए अपने अनुयायियों को प्रोत्साहित करता है। यह काम सामान्य विचार–विमर्श की आयोजित समूह विधि द्वारा संभव है। नेता से यह भी अपेक्षा होती है कि वह अपने अनुयायियों में समूह भावना का विकास करे। यह एक महत्वपूर्ण काम है जो नेता को अपनी संस्था में करना होता है। इससे पूरे समूह का मनोबल बढ़ता है। नेता को इस पक्ष पर भी ध्यान देना चाहिए कि समूह में सदस्यों में आत्मानुशासन आए। अन्तिम बात यह है कि नेता को संस्था में उठने वाली अटकलों पर पूरा ध्यान रखना चाहिए। यह देखना उसका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि सभी महत्वपूर्ण मसलों पर नई नीतियों से सम्बन्धित सभी उचित तथ्यों की जानकारी अनुयाइयों को पूरी तरह और जितनी जल्दी संभव हो, उतनी जल्दी हो सके।

अब हम उन कारकों पर विचार करें जो दूसरों पर पड़ने वाले नेता के प्रभाव को प्रभावित करते हें। बहुत से ऐसे तरीके हैं जिनके द्वारा नेता दूसरों को प्रभावित करता है। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण है : 1. सुझाव, 2. अनुकरण, 3. विश्वासोत्पादक तर्क, 4. प्रचार, 5. घटनाओं के तर्क पर भरोसा रखना, 6. हार्दिक निष्ठा, 7. एक जटिल समस्या की स्थिति प्रस्तुत करना।

पहले से ही सामान्यीकृत ढंग से यह तय करना संभव नहीं है कि नेता को कब एक या दूसरे कारक का इस्तेमाल करना चाहिए। कभी–कभी इनमें से कई कारक एक ही समय में कार्य करते हैं। लेकिन इस बात की सचेतन जानकारी कि कौन सा–कारक किस तरह प्रभावित करता है, नेता के लिए काफी लाभप्रद सिद्ध होता है।

सुझाव प्रत्यक्ष भी हो सकता है और अप्रत्यक्ष भी। इसका इस्तेमाल आमतौर पर नेता का सम्मान बनाने या बनाए रखने के लिए होता है। इस विधि का प्रयोग

अनुयाइयों के स्वाभिमान को ठेस पहुंचाने या उनके आत्मविश्वास को तोड़ने के खतरे से बचने के लिए किया जाता है। समर्थन पाने के लिए भी सुझाव लाभदायक है।

अनुकरण, नेता के लिए कोई सजीव प्रक्रिया नहीं है। वह तो समर्थन पर ही अधिक भरोसा कर सकता है। कहावत है कि सफलता से अधिक सफल कुछ नहीं है। इसलिए जब तक सफलता, पद और प्रतिष्ठा मौजूद है लोग अनुकरण करेंगे, नकल करेंगे और आपके पीछे आएंगें।

विश्वासोत्पादक तर्क महत्वपूर्ण होता है और विशेष मसलों पर समझौते के लिए लोगों को प्रभावित करने में बहुत जरूरी भी होता है। यह ऐसी कला है जिसमें नेता को सारे साक्ष्य और मत इकट्ठे करने होते हैं और वांछित रास्ते पर चलने के लिए अनुयाइयों को समझना होता है।

प्रचार, एक और प्रविधि है, आधुनिक समय में जिसके महत्व से हम सभी अच्छी तरह परिचित हैं। इससे सम्मान बढ़ता है, और तथ्यों, दृष्टिकोणों तथा निष्कर्षों को सभी संबन्धित व्यक्तियों पर स्पष्ट किया जा सकता है। नेता को अनुयाइयों की प्रकृति और उनकी संख्या के आधार पर प्रचार के माध्यम और तरीकों का चयन करना होता है। लेकिन यह जरूरी है कि प्रचार और 'प्रोपेगन्डा' में फर्क किया जाए।

नेता को अपने समय की विभिन्न प्रवृत्तियों को ध्यान में रखना चाहिए और घटनाओं का तर्क तलाश कर, उसी के अनुसार अनुयाइयों को निर्देश देने चाहिए।

नेता के प्रति अनुयाइयों की निष्ठा और कभी–कभी अच्छी निष्ठा, हमेशा ही उसका बहुत शक्तिशाली हथियार होती है। अच्छी निष्ठा को लगावपूर्ण या भावात्मक–निष्ठा कहा जा सकता है।

अंत में, हम दूसरों को प्रभावित करने के सर्वाधिक कारगर तरीके पर विचार करेंगे। इसके अंतर्गत अनुयाइयों के बीच में या उनके चारों ओर कुछ विशेष स्थितियों को उतपन्न किया जाना है। अनुयाई इनको समस्यापूर्ण और कठिन महसूस करते हैं। इस हालत में नेता कठिनाई की पहचान करता है, इसको तीव्रता से सामने रखता है, और फिर उसका हल प्रस्तुत करता है। एक और तथ्य की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। वह यह कि लोग नेता से इसलिए प्रभावित होते हैं कि वह उनके लिए किसी उच्च आदर्श का प्रतीक होता है।

14.7 नेतृत्व की शैलियां

किसी अधिशासी द्वारा चुनी गई शैली नेता के रूप में उसकी असरकारी क्षमता को बहुत अधिक प्रभावित करती है। नेतृत्व की शैली संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरणा देती है। अनुचित शैलियां कर्मचारियों में असंतोष और विरोध की भावना पैदा करती हैं, तथा संस्था की अपूर्णीय क्षति कर सकती है। मोटे तौर पर नेतृत्व की तीन शैलियां मानी गई हैं। एक तंत्रीय या अधिनायकवादी शैली, दो सहभागिनी शैली और तीन अहस्तक्षेप शैली। प्रत्येक शैली के अपने लाभ और हानियां

है। नेता लोग स्थितियों को नजर में रखते हुए विभिन्न अवसरों पर विभिन्न शैलियों को अपनाते हैं। तीन प्रमुख शैलियों की यहां संक्षेप में चर्चा निम्न प्रकार हैः

एकतंत्रीय शैली

इसमें नीति संबंधी और निर्णयात्मक अधिकार नेताओं के हाथों में केन्द्रित रहते हैं। नेता ही अपने मर्जी के अनुसार नीतियों को तय करता है और उनमें परिवर्तन करता है। इस प्रकार के नेता अपने मातहतों से बिना कोई सवाल उठाए नीतियों के स्वीकार की अपेक्षा करते हैं। ऐसे नेताओं की एकतंत्रीय शैली के कारण उनके व्यवहार का पूर्वानुमान करना बहुत कठिन होता है। ऐसे ये नेता एकाकी रहते हैं और समूह से अलग–थलग बने रहते हैं। ये स्वयं को श्रेष्ठ और अपने मातहतों को हीन, अनुभवरहित और जानकारी को अयोग्य समझते हैं। इस प्रकार के नेतृत्व में शीघ्र निर्णय ले पाने का लाभ रहता है। लेकिन यह शैली कर्मचारियों के लिए कष्टकारी होती है और उनके अंसतोष का कारण बनती है। इस प्रक्रिया में कर्मचारी संस्थागत लक्ष्यों के प्रति उदासीन हो सकते हैं।

सहभागिता शैली

यह शैली नेतृत्व की लोकतांत्रिक शैली भी कही जाती है। इस शैली के अंतर्गत संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नेता लोग कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त करते है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में वे कर्मचारियों के जरिए तय किए जाते हैं। नेता अपने साथियों को प्रोत्साहित करता है और उनकी मदद करता है, और अन्तिम नीतियां घोषित करने के बजाय वह केवल विकल्प सुझाता है। इस मामले में समूह के सदस्यों को पर्याप्त स्वतंत्रता रहती है। आलोचना या प्रशंसा करने के मामले में नेता प्रायः निरपेक्ष रहता है। वह मातहतों के काम को स्वीकृति देता है। वह मानकर चलता है कि मातहतों में निर्णय लेने की क्षमता है। इस तरह सहभागिता शैली से सुधरते हैं, कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है, और उनमें अपने कार्य के प्रति संतुष्टि पैदा होती है। इससे नेता का वजन भी कम होता है। इस प्रकार के नेतृत्व की प्रमुख समस्या यह है कि इससे निर्णय की गुणवत्ता में कमी आ जाती है क्योंकि निर्णय लेते समय और नीतियां तय करते समय प्रत्येक दृष्टिकोण पर विचार करना पड़ता है। सलाह–मशवरा करने की लम्बी प्रक्रिया के कारण इसमें समय भी बहुत खप जाता है।

अहस्तक्षेप शैली

इस प्रकार के नेतृत्व में बाह्य प्रेरणा प्रदान करने के लिए संस्था किसी नेता पर निर्भर नहीं रहती। कर्मचारी ही स्वयं को प्रेरित करते हैं। उन्हें अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त रहती है और निर्णय लेने में नेता की सहभागिता कम से कम होती है। संस्था की कार्य प्रणाली में घटनाक्रम को नियमित करने के प्रयास नहीं किए जाते। नेता सिर्फ संस्था के एक सदस्य की भूमिका निभाता है। नेतृत्व की इस शैली का लाभ यह है कि यह कर्मचारियों को अधिक स्वतंत्रा, प्रदान करती है। लेकिन

अगर कोई शक्तिशाली नेता न हो तो कर्मचारियों को उचित निर्देश नहीं मिल पाता और न उनका नियंत्रण रह पाता है। इससे कर्मचारियों में निराशा फैलती है और संस्था में अव्यवस्था पैदा हो सकती है।

14.8 नेतृत्व की बाधाएं

अच्छे नेतृत्व की कुछ बाधाएं हैं :

पहली बात यह है कि नेताओं को दूसरे लोगों को अपने–आप में एक लक्ष्य मानना चाहिए न कि अपने द्वारा प्रस्तुत लक्ष्यों की पूर्ति के लिए औजार मात्र। दूसरे, कोई भी सामान्य और समझदार व्यक्ति अपनी सत्ता का प्रयोग जोर जबरदस्ती के बजाए विश्वासोत्पादक प्रभाव के जरिए करेगा।

मानसिक परेशानी के बहुत से कारण और अवसर निम्न स्थितियों से आते हैः

प्रत्येक नेता को अपने अहम् के विस्तार की आंतरिक प्रेरणा को तुष्ट करने का अवसर प्राप्त होता है, लेकिन आत्म प्रशंसा का यह लोभ शीघ्र ही हाथ से बाहर निकलने लगता है। यह एक खतरनाक प्रवृति के सीमा से बाहर होने के कई रूप हो सकते हैं। इससे श्रेष्ठता की भावना आ सकती है जो दूसरों से उसे काट सकती है, उसमें अभिमान पैदा हो सकता है, दिखावे की भावना आ सकती है। वह अपने अनुयाइयों से बहुत अधिक खुशामद या अपने प्रति बहुत अधिक निष्ठा की अपेक्षा कर सकता है और इस तरह अपने आस–पास जी–हजूरी करने वालों और चाटुकारों का एक दल तैयार कर सकता है। ऐसे बहुत से तरीके हैं जिनके द्वारा एक नेता अपने व्यवहार को सही बनाए रख सकता है।

एक नेता को स्वयं भी भावात्मक अस्थिरता से बचना चाहिए। इससे इसे बात–बात पर झुंझलाहट आने लगती है और बहुत जल्दी गुस्सा आने लगता है। नेतृत्व की शैली की एक अन्य बाधा भय–ग्रन्थि है। कुछ मामलों में नेता यह महसूस करने लगता है कि वह अपने काम के लिए अधिक उपयुक्त नहीं है या वह असफलता की कगार पर खड़ा है। ये सारी भावनाएं आत्मविश्वास को कम करती है। वे उत्साह को तोड़ती है। ये निरोधक अवगुण हैं जो व्यक्ति की निजी शक्ति के स्रोतों को नष्ट करते हैं। नेता को इन आत्म पराजयकारी समस्याओं से बचना चाहिए।

कुछ अन्य मामलों में, शीर्ष अधिशासी से ठीक नीचे काम करने वाले अच्छे कर्मचारी नेतृत्व के लिए पूरी तरह योग्य प्रतीत होते हैं, लेकिन वे अवसर मिलने पर कोशिश करने से कतरा जाते हैं। यह हीन भावना भी नेतृत्व की एक प्रमुख बाधा बन जाती है। एक अन्य कारक जो कि इतना ही खतरनाक है, वह है किसी विशेष काम में असफल होकर जो भी काम कर दिया गया है उसी को वैध या सही ठहराने की प्रवृत्ति। इस वैधीकरण का मतलब है कि हम जो कुछ करते हैं उसे सही ठहराने का प्रयास करते हैं और उसका, सही निर्णय के रूप में समर्थन करते हैं। यह एक स्वस्थ लक्षण नहीं है। इससे हर गलती से परे होने की प्रवृत्ति पैदा होती है, व्यक्ति

के अन्दर अपने श्रेष्ठता का आत्मभिमान जाग जाता है। इससे अनुयाईयों के अंदर यह भावना पैदा होती है कि उनका नेता पाखण्डी है।

अन्त में, नेता को परपीड़क प्रवृत्ति से बहुत सावधान रहना चाहिए। इसका तात्पर्य है कि व्यवहार का कोई भी ऐसा रुप जिससे व्यवहार करने वाले को संतुष्टि मिले लेकिन जो अन्य के लिए कष्टकर, दुखद और क्रूर हो, नेता में इस प्रवृत्ति का होना बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। इस प्रवृत्ति का एक रुप जिसे प्रायः परपीड़क नहीं कहा जाता, व्यंग्य करना है। दूसरों का मजाक बनाने या उन पर कटाक्ष करने की यह प्रवृत्ति भी वांछनीय नहीं है।

14.9 सारांश

अपने में सुधार लाने का अर्थ है कुसंतुलन के कारणों की पूर्ण जानकारी की रोशनी में स्वयं को फिर से प्रशिक्षित करना। सच्चाइयों का पता लगाइये और उनका सामना करिए। यह एक सामान्य उक्ति है, जब कभी भी नेतृत्व की कोई भी बड़ी बाधा व्यक्तित्व में उजागर हो तो इस उक्ति का पालन किया जाना चाहिए।

14.10 मुख्य शब्दावली

एक तंत्रीय शैलीः नेतृत्व की इस शैली में, नेता को निर्णय लेने का एकाधिकार होता है।

सहभागिता शैलीः नेतृत्व की इस शैली में निर्णय लेने की प्रक्रिया में कर्मचारी भी भाग लेते हैं।

अहस्तक्षेप शैलीः यहां, कर्मचारियों को निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता रहती है, निर्णय लेने में नेता की सहभागिता कम से कम होती है।

नेतृत्व के सिद्धांत

विशेषक सिद्धांतः इस सिद्धांत के अनुसार नेतृत्व में जन्मजात गुण होते हैं।

पारिस्थितिक सिद्धांतः इस सिद्धांत के अनुसार नेतृत्व परिस्थिति में से उभरता है और परिस्थिति से प्रभावित होता है।

समूह सिद्धांतः इस सिद्धांत के अनुसार एक व्यक्ति नेता के रूप में तभी तक स्वीकारा जाता है जब तक वह समूह की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

14.11 बोध प्रश्न

1. (1) नेतृत्व के महत्व पर प्रकाश डालें।
   (2) विशेषक सिद्धांत क्या है?
   (3) नेतृत्व के पारिस्थितिक सिद्धांत के बारे में बताइए।
   (4) एक नेता में कौन से गुणों का होना आवश्यक है?

2. (1) अधिशासी के रूप में नेता के प्रकार्यों पर प्रकाश डालिए।
   (2) क्या नेता एक शिक्षक है? कैसे?
   (3) नेता दूसरों को कैसे प्रभावित करता है?
   (4) नेतृत्व की एक तंत्रीय और सहभागिता शैलियों में अंतर बताइए।

14.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

11. (1) देखें भाग 29.1 और 29.2
   (2) देखें भाग 29.3
   (3) देखें भाग 29.3
   (4) देखें भाग 29.4

2. (1) देखें उपभाग 29.5.1
   (2) देखें उपभाग 29.5.2
   (3) देखें भाग 29.6
   (4) देखें भाग 29.7

14.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Barnard Chester, 1948, Organisation and Management; Harvard University Press: Cambridge (Mass).

Hicks, Herbert G and Gullett, C. Ray, 1975, Organisations: Theory and Behaviour; McGraw hill Book Company: New York.

Luthans, Fred, 1977, Organisational Behaviour; McGraw Hill Book Company : New York.

Millett, J.D., Management in the Public Service; McGraw Hill Book Company Inc: New York

Nigro, felix A and Nigro Lloyed G., 1973 , Modern public Administration; Harper and Row Publishers: New York

Pfiffner, John M. and Sherwood Frank P. 1968, Administrative Organisation: Prentice Hall of India Private Ltd., New Delhi.